भूमिका।

स्त्रियोंको शिक्षा देना चाहिए वा नहीं, और, यदि देना चाहिए तो किस ढङ्गको, ये दोनों प्रश्न देशहितैषिताकी दृष्टिसे बड़े महत्वके हैं। इनमेंसे पहले प्रश्नके संबन्धमें विचार करनेका अब समय नहीं रहा ; क्योंकि स्त्रीशिक्षाकी उपकारिता तथा आवश्यकता इस समय प्राय: सर्वं सम्मतिसे स्वीकृत हो चुकी है। हां, दूसरे प्रश्नको अबतक कोई समुचित मीमांसा नहीं हुई है और स्त्रियोंको शिक्षा किस आदर्शपर होनी चाहिए इस सम्बन्धमें बड़ा मत भेद बना हुआ है।

स्त्रियोंको किस प्रकारकी शिक्षा दी जानी चाहिए इस प्रश्नको लेकर इस देशका लोकमत दो प्रधान दलोंमें विभक्त है। एक दल इस देशकी स्त्रियोंको पाश्चात्य ढङ्गसे शिक्षिता बनाकर पाश्चात्य सभ्यतानुयायिनी बोबियोंके रूपमें देखना चाहता है, और दूसरा दल शिक्षाके परिणाम स्वरूप इस देशके स्त्री-समाजको सीता और सावित्रीके समान आचारवान तथा कर्त्तव्य परायण देखना चाहता है। पहले दलका सिद्धान्त है कि सृष्टि-कर्त्ता विधाताने मानव-समाजको—स्त्री और पुरुष—दो भागोंमें विभक्त किया है, और इन दोनों हो को लौकिक तथा पारलौकिक सब प्रकारके कामोंको सुचारु रूपसे सम्पादित

करनेकी शक्ति प्रदान की है। पुरुषोंमें ऐसे किसी भी गुणका अस्तित्व नहीं पाया जाता जो स्त्री जातिमें भी विद्यमान न हो। अतएव पुरुषों और स्त्रियोंमें अधीनताका नहीं वरन् पूर्ण समानताका भाव होना चाहिए। स्त्रियोंको केवल सन्तानोत्पादन तथा घरके अन्दर बन्द रहकर गृहस्थीके धन्धोंको करने योग्य निश्चितकर और सब प्रकारके अधिकारोंको अपने अधीन कर लेना पुरुषोंकी सरासर जबर्दस्ती है; और स्त्री समाजने इस अन्याय पूर्ण जबर्दस्ती अर्थात् पुरुषोंकी अधीनताको प्राकृतिक नियमोंके अनुसार अर्थात् अपनी स्वाभाविक हीनताके कारण नहीं वरन् मानव-समाजके आदिसे चली आती हुई इस जबर्दस्तीके कारण उत्पन्न कुसंस्कारों एवं हीनता व्यंजक मनोविकारोंके वश वर्ती होकर ही स्वीकार किया है। फलतः स्त्रियोंको इस ढङ्गकी शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे वे सभा सोसाइटियोंमें योग देंगे, काउन्सिलके चुनावमें वोट देंगे, रातमें टेबुल और कुरसियोंपर भोजनके लिए बैठकर अपने पतियोंके साथ भिन्न भिन्न देशोंके इतिहासोंसे निकाले हुए निष्कर्षों द्वारा राज्य सञ्चालन सम्बन्धी प्रश्नोंपर वादविवाद करने तथा किसी विषयपर मतभेद उपस्थित होनेपर उनका विरोध करनेमें समर्थ हो सकें, और उनकी अधीनता मूक पशुवत् स्वीकार न करके स्वतंत्र होनेके लिये आन्दोलन करें। दूसरे दल वालोंका सिद्धान्त पहले दल वालोंके सिद्धान्तसे सर्वथा विपरीत है। इनका मत है कि यद्यपि सुचतुर सृष्टि-निर्माण-कर्त्ताने स्त्रियोंको समाजहित

साधक एवं मनुष्योचित समस्त सद्‌गुणोंसे विभूषित किया है और प्राय: सांसारिक समस्त कार्यों को सम्पादित करनेकी क्षमता प्रदान की है तथापि स्त्रियोंकी प्रधान शोभा पुरुषोंके अधीन रहनेमें ही है और इसीमें समाजकी भी भलाई है। सुतरां स्त्रियोंको ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिये जिससे वे गृहस्थीके कार्योंमें कुशलता प्राप्तकर अपने गृहिणी नामको सार्थक कर सकें, और अपने सुविनम्र स्वभाव, अपनी अलौकिक दया शीलता, अपने नैसर्गिक प्रेम एवं अपनी अप्रतिम सहनशीलता द्वारा सांसारिक व्यापारोंके परिचालनमें दिनभर जी तोड़ परिश्रम करके लौटे हुए पतियों पुत्रों तथा भाई आदिका मनोरंजन करनेमें तथा उनकी चिन्ताओंको दूरकर अपने मधुरालाप द्वारा उन्हें स्वर्गीय सुख प्रदान करनेमें समर्थ हो सकें।

उक्त दोनों प्रतिद्वन्दी सिद्धान्तोंमेंसे किसके अनुसार शिक्षा देनेसे स्त्री जातिके तथा साथ ही साथ देशके हित साधनमें सुविधा और साहाय्य प्राप्त होगा यह निश्चित कर लेना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि जिस प्रकार आदर्शके अभावसे कार्यसिद्धि नहीं होती उसी प्रकार आदर्श दो होनेसे भी कार्यमें सफलता प्राप्त नहीं होती।

शिक्षाका आदर्श निश्चित करनेके पहले शिक्षाका उद्देश्य निश्चित कर लेना आवश्यक है। किस अभिप्रायसे—शिक्षा प्राप्त करने वालेको किस विशेष कार्यके उपयुक्त बनानेके लिए—शिक्षा दी जायगी यह निश्चित हुए बिना वास्तविक शिक्षा प्राप्त

करना वसा ही सुकठिन है जैसा दिशा और मार्गका ज्ञान हुए विना गन्तव्य स्थान पर पहुंचना।

संसारमें मनुष्य शारीरिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनैतिक अनेक प्रकारके कर्त्तव्योंके साथ जन्म लेता है। शिक्षाका प्रधान, उद्देश्य थोड़ेसे शब्दोंमें, मनुष्योंको अपने उक्त सब प्रकारके कर्त्तव्योंका पूर्णज्ञान करा देना तथा उनके पालन करनेका उचित मार्ग और साधन बता देना ही है। बोझकी बोझ पुस्तकोंको कंठाग्र करके परीक्षा पास कर लेनेसे ही कोई शिक्षित नहीं हो सकता। अपने असली कर्त्तव्योंका ज्ञान तथा उनके पालनकी क्षमता प्राप्त करना ही शिक्षाका अन्तिम उद्देश्य है और यही मनुष्य जन्मकी सार्थकता है यह बात पुरस्देशीय तथा पाश्चात्य विद्वानों द्वारा भली भांति सिद्ध की जा चुकी है।

अब, यहीं एक दूसरा प्रश्न जो प्राय: स्त्रियोंकी शिक्षासे संबंध रखने वाले अन्य सब प्रश्नोंसे अधिक महत्व रखता है, यह उपस्थित होता है कि स्त्रियोंके वे विशेष कर्त्तव्य क्या हैं जिनका पालन करनेसे उनका नारी जीवन सार्थक हो सके?

आजकल स्त्री शिक्षाके प्रचारका कार्य जिन लोगों द्वारा हो रहा है वे उपर्युक्त दोनों दलोंमें प्रथम दल वालोंके सिद्धान्तके अनुयायी हैं। उनका मत है कि स्त्री और पुरुष संसारमें पृथक पृथक कर्त्तव्योंके साथ जन्म लेते हैं और एक दूसरेसे

भिन्न तथा स्वतन्त्र हैं। फलत: इन्होंने स्त्रियोंका जो कर्त्तव्य निश्चित किया है वह भारतीय आदर्शसे कोसों दूर जा पड़ा है। परिणाम स्वरूप स्त्री शिक्षाके प्रचारके लिए जो थोड़ासा उद्योग हुआ है उसका फल सन्तोष जनक नहीं हुआ है। क्योंकि शिक्षिता होकर परिवार वालोंको प्रीति भाजन न होकर स्त्रियां उनकी चक्षु शूल सी हो रही हैं। और, इसमें कुछ आश्चर्य भी नहीं ; क्योंकि वर्त्तमान प्रणालीके अनुसार दी गई शिक्षा का अवश्यम्भावी परिणाम हो यही है। यह शिक्षा प्रणाली उन लोगोंको निश्चित की हुई है जो स्त्री और पुरुषोंके पृथक् तथा स्वतन्त्र अस्तित्वके माननेवाले और उनकी पूर्ण समानताके प्रतिपादक हैं। अतएव स्त्रियोंको शिक्षाकी प्रणाली तथा हद वैसी ही और उतनी ही निश्चित की गई है जैसी और जितनी कि पुरुषोंके शिक्षाकी है। जो विषय पुरुषोंके पढ़नेके लिये निश्चित किए गए हैं वे ही स्त्रियोंके पढ़नेके लिए भी निश्चित किये गये हैं और एम० ए० तकका दरवाजा दोनों ही के लिये समान रूपसे उन्मुक्त है। परिणाम स्वरूप स्त्रियां भी शिक्षा पाकर उन्हीं गुणोंसे विभूषित होती हैं जिन गुणोंसे पुरुष विभूषित होते हैं अर्थात् स्त्रिया भी पुरुषोचित गुणोंसे ही अलंकृत होती और पुरुषोचित कार्यों को ही करनेको क्षमता प्राप्त करती हैं। किन्तु यह भारतीय समाज संगठन शास्त्रके तथा धार्मिक नियमोंके प्रतिकूल है। भारतका सिद्धान्त है कि स्त्री और पुरुष विवाह होनेके पहले दो आर्द्धांश मात्र रहते हैं।

विवाह इन दोनों अर्द्धांगोंको मिलाकर पूर्णत्व प्रदान करता है। इस प्रकार दो अपूर्ण आत्माओंके सम्मिलन द्वारा जो एक पूर्ण मनुष्य-मूर्त्ति प्रस्तुत होती है उसे गृही और उसके कर्त्तव्योंको गृह धर्म कहते हैं। त्रिकालज्ञ भगवान मनुजीने गृह धर्म पालनके लिए ऋषि-यज्ञ, देव यज्ञ, भूतयज्ञ, नृयज्ञ तथा पितृयज्ञ इन पांच महायज्ञोंकी व्यवस्थाकी है। ये प्रत्येक गृहीके अवश्य कर्त्तव्य कर्म हैं। यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो व्यक्त होगा कि इन पंच महायज्ञों में मनुष्योंके सांसारिक समस्त कर्त्तव्योंका समावेश हो गया है। इसी लिये विवाहित होनेका एक दूसरा नाम संसारी होना भी है। अविवाहित स्त्री पुरुषको हिन्दू शास्त्रानुसार न तो उक्त गृह धर्मको अर्थात् संसार धर्मको पालन करनेका अधिकार ही है और न व्यावहारिक दृष्टिसे विचार करनेसे उनमें इतनी क्षमता तथा योग्यता ही पाई जाती है। क्योंकि गार्हस्थ धर्म पालनके लिए जिन गुणोंकी आवश्यकता होती है उनमें से कुछ स्त्री में और कुछ पुरुषमें होते हैं तथा प्रत्येकमें जो गुण होते हैं वे दूसरेमें नहीं होते अर्थात् दोनोंके गुण भिन्न २ प्रकारके होते हैं। इस अयोग्यता को दूर करने अर्थात् सांसारिक धर्म पालनकी योग्यता एवं क्षमता प्राप्त करनेके लिये ही हिन्दुओंका विवाह होता है जैसा कि विवाह मन्त्रोंसे स्पष्ट व्यक्त होता है। स्त्री पुरुषको सांसारिक धर्म प्रतिपालनके लिये वाध्य करनेके लिये विवाह एक सुदृढ़ तथा अविच्छेद्य बन्धन है। इस बन्धनसे

बँध जानेपर दोनों ही को अपनी स्वेच्छाचारिता एवं स्वतं-त्रताको परिमित करके दूसरोंकी स्वाधीन इच्छा और प्रवृत्ति की ओर ध्यान रखते हुए कार्य करनेके लिये वाध्य होना पड़ता है। सुतरां हिन्दू शास्त्रोंमें कथित आदर्शको ध्यानमें रखते हुए तो स्त्रियों और पुरुषोंकी समानता तथा स्व-तंत्रताकी कल्पना ही निर्मूल है। क्योंकि शास्त्रोंमें स्पष्ट रूपसे उल्लेख पाया जाता है कि स्त्रियोंकी प्रधान शोभा पतिकी तथा ससुर सास और देवर आदि अन्य परिजनोंकी अधी-नता स्वीकार करनेमें तथा उनकी आज्ञाओंका पालन कर उनकी प्रिय पात्री बननेमें ही है।

अब, विचार करनेकी बात है कि जो स्त्री एंट्रेन्स तक साहित्य, इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान आदिकी शिक्षा प्राप्त करेगी वह क्या विवाहिता होकर सासके अधीन रह—गऊका-स्थान साफ कर गोबर पाथनेसे लेकर रसोई बनाने तक—गृहस्थीके प्रत्येक छोटे बड़े कामोंको प्रसन्नतापूर्वक करके उसकी प्रीति भाजन हो सकेगी? वर्त्तमान शिक्षाका जो परिणाम हुआ है उससे तो यह स्वयं सिद्ध हो रहा है कि इस प्रकारकी आशा रखना भूल है। इसमें स्त्रियोंका कुछ दोष नहीं। वर्त्तमान शिक्षा प्रणालीसे उनमें गृहस्थीके कर्म्मोंको करनेकी योग्यता ही नहीं उत्पन्न होती। इससे तो वे कृत्रिम स्वातन्त्र्य प्रिय तथा पुरुषोंके समान सामाजिक, नैतिक तथा ऐतिहासिक आदि विषयोंपर वादविवाद करने और स्वयं

विलासितामें मग्न रह जाय, ससुर आदि अन्य परिजनोंको अवज्ञा करने और निरादर होनेके कारण उन्हें छुवाई समझनेके योग्य बनती हैं, और परिणाम स्वरूप परिवार-वालोंकी कौन कहे प्रायः अपने पतियों तक का मनोरञ्जन करनेमें असमर्थ हो उठती हैं। अस्तु, यह तो हुई उन कन्या-ओंकी बात जो कुछ अधिक शिक्षा प्राप्त करती हैं। किन्तु उन कन्याओंकी दशा तो और भी अधिक शोचनीय है जो केवल प्रारम्भिक अथवा उससे भी कम शिक्षा प्राप्त करती हैं। ऐसी कन्याएं विवाहिता होकर गृहस्थोके झंझटोंमें फँस हिन्दीके सिवाय गणित आदि अन्य सब विषय भूल जाती हैं। फलतः ये अपने अवकाशके समयको रसखानि दोहावली अथवा लैलामजनू और यदि बहुत सुरुचि हुई तो मान लीला और बुद्धिहारिन लीला आदि पुस्तकोंके पढ़नेमें लगाती हैं। इसका परिणाम उन सांसारिक ज्ञानरहित कोमलमति बालि-काओंपर जो पड़ता है उसका विचार करनेसे जो दुःख होता है वह अनिर्वचनीय है। अतएव मुझे तो यह दृढ विश्वास है कि वर्त्तमान शिक्षा प्रणालीके परिणामकी ओर दृष्टि रखते हुए कोई भी यह न कहेगा कि वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली भारतीय महिलागणोंके उपयुक्त है।'

अच्छा तो यह क्यों? शिक्षा प्रणालीके दोषपूर्ण होनेका कारण क्या है? इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं, कि जिन लोगों द्वारा वर्त्तमान शिक्षा प्रणालीका सङ्गठन हुआ है वे असाधारण

विद्वान हैं। फिर, उनको निश्चित शिक्षा प्रणालीके दोषपूर्ण होनेका कारण क्या है ? इस विषयमें मेरामत तो यह है कि इस समय भरत वासियोंकि शिक्षा को बागडोर जिन विद्वानोंके हाथमें है उनकी कल्पना शक्ति, उनके विचार, उनका आदर्श आदि सभी कुछ इस समय योरोपीय हो रहे हैं। धार्मिक सामाजिक नैतिक कोई भी प्रश्न हो प्र य: सभोके लिये उनका आदर्श पश्चात्य हो होता है। पाश्चात्य सभ्यताने इस देशके नवीन दलके सुधारकोंकी आंखोंमें ऐसी चकाचौंध उत्पन्न कर दी है और उनकी नजर इस प्रकार बांध ली है कि उनको अब कोई दूसरा आदर्श हो नहीं दिखाई पड़ता। फलतः भारतीय स्त्रियोंकी शिक्षाका उद्देश्य तथा उसकी प्रणाली भी उन्होंने पाश्चात्य आदर्शपर ही निश्चित की है, किन्तु यह भूल है। योरोपिनोंका यह सिद्धान्त कि,—

The East is East and the West is West,
And the twain ne'er shall meet

अक्षरशः सत्य है। भारत और पाश्चात्य देशोंमें जमीन और आसमानका फर्क है। यद्यपि इन दोनों हो का उद्गमस्थान एक ही है और ये दोनों ही जातियां आदिम आर्य जातिको ही शाखाएं हैं तथापि अत्यन्त प्राचीन समयसे इन दोनों जातियोंके विचार, स्वभाव, आदर्श तथा सभ्यतामें जो भेद चला आ रहा उसका दूर होना एक प्रकार असम्भव है, और दैव दुर्विपाकसे यदि यह विभेद दूर हो जायगा तो यह निश्चय है

कि दोमेंसे एकको अपनी जातीयतासे हाथ धो बैठना होगा।

यह एक स्वयं सिद्ध सिद्धान्त है कि किसीभी विषयको भली भांति समझनेके लिये तन्मयता एक प्रधान और आवश्यक गुण है। जो आलोचक अपने आलोच्य विषयमें तन्मय होजानेकी जितनी ही प्रबल शक्ति रखेगा वह उस विषयकी आलोचना उतनी ही अच्छी तरह कर सकेगा। यों तो फोटो कैमेराकी सहायतासे कोई भी सुशिक्षित चित्रकार बाह्य आकारका सुन्दर चित्र उतार सकता है किन्तु वास्तविक चित्रकार वही है जो उस वस्तुमें जिसका चित्र उसे उतारना है अपनी आत्मा द्वारा प्रविष्ट होकर उसके आन्तरिक भावोंको परिलक्षित करनेकी शक्ति रखता है। सुतरा आर्य महिलाओंके प्रकृत कर्त्तव्योंका निरूपण करके उनकी शिक्षाका आदर्श निर्द्धारित करनेके लिये आर्य जातिके धार्मिक तथा सामाजिक नियमों एव जातीय सभ्यताका ज्ञान अनिवार्य है और यह ज्ञान हिन्दू शास्त्रोंक अध्ययन विना असम्भव है।

बंग भाषाके लब्ध प्रतिष्ठ ग्रन्थकार श्रीयुक्त बाबू आनन्द चन्द्रसेन गुप्तने अबसे कुछ वर्षों पहले, हिन्दू शास्त्रोक्त गार्हस्थ धर्मके गुरुत्वको हिन्दू महिलाओंके हृदयंगम करा देने तथा उन्हें उक्त गृह धर्मके पालन द्वारा पारिवारिक सुख शान्तिकी रक्षा एव वृद्धि करनेके उपयुक्त शिक्षा प्रदान करनेके अभिप्राय से व गला भाषामें "गृहिणीर कर्त्तव्य" नामकी एक पुस्तक लिखी

थी। बंगभाषा भाषियोंमें इस पुस्तकका बड़ा आदर हुआ है। और बंगालके सभी गण्य मान्य विद्वानोंने इसकी मुक्त-कंठसे प्रशंसा की है। परिणाम स्वरूप इस पुस्तकके अब तक छः संस्करण हो चुके हैं। प्रस्तुत पुस्तक उक्त "गृहिणीर-कर्त्तव्य" का स्वतन्त्र अनुवाद है। स्वतन्त्र इस लिये कि मूल पुस्तक विशेषत: वङ्ग-ललनाओंके लिए लिखी गई थी अतएव उसे युक्त प्रदेश निवासी भगिनी गणोंके उपयुक्त बनानेके लिए अनेक अंशोंको एक दम छोड़ देना पड़ा है तथा अनेक अंशोंको नये रूपसे लिखना पड़ा है। इस विचारसे कि इसमें दिये गये उपदेशोंसे कम पढ़ी लिखी कन्याये भी लाभ उठा सकें इसकी भाषाको विशेष सरल बनानेकी चेष्टाकी गई है और भाषाको शिथिलताकी ओर उतना ध्यान नहीं दिया गया है।

इस पुस्तकके लिखनेमें लेखकको ललना सुहृद, कुल लक्ष्मी, गृहधर्म आदि अनेक अन्य बंगला पुस्तकोंसे तथा सुन्दरी सुधार प्रभृति कतिपय हिन्दी पुस्तकोंसे बड़ी सहायता प्राप्त हुई है। अतः लेखक इन पुस्तकोंके लेखकोंका ऋणी है और उन्हें हृदयसे धन्यवाद देता है।

यदि इस पुस्तकको पढ़कर स्त्रियां अपने प्रकृत कर्त्तव्योंको पहचानकर वास्तविक गृह लक्ष्मी बन सकीं तो लेखक अपने परिश्रमको सफल समझेगा।

नवजादिक लाल,

समाजके आचारको बनाना, गृहका प्रबन्ध करना, कोमलता, प्रेम और सहनशीलतासे जीवनकी कठिन और विषम यात्राको सरल और सुखप्रद बनाना स्त्रीका ही काम है। यदि संसारमें स्त्री न होती तो यह संसार बड़ा भयानक और उद्वेग जनक होता—टामसन

पुरुषका महत्व बुद्धि और पराक्रमसे है। इन्हींको पौरुष या पुरुषार्थ कहते हैं। किन्तु स्त्रीका गौरव प्रेम, वत्सलता मृदुता, दया और अधीनतासे है। अधीनतासे स्त्रीका आदर द्विगुण हो जाता है—सर रिचर्ड स्टील

प्रकृति देवीने स्त्रीको इसलिये बनाया है कि उत्तम सन्तान उत्पन्न करे, पुरुषको दयालु सहचारी बने, दुःख और विपत्तिमें अपने निष्कपट प्रेम और हार्दिक सहानुभूतिसे शोक और चिन्ताको पास न आनेदे, गृहस्थीके भारको हलका करके हमें इस योग्य बनादे कि हम हाथ या मस्तिष्कसे परिश्रमका काम कर सकें और सबसे बढ़कर इसलिए कि सम्पूर्ण मनुष्य जाति पर अपने हृदय सागरसे प्रेम और आनन्दका जल बरसा दे। जो लोग स्त्री जातिको इस उच्च आदर्शसे गिराना चाहते हैं वे मूर्ख, कृतघ्न और असभ्य हैं—फोर्डायस

("स्त्री जातिका महत्व" से उद्धृत।)

गृहिणी-कर्त्तव्य ।

पहला उपदेश ।

गृह ।

गृहाश्रमात् परोधर्म्मो नास्ति नास्ति पुनः पुनः ।
सर्वतीर्थफलं तस्य यथोक्तं यस्तु पालयेत् ॥

—व्यास-संहिता ।

गृह ही स्त्रियोंका राज्य है—उसका वे रानियोंकी तरह स्वतन्त्रता पूर्वक शासन करती हैं ।

—ध्यादलम ।

भगवान मनुने लिखा है :—"कन्याका भी पुत्रकी तरह पालन करना चाहिये और यत्न सहित शिक्षिता बनाकर विद्वान वरको सौंपना चाहिये ।" * किन्तु दुःखकी बात है,

---

* "कन्याप्येव पालनीया शिक्षणीयातियत्नतः ।
देया वराय विदुषे धनरत्नसमन्विता ॥"

कि कितनी ही सामाजिक कुरीतियोंके फेरमें पड़कर हम भगवान मनुजीके इस अमूल्य उपदेशके अनुसार कार्य्य करनेमें नितान्त असमर्थ हो रहे हैं। कन्याओंका शिक्षिता होना तो अलग रहा, अच्छी तरह होश सम्भालनेके पहले ही कितनी ही कन्यायें विवाहिता होकर पतिके घर भेज दी जाती हैं; और वहां जाकर कुल-वधू नाम ग्रहण कर अन्त:पुररूपी कारागारमें बन्द कर दी जाती हैं। इससे उनकी शिक्षाकी राह बन्द हो जाती है। अत: उपयुक्त शिक्षाके अभावके कारण हमारे देशकी स्त्रियोंकी अवस्था दिन दिन शोचनीय होती जारही है। कहीं तो वह दासीकी तरह और कहीं विलासकी सामग्रीकी तरह व्यवहारमें लाई जाती हैं।

यदि विचार पूर्व्वक देखा जाय, तो मालूम हो जायगा, कि अशिक्षा और अनजानपनेके दोषसे ही हमारे देशकी स्त्रियां अपने कर्त्तव्य-पालनमें असमर्था हैं; और इसी वजहसे समाज भी उनका उचित आदर नहीं करता; नहीं तो शास्त्रोंमें रमणियोंके आदर और सत्कारका जो विधान है, उससे साफ मालूम होता है, कि एक दिन भारतमें रमणियोंका स्थान बहुत ऊंचा समझा जाता था। मनुजीने लिखा है;—"स्त्रियोंको सम्मानके साथ भोजन कराना और वसन-भूषणादि द्वारा सर्वदा भूषित करना, कल्याणकामी पिता, भाई, पति तथा देवरोंका कर्त्तव्य है। जहां स्त्रियोंका आदर होता है, वहां देवताओंका वास होता है और जहां उनका

अनादर होता है, वहांका यज्ञादि क्रिया-कर्म सब वृथा हो जाता है। जिस परिवारमें स्त्रियां दुःखी रहती हैं, उसका शीघ्र ही विनाश होता है और जिस परिवारमें स्त्रियोंको कोई कष्ट नहीं होता उसकी दिन दिन श्रीवृद्धि होती है। स्त्रियां अपमानित होकर जिस कुलको अभिशाप देती हैं, वह बहुत जल्द विनष्ट हो जाता है। इसलिये उत्सवादि शुभ कामोंके समय स्त्रियोंको भोजन, वस्त्र तथा भूषणादि द्वारा सम्मानित करना चाहिये।"*

भारतकी प्रसिद्ध विदुषी सौभाग्यवती सरलादेवी चौधरानीने लिखा है :—"गृह, समाज, जाति तथा समस्त मानव समाजमें नारी-अधिकार फैला हुआ है। नारी ही गृहको स्वर्ग अथवा नरक बना सकती है। वही सच्ची लक्ष्मी अर्थात्

* पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः॥
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥
शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा॥
जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः॥
तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूति कामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च॥— मनु०

गृहकी अधिष्ठात्री देवी है। नारीही गृहको सुन्दर, साफ सुथरा और सुशृङ्खलापूर्ण अथवा दुर्गन्धपूर्ण कदर्य्य-वासस्थान बना सकती है। समाजमें स्त्रियां पूर्ण शक्तिरूपसे विराज रही हैं और वहां वे जो कुछ कर सकती हैं, वह पुरुषोंसे नहीं हो सकता। समाजमें स्त्रियोंके कर्त्तव्य-कर्म्मों की सीमा ही नहीं है। मनुष्यकी समष्टिको ही जाति कहते हैं और नारियां ही उन मनुष्योंकी मातायें हैं, सुतरां वही शिक्षादात्री भी हैं। प्रकृति रूपसे स्त्रियां ही समाजको पैदा करतीं, पालतीं और नाश करती है; पुरुष नहीं। हरएक रमणी अपने स्नेह, दया, अतिथिसेवा तथा परोपकार द्वारा समस्त मानव-समाजका कार्य्य कर सकती है। मनुष्यकी कोमल वृत्तियोंपर उसका पूरा अधिकार है। नारी जातिके बलका यह संक्षिप्त विवरण उसके विशाल कर्म्मक्षेत्र और जीवनके महान् उद्देश्यका परिचय दे रहा है।" *

गृहस्थाश्रममें स्त्रियों हीका एकमात्र आधिपत्य है—गृह-रूप राज्यकी महारानी गृहिणी ही है। किन्तु बड़े ही परितापका विषय है, कि उचित शिक्षाके अभावके कारण स्त्रियां अपने उचित अधिकारसे वञ्चिता हो रही हैं; सुतरां राज्यच्युत होकर घृणाके साथ पददलित हो रही हैं।

दुर्भाग्यवश आजकल हम लोग सामाजिक कुप्रथाओंके

* 'सुप्रभात' पौष १३१६।

दास बन रहे हैं, इसीलिये बहुत थोड़ी उमरमें ही कन्याओंको विवाह-सूत्रमें बांध उन्हें गृहिणी बना देते हैं। विचारी बालिका अपनी कच्ची उमरमें ही संसाररूप विशाल कार्य्य-क्षेत्रमें प्रवेश कर गृहिणी पदपर आरूढ़ हो गुरुतर कर्त्तव्यका बोझ अपने कोमल शिरपर उठानेके लिये वाध्य होती है। अथच अपने पदका दायित्व तथा कर्त्तव्यका गुरुत्व बिल्कुल नहीं समझ सकती। अविद्याके घोर अन्धकारमें पड़ी हुई मातायें भी गृहिणी-कर्त्तव्य सम्बन्धीय आवश्यक उपदेश अपनी कन्याओंको नहीं दे सकतीं। फलतः यह सुखमय संसार कितनो ही बालिकाओंके लिये महा कष्टकर तथा अशान्तिमय प्रतीत होता है; प्रेमपूर्ण पतिगृह यमपुरीकी भांति भयङ्कर जंचने लगता है। भगवान् मनुजीने लिखा है :—पतिकी सेवा, पतिकी मर्य्यादा और धर्म्म आदि विषयोंको न जाननेवाला कन्याका विवाह कर देना उसके पिताको उचित नहीं है।"*

नई बहुओंके गृहकार्य्यमें अपटु होनेके कारण लोग उनकी माताओंको दोष देते है, यह अनुचित नहीं; क्योंकि कन्याको गृहकार्य्यके उपयुक्त शिक्षा देना जननीका प्रधान कर्त्तव्य है। परन्तु दुःखकी बात है, कि जिस तरह एक अन्धा दूसरे अन्धेको रास्ता नहीं दिखा सकता, उसी तरह

---

* "अज्ञातपतिमर्य्यादामज्ञातपतिसेवनाम।
नोद्वाहयेत पिता बालामज्ञातधर्म्मशासनाम।"

हमारे देशकी स्त्रियां भी अपनी कन्याओंको उचित शिक्षा देनेमें सर्वथा असमर्था है। माता होती हुई भी वे अशिक्षिता और कर्त्तव्य-ज्ञानहीना हैं, इसलिये मातृपदके सर्वथा अनुपयुक्ता है, अथच यह मातृत्व एक ऐसा सद्गुण है, जो स्त्री जातिके महत्व और सम्मानको बढ़ाता है। मनु आदि ऋषियोंने एक स्वरमें कहा है :—"एक मात्र मातृत्वके लिये ही स्त्रियां पूजनीया हैं और रमणी हृदयमें इस महत् मातृत्व भावको लानेमें प्रधान सहायक है सन्तान लाभ।" महात्मा कालों प्रमस घोषने लिखा है,—"हमारे देशमें अब मातायें नहीं है, हम लोग एक मातृहीन देशमें वास करते हैं।"

किसी बंगविदुषीका कथन है :—"पुरुष धन लायें, चोर-बदमाशोंसे घरको रक्षा करें और स्त्रियां लाये हुए धनसे संसारका सब खर्च चलाकर गृहमें सुखशान्ति स्थापित करें। ऐसा न करनेसे सांसारिक कार्य्योंका निर्व्वाह अच्छी तरह कदापि नहीं हो सकता। संसारमें गृहिणीका कार्य्य सबसे कठिन है। कई तरहके स्वभाव वाले मनुष्योंकी इच्छाके अनुसार उनको कार्य्य करना पड़ता है; दया सहित अथच न्याय दृष्टिसे सबको सन्तुष्ट रखना होता है। सामान्य आमदनीसे घरका सब खर्च चलाकर कुछ पूंजी भी एकत्र करनी पड़ती है। परिवारवर्गके सुख और स्वच्छन्दताका उपाय अपनी बुद्धि और विवेचनासे ढूंढ लेना पड़ता है। घरके

बालक बालिकाओंको सुन्दर दृष्टान्तों द्वारा शिक्षा देनी पड़ती है। इसे कोई सहज काम नहीं समझना चाहिये।*

अवस्था अथवा अदृष्टको निन्दाकर वृथा समय नष्ट करनेसे कोई लाभ नहीं। हमारा यह परम कर्त्तव्य है, कि धीरे धीरे स्त्रियोंको उनके कर्त्तव्यके गुरुत्वका ज्ञान प्राप्त करा दें। इसी उद्देश्यसे यह पुस्तक लिखी जाती है। आशा है, कि भारतीय ललनायें इन उपदेशोंका मन लगाकर श्रवण और मननकर साध्यानुसार उसे कार्य्यमें परिणत करनेकी चेष्टामें त्रुटि न करेंगी।

गृहस्थाश्रम।

तीनों कालकी बातें जाननेवाले ऋषियोंने अवस्था और उमरके अनुसार जीवन-यात्रा निर्व्वाह करनेके लिये चार आश्रमोंका विधान किया है। जैसे,—(१) ब्रह्मचर्य्य, (२) गार्हस्थ, (३) वाणप्रस्थ और (४) सन्यासाश्रम। इन चारों आश्रमोंमें प्रथम ब्रह्मचर्य्याश्रम सबकी जड़ और गार्हस्थाश्रम सबके आश्रयकी जगह है।

भगवान मनुने लिखा है:—"जगत्‌के सब जीव जिस प्रकार हवाका आश्रय लेकर जीते हैं, उसी प्रकार दूसरे आश्रमवाले

* श्रीमती स्वर्णमयी गुप्ता कृत "उषाचिन्ता।"

भी गार्हस्थाश्रमका आश्रय लेकर जीते हैं। ब्रह्मचारीगण प्रति दिन गृहस्थोंसे विद्या लाभ करते हैं और वाणप्रस्थ तथा सन्यास आश्रम वाले अन्नादि प्राप्त करते हैं। इसलिये गार्हस्थाश्रम ही सबसे उत्तम और सबसे बड़ा है।"*

व्यासजीने कहा है:—"मैं बार बार तुम लोगोंसे कह रहा हूं, कि गार्हस्थाश्रमसे बढ़कर और कोई धर्म नहीं। जो विधिवत् गृहधर्म पालन कर सकता है, वह घर बैठे ही सब तीर्थों का फल पाता है।

महाभारतके शान्तिपर्वमें लिखा है,—"लोग ब्रह्मचर्य्य, गार्हस्थ्य वाणप्रस्थ और सन्यास, इन चार आश्रमोंका अवलम्बन कर जीवन बिताते हैं। शास्त्रानुसार गृहस्थाश्रम द्वारा ही उत्तम धर्म लाभ होता है। गृहधर्म छोड़कर वनमें वास करना वृथा है। देवता, पितृ और अतिथि गृहस्थ द्वारा ही तृप्ति लाभ करते हैं। नौकर-चाकर तथा पशु-पक्षी आदि जीव भी गृहस्थों द्वारा ही प्रतिपालित होते हैं। इसलिये गृही सबसे श्रेष्ठ है। गार्हस्थ्य-धर्म प्रतिपालन करना कोई सहज काम नहीं है। जो अपनी इन्द्रियोंको वशमें नहीं रखता वह गृह धर्मका पालन कभी नहीं कर सकता।"

---

* "यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्व्व जन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्व्व आश्रमाः॥
यस्मात् त्रयोप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्य्यन्ते तस्मात् ज्येष्ठाश्रमोगृही॥—मनु।

शान्ति पर्व्वमें और एक जगह लिखा है :—गार्हस्थ दूसरा आश्रम है। ब्रह्मचर्य्याश्रमसे निकल कर जो सदाचारी मनुष्य धर्म्मका काम कर उसका फल पाना चाहते हैं उन्हीके लिये गृहस्थाश्रम है। इस आश्रममें अर्थ, धर्म्म और काम ये तीनो ही प्राप्त होते हैं। यही आश्रम सब आश्रमोंकी जड है। गृहस्थाश्रममें रहकर यज्ञसे देवताओंको, श्राद्धतर्पणादिसे पितरोंको, वेदाध्ययनसे ऋषियोंको तथा सन्तानोत्पादन द्वारा प्रजापतिको प्रसन्न किया जा सकता है। शास्त्रोंमें कहा गया है :—“सबसे मधुर और प्रिय बोलना चाहिये। किसीकी निन्दा करना, कडी बात कहना, अवज्ञा, अहङ्कार अथवा घमण्ड करना बड़ा ही अनुचित है। अहिंसा, सत्य और अक्रोध, ये ही सब आश्रमोंकी अच्छी तपस्यायें हैं। गृहस्थाश्रममें अच्छे कपड़े और गहने पहनना, तेल और इत्र लगाना, गाना सुनना, विहार करना और सब तरहके भोजनसे असीम सुख मिलता है। गृहस्थाश्रममें रहकर जो अपना धर्म्म अच्छी तरह पालन कर सकते हैं, वे साधुओंकी तरह गति पाते हैं।”

एक अंगरेज गृहको लक्ष्यकर कह गया है :—“मनुष्य स्वर्गसे गिरकर उस राज्यके सब सुखोंसे वञ्चित हुआ है, किन्तु है गृहसुख! उसके पतनके बाद भी स्वर्गीय सुखमें तुम मौजूद हो। तुम धर्म्मका आश्रयस्थल हो। तुम्हारी गोदमें रह मुस्कुराता हुआ धर्म्म बड़ा ही सुन्दर मालूम होता है। उसकी

मुस्काराहट इतनी मधुर, शान्ति देनेवाली और मनोहर है, कि उसे देखकर सहज ही विश्वास होता है, कि स्वर्ग ही तुम्हारा जन्मस्थान है।"

पण्डित सेमुयेल स्माइल्स कह गया है :—"गृह गृहिणियोंके छोटे छोटे राज्य हैं, वहां उनका पूर्ण आधिपत्य रहता है। स्वाधीनता पूर्व्वक रानियोंकी भांति व अपनी इच्छानुसार सबसे सब काम कराती हैं, दूसरा कोई व्यक्ति उनकी इच्छाके विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता। गृहमें वही सर्व्वसर्व्वा हैं।'

यह बतानेकी आवश्यकता नहीं, कि जिस गृहस्थाश्रमकी प्रधानता और श्रेष्ठताके विषयमें ऊपर लिखा गया है, उसका जड़ गृहिणी ही है। केवल घरमें रहनेसे ही मनुष्य गृहस्थ नहीं बन सकता, बल्कि स्त्रीके साथ गृहवास करने वाले ही गृहस्थ कहलाते हैं। जिस गृहमें भार्य्या है, वही गृह है और भार्य्याहीन गृह वनके बराबर है।* भार्य्याहीन पुरुषकी गति नहीं होती। उसकी सब क्रियायें निष्फल हो जाती है। भार्य्याहीन पुरुषका देवपूजा तथा पञ्च महायज्ञोंका अधिकार नहीं। एक पहियेकी गाड़ी व। एक

---

* न गृहेन गृहस्थ स्याद्भार्य्यया कथ्यते गृही।
यत्र भार्य्या गृह तत्र भर्य्याहीन गृह वनम्॥
—वृहत् पराशर संहिता।

पत्तके पत्नीकी भांति भार्य्याहीन व्यक्ति भी किसी कार्य्यके योग्य नहीं। *

पञ्च महायज्ञ।

वेदोंका मर्माथ संग्रहकर भगवान मनुने गृहस्थ-धर्म्म पालनके लिये अपनी मनुसंहितामें जिन पञ्च महायज्ञोंकी व्यवस्था दी है, उनका अनुष्ठान यथारीति प्रति गृहमें होना बहुत जरूरी है। † वे पञ्च महायज्ञ इस प्रकार हैं—

(१) पढ़ने और पढ़ानेको ऋषियज्ञ, (२) देवताओंके उद्देश्यसे होमादि करनेको देवयज्ञ, (३) अन्नजल आदि द्वारा पशु-पक्षियोंके प्रतिपालनको भूतयज्ञ, (४) पिता पितामह आदि पूर्व्व पुरुषोंके श्राद्ध तथा तर्पणको पितृयज्ञ और (५) अतिथि सत्कार तथा दूसरे मनुष्योंके प्रति कर्त्तव्यपालनको नृयज्ञ कहते हैं। ‡

---

* "अदारस्य गतिर्नास्ति सर्व्वास्तस्याफला क्रिया।
सुरार्चनं महायज्ञं हीनभार्य्यो विवर्ज्जयेत॥
एकचक्रो रथो यद्वदेकपक्षो यथा खगः।
अभार्य्योऽपि नरस्तद्वदयोग्यः सर्व्व कर्म्मसु॥" —मतस्यसूक्त॥

† "ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञञ्च सर्व्वदा।
नृयज्ञं पितृयज्ञञ्च यथाशक्ति न हापयेत॥" —मनुसंहिता॥

‡ "अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथि पूजनं॥"

यदि विवेचना पूर्व्वक देखा जाय तो मालूम होगा, कि प्रत्येक हिन्दूके घरमें प्रति दिन उपरोक्त पञ्च महायज्ञ होते हैं, परन्तु अपनी अज्ञानताके कारण हम उनके महत् उद्देश्योंके दायित्व तथा गुरुत्वको समझ नहीं सकते, इसलिये गृहस्थ आश्रमी इन अवश्य कर्त्तव्य-कर्म्मों में वञ्चित रह दोषके भागी बनते हैं।

ऋषियज्ञ। देशके अनुभवी महाज्ञानियोंने मानव-जातिकी भलाईके लिये जो उपदेश दिये हैं, उन्होंके संग्रहको धर्म्म-शास्त्र कहते हैं। धर्म्मशास्त्रोंको पढ़ना तथा ऋषियोंके दिये हुए उपदेशोंके अनुसार कार्य्यकर मोक्ष पानेकी चेष्टा करना प्रत्येक गृहीका परम कर्त्तव्य है। हमारी भलाईके लिये जिन महापुरुषोंने अपना अमूल्य जीवन निछावर कर दिया है और आज भी जो सदा हमारी भलाईमें लगे हैं, उन ऋषि-तुल्य महात्माओंके प्रति यथाचित श्रद्धा और भक्ति दिखाना ऋषि-यज्ञका उद्देश्य है। इसलिये देशी वा विदेशी जीवित वा मृत, ऋषि तुल्य व्यक्तियोंके प्रति श्रद्धाभक्ति पूर्व्वक कृतज्ञता प्रकाश करना हमारा परम कर्त्तव्य है। परलोकगत ऋषि-योंके बनाये ग्रन्थों तथा उनके जीवन चरित्रोंको आग्रहके साथ पढ़ना और यत्न सहित उनको रक्षा करना परम कर्त्तव्य है। जीवित महापुरुषोंके घर आनेपर श्रद्धा सहित उनकी सेवा करनी चाहिये। ज्ञान तथा धर्म्म आदि विषयोंमें हम लोग ऋषियों द्वारा नाना प्रकारसे उपकृत हैं; सुतरां ऋणग्रस्त हैं।

इसीलिये हमारे पूर्व्वपुरुषोंने ऋषियोंके प्रति जो हमारा कर्त्तव्य है, उसे ऋषिऋण कहा है। हमें इस ऋषिऋणका परिशोध करनेमें कदापि त्रुटि नहीं करनी चाहिये।

देवयज्ञ। परम आस्तिक पूर्व्वपुरुषगण अग्नि वायु, सूर्य्य, चन्द्र तथा मेघ प्रभृतिमें देवशक्तिका अनुभव कर,उन्हें देवता समझ, धनधान्यादि भोग वस्तुओंके लाभार्थ अथवा देवऋण चुकानेके लिये देवयज्ञ किया करते थे। वस्तुतः देवताओंकी कृपासे पाये हुए भोग्यवस्तुओंका एक अंश भक्तिपूर्वक देवो-द्देश्यमें उत्सर्ग कर कृतज्ञता प्रकाश करना स्वाभाविक और गृहस्थ मात्रका नित्य कर्त्तव्य है। इसलिये जो प्राकृतिक ईश्वरीय-शक्तियां बराबर हमारी भलाई कर रही हैं, जिनके अभावसे हम क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकते, उन शक्तियोंके मूलाधार परम कारुणिक परमेश्वरके चरणोंमें प्रतिदिन प्रतिकार्य्यमें कृतज्ञता प्रकाश करना चाहिये। यही देवयज्ञका मुख्य उद्देश्य है।

भूतयज्ञ। पशु-पक्षी आदि जीवों तथा वृक्षलतादि उद्भिदों द्वारा प्रतिदिन हमारा विशेष हित साधन होता है। इसलिये आहार तथा जल द्वारा जीवोंकी और जल तथा सार (खाद) द्वारा वृक्षादि को रक्षा करना गृही मात्रका कर्त्तव्य है। यही भूतयज्ञका उद्देश्य है। इसलिये यत्न सहित उनका प्रतिपालन करना चाहिये। अपने बालबच्चोंकी पुष्टि और सुन्दरता देखकर हमें जितना आनन्द मिलता है,

इतर प्राणियों तथा पेड़ लताओंकी सुन्दरता देखकर भी उसी प्रकार खुश होना चाहिये।

पितृयज्ञ। शारीरिक बल-वीर्य, स्वास्थ्य, सामाजिक गौरव तथा सुख्याति आदि हमें पिता पितामहादि पूर्व पुरुषों द्वारा प्राप्त होती है, इसलिये श्रद्धाभक्ति पूर्वक उनकी सेवा पूजा तथा मृत व्यक्तियोंके उद्देश्यसे पिण्डदान, तर्पण और श्राद्ध आदि कर उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करना हमारा परम कर्त्तव्य है। इनमें माता-पिता ही हमारे लिये साक्षात् देवता हैं। इन्हें साक्षात् देवता समझ इनकी पूजा करनी चाहिये।* भगवान मनुने लिखा है—"एकमात्र माता-पिता की सेवा करनेसे ही सन्तान मोक्ष पा सकती है।" शास्त्रका वचन है —"पिता ही स्वर्ग, धर्म और परम तप है। एकमात्र पिताको प्रसन्न करनेसे ही देवता प्रसन्न होते हैं।" † परन्तु इससे यह कदापि न समझना चाहिये, कि शास्त्रकारोंने केवल पिताका ही प्राधान्य दिया है और माताको हेय समझा है। कदापि नहीं। शास्त्रोंका वचन है —"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।" अर्थात् जननी और जन्मभूमि स्वर्गसे भी श्रेष्ठ हैं। यहां यह भी बता देना आवश्यक

* मातरं पितरं चैव साक्षात् प्रत्यक्ष देवता।
मत्वा गृही निषेवेत सदा सर्व्व प्रयत्नत॥

† पिता धर्म्म पिता स्वर्ग पिताहि परमन्तप
पितरि प्रीति मापन्ने प्रीयन्ते सर्व्व देवता

है, कि स्त्रियोंके लिये उनके ससुर और सासका स्थान भी माता-पिताके समान ही है। इसलिये अपने माता-पिताको भांति उनको सेवा करना भी प्रत्येक गृहिणीका कर्त्तव्य है।

शास्त्रानुसार सन्तानोत्पादन भी पितृ-ऋणसे उद्धार पानेका एक उपाय है। श्रुतिकारने लिखा है :—

"यज्ञ द्वारा देवऋण, पुत्रोत्पादन द्वारा पितृऋण और वेदाध्ययन द्वारा ऋषिऋण छूटता है।" *

नृयज्ञ। दूसरोंकी सहायता बिना हम लोग अपना जीवन निर्व्वाह नहीं कर सकते। वास्तवमें मनुष्यकी भांति पर-मुखापेक्षी जीव पृथिवीपर दूसरा नहीं। सहायता प्रदान करने वालेके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करना, यथाशक्ति दूसरेको साहाय्य प्रदान करना, अतिथि अभ्यागतोंको सेवा सुश्रूषा तथा दूसरे प्रकारको नरसेवा करना ही नृयज्ञका उद्देश्य है। अतिथि सत्कार ही उसका आदर्श है। "सर्वदेव मयोऽतिथि।" अर्थात् अतिथि सर्व्वदेवमय है। इस ऋषि-वाक्य द्वारा अच्छी तरह प्रमाणित हो जाता है, कि हमारे पूर्व्वपुरुषगण अतिथि सेवाका माहात्म्य और गुरुत्व बहुत अच्छी तरह समझते थे। "अतिथि अभ्यागतोंके प्रति कर्त्तव्य" के विषयमें आगे चलकर बहुत कुछ कहना है, इसलिये यहां अधिक नहीं लिखा गया। परन्तु यह सदा स्मरण रखना चाहिये, कि यह यज्ञ गृही-

* यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः स्वाध्यायेन ऋषिभ्य।
इति श्रूयन्ते॥ कुल्लूकभट्ट कृत टीका। ६। ३६।

मात्रको अवश्य करना चाहिये, इसमें कदापि विमुख न होना चाहिये।

गृह हो लक्ष्मीका वासस्थान और धन रत्नादिका आधार स्वरूप है। गृहिणी उस गृहकी लक्ष्मी स्वरूपिणी है। गृहको धन जनसे परिपूर्ण करना, कुल सांसारिक अभावोंको दूर करना, तथा गृहकी प्रत्येक सामग्रीको साफ और सजाकर रखना प्रत्येक गृहिणीका कर्त्तव्य कार्य है। वही धनकी रक्षा करनेवाली और खर्च करनेवाली है।

लक्ष्मी चरितमें लिखा है, कि एक बार नारायणने लक्ष्मीसे पूछा,—"तुम कैसी गृहिणियोंके गृहमें वास करना पसन्द करती हो?" लक्ष्मीजीने उत्तर दिया—"सफाईसे रहनेवाली, पतिव्रता, प्रिय बोलनेवाली, उचित खर्च करनेवाली, बालबच्चे-वाली, अर्थ सञ्चय करनेवाली, प्रेमसे देवताकी पूजा करनेवाली घरको सदा साफ रखनेवाली, अपनी इन्द्रिया अपने वशमें रखने वाली, झगड़ा न करनेवाली, लोभ न करनेवाली, धर्मकर्ममें लगी रहनेवाली तथा दयावती स्त्रियोंमें ही मैं वास करती हूं। जिनमें ये गुण होते हैं, उन्हें मैं मधुसूदनको भांति प्रिय समझती हूं। *

लक्ष्मी चरितमें और एक जगह लिखा है :—"एक मात्र

* नारीषु नित्यम् सुविभूषितासु, पतिव्रतासु प्रियवादिनीषु।
अमुक्तहस्तासु सुतान्वितासु, सुगुप्त भाण्डासु बलिप्रियासु॥
सम्मृष्ट वेश्मासु जितेन्द्रियासु स्थिता सदाहम्मधुसूदनेतु॥

शुद्ध सत्त्व स्वरूपा महा आद्याशक्ति भगवती ही वैकुण्ठमें महा-लक्ष्मी, स्वर्गमें स्वर्गलक्ष्मी, मृत्युलोक और पातालमें राजलक्ष्मी, कुलमें कुललक्ष्मी और गृहस्थोंके घरमें गृह-लक्ष्मी आदि भिन्न भिन्न रूप धारण किया करती हैं। त्रिभुवन-पूज्या महालक्ष्मी ही "गृह-लक्ष्मी" नाम धारणकर गृहस्थोंके घरोंमें रहती है। जो गृहस्थ धानको सोनेकी भांति और चावलको चान्दीकी भांति समझते हैं, और जिनके पाक किये हुए अन्नमें भूसी, केश अथवा कङ्कडी आदि नहीं होतीं उन्हींके प्रति लक्ष्मीकी कृपादृष्टि रहती है।"

गृह ही प्रधान विद्यालय है, और गृहिणी ही वहां शिक्षा-दायिनी सरस्वती रूपसे विराजती है। वही अच्छे अच्छे दृष्टान्तों तथा उपदेशों द्वारा अपने बालबच्चोंको अच्छी शिक्षा देती है। ज्ञान, धर्म और सच्चरित्रता आदि जितने अच्छे गुण और गौरवके विषय हैं, उनकी जड़ गृह-शिक्षा ही है। घरमें जो कुछ हम सीखते हैं, वह गुप्त रूपसे जिन्दगीभर हमारे काम आता है। किसी युरोपीय पण्डितने लिखा है—"बच्चोंका चरित्र-सङ्गठन और उनकी भावी उन्नति एक मात्र उनकी माताओंके गुण-दोषपर निर्भर करती है। इस विषयमें पिताकी अपेक्षा माताकी ही अधिक प्रधानता प्राप्त है।" और एक विद्वानका कथन है:—"सैकड़ों शिक्षकोंकी अपेक्षा एक उपयुक्त शिक्षिता माताकी शिक्षा अधिक कामकी होती है।"

महावीर नेपोलियन बोनापार्ट कहा करता था :—"सन्तानका भावी दुःख-सुख तथा उन्नति-अवनति उनकी माताओंके गुणदोष पर निर्भर करती है। • माताकी दी हुई शिक्षा द्वारा ही हमने ज्ञान प्राप्त किया है और वही हमारी उन्नतिकी जड़ है।"

आगे चलकर इस विषयमें और भी लिखा जायगा। शास्त्रोंमें सरस्वती देवीके रूप और गुणकी जो वर्णना पाई जाती है, वह गृहिणियोंके आदर्श पर ही प्रतीत होती है।

गृह एक प्रकारका राज्य है और गृहिणी उस राज्यकी रानी है। एक राज्यके शासन और उसकी रक्षाके सम्बन्धमें राजाके जो कर्त्तव्य हैं, उनसे गृहिणीके कर्त्तव्योंकी अच्छी तरह तुलना हो सकती है। राज्य-शासनके लिये दुष्टोंका दमन और शिष्टोंका पालन करना, शान्ति तथा आमदनी और खर्चके हिसाब आदिकी रक्षा करना तथा राज्यकी समस्त प्रजाके सुख स्वच्छन्दताकी पूरी व्यवस्था करना जैसे प्रत्येक कर्त्तव्य-परायण राजाका कर्त्तव्य है, वैसे ही गृहरूप राज्यका शासन और संरक्षण आदि सुनिपुणा गृहिणीका अवश्य कर्त्तव्य-कार्य्य है। राजा जिस तरह अपने राज्यका प्रधान कर्त्ता और नेता समझा जाता है ; उसकी शिक्षा, अभिज्ञता और कार्य्यदक्षता आदि पर ही जैसे राज्यकी उन्नति अनवतिका दारमदार है, उसी तरह गृहकी शान्ति, सुख और उन्नति आदिका दार-

मदार गृहिणी पर है। फलतः राजाका कर्त्तव्य जैसा गुरुतर दायित्व पूर्ण और कठिन है, यदि विवेचना पूर्व्वक देखा जाय, तो गृहके सम्बन्धमें गृहिणीयोंका कर्त्तव्य-कार्य्य उसकी अपेक्षा कम दायित्व पूर्ण कदापि नहीं है। जहां राजा नहीं होता वहां जैसे तरह तरहकी गड़बड़ियां उठा करती हैं और अराजकता आदि उपद्रव हुआ करते हैं, वैसे ही गृहिणीके न होनेके कारण गृहमें गड़बड़ी पैदा होजाती है। राजाकी फजूलखर्चीके कारण जिस तरह राज्यमें महँगी पड़ जाती है, उसी तरह गृहिणीकी फजूल-खर्चीके कारण गृहमें अन्नादिकी कमी पैदा होती है। गृह आनन्दमय शान्ति-निकेतन है। प्रत्येक गृहिणी उस निकेतनकी आनन्द-दायिनी प्रेममयी देवी है। तरह तरहके सांसारिक कष्टोंको सहकर भी लोग जिस तरह गृहकी उन्नति करनेमें लगे रहते हैं, उससे प्रतीत होता है, कि गृहकी भांति सुख तथा शान्ति और कहीं नहीं मिल सकती।

वालक वालिकाओंके विद्यालयसे थककर लौटनेपर गृहिणी ही जननी रूपसे आगे बढ़कर उन्हें प्रसन्न कर देती है। माताका स्नेह और वात्सल्य देख बच्चे तुरन्त ही अपने सब क्लेशोंको भूल जाते हैं। युवक तथा प्रौढ़ मनुष्य भी दिन भर परिश्रम करनेके बाद शामको सुख-शान्ति पानेकी इच्छासे ही घर आते हैं और भार्य्याका हँसता हुआ मुख देख तथा उसकी प्रेम भरी बातें सुन एवं बालक-बालिकाओंके सरल तथा मधुर भाव देख

अपनी सारी थकावटों और चिन्ताओंको भूल मानों पवित्र शान्ति-सागरमें गोते लगाने लगते हैं। जो इस पवित्र पारिवारिक सुखसे वञ्चित हैं, उनसे बढ़कर अभागा संसारमें दूसरा नहीं। एडमण्ड बर्कने लिखा है:—"बाहरी कलह, विवाद और अशान्तिको छोड़कर जब घर आते हैं तब शरीर और आत्मा शीतल हो जाते हैं।"

चाणक्यने लिखा है:—जिसके घर माता न हो और जिसकी भार्य्या मीठा बोलना न जानती हो उसे घर छोड़कर वनमें चला जाना चाहिये। क्योंकि उसके लिये घर और वन दोनों ही बराबर हैं।"* और एक विद्वानने कहा है:—"जिस समय मैं अपने घरमें प्रवेश करता हूं, उस समय मेरे मनकी समस्त दुर्भावनायें और दुःख दूर हो जाते हैं।"

इसलिये घरको सच्चा आनन्दाश्रम और शान्तिनिकेतन बनानेकी ओर हर घड़ी नजर रखनी चाहिये। लक्ष्मी चरितमें लिखा है;—"यदि गृहिणी सदा प्रसन्न रहनेवाली, किसीकी बुराई न चाहनेवाली, मधुर बोलनेवाली और घमण्ड न करनेवाली न हो तो गृहमें सुख-शान्ति नहीं रह सकती। महात्मा पार्कर कहते हैं;—"उदासीन सन्यासियोंकी भांति नीरस जीवन बिताना उचित नहीं।

* माता यस्य गृहेनास्ति भार्य्या चाप्रियवादिनी।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथागृहम्॥

क्योंकि निरानन्द जीवन अनेक अलक्षित पापोंकी जड़ जमाता है।"

घर ही प्रधान देवमन्दिर है। हितोपदेशमें एक जगह लिखा है :—"आहार, निद्रा, भय और सहवास आदिमें मनुष्य भी पशुके समान ही है, केवल एक धर्म्म ही उसको दूसरे जीवोंसे बड़ा बनाता है, इसलिये धर्म्महीन मनुष्य पशुके बराबर है।" अतएव जिस घरमें धर्म्मका आदर और अनुष्ठान नहीं, वह पशुशालाके समान है। और जिस घरमें गृह-देवताकी पूजा नहीं होती, भगवानका नाम उच्चारित नहीं होता, धर्म्मचर्चा नहीं होती, अतिथि-अभ्यागतोंका यथोचित आदर-सत्कार नहीं होता, वह घर भूत-पिशाचोंके रहनेको जगह वा मरघटके समान है।

महाभारतके शान्तिपर्व्वमें लिखा है;—"पुरुषोंके धर्म्म, अर्थ और काम प्राप्त करनेके साधनमें केवल भार्य्या ही सहायता दे सकती है; दूसरा नहीं।" शास्त्रानुसार स्त्रीहीन अर्थात् अकेले पुरुषको धर्म्म-कर्म्मका अधिकार नहीं, इसीलिये ऋषियोंने कहा है :—"सस्त्रीको धर्म्ममाचरेत्" अर्थात् स्त्रीके साथ रहकर धर्म्म-कर्म्म करना चाहिये। रामायण प्रायः सबने पढ़ी होगी। उसमें लिखा है, कि सीताजीके न रहनेके कारण रामचन्द्रजीको सोनेकी सीता बना कर यज्ञ करना पड़ा था।

सच्ची गृहिणी वही है, जो गृहस्थी और धर्म्मको

एक समझती है। इसलिये इस बातका सदैव ख्याल रखना चाहिये, कि जिसमें गृह धर्म्मभाव-विहीन न होने पाये।

अग्निपुराणमें गृहिणियोंके कर्त्तव्यके विषयमें लिखा है:—"स्त्रीको खूब सवेरे उठकर अपने स्वामी और देवताओंको प्रणाम करना चाहिये। गोबर और जलसे घर-आंगन पोतना चाहिये। सवेरेके अन्यान्य कामोंसे छुट्टी पाकर, नहा-धो लेनेपर, देवता, ब्राह्मण, पति और कुल-देवताकी पूजा करनी चाहिये।" *

एक महात्माने लिखा है,—"नारियोंमें बुद्धिबल कम होनेपर भी उनका हृदय बड़ा ही उच्च होता है। मनुष्यके प्रति स्नेह और ईश्वरकी भक्तिसे नारी-हृदय भरा होता है। उनके स्वभावमें आस्तिकता विराजती है इसलिये नास्तिकता को वहां जगह नहीं मिल सकती। इतिहास इस बातकी साक्षी देता है, कि जो धर्म्म अन्तःपुरमें प्रवेश नहीं कर सका—स्त्रियोंके हृदयको छू नहीं सका—वह संसारमें कभी भी स्थायी न हुआ।"

लूथर कह गया है:—"मैंने कई बार देखा है, कि जब

---

* "सा सुप्ता प्रातरुत्थाय नमस्कृत्य पतिं सुरं।
प्राङ्गणे मण्डलं दद्यात् गोमयेन जलेन वा॥
गृहे कृत्यस्य कृत्वा च स्नाता गत्वा गृहं सती।
सुरं विप्रं पतिं नत्वा पूजयेत गृहदेवताः॥"—अग्निपुराण।

स्त्रियां परमार्थतत्त्वको सत्यताको समझ लेती हैं, तब उनके भक्ति और विश्वासमें अधिक तेज आ जाता है। पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक दृढ़ता और अचलतासे वह उसे धारण करती हैं।"

ऋषि-मुनियोंने कहा है:—"पत्नीकी सहायतासे मनुष्य अर्थ, धर्म और काम इन तीनों पदार्थोंको पाता है। जिसकी स्त्री पतिकी आज्ञाका पालन करती हुई उसके प्रिय कार्य्योंको करती है, उसके लिये घर ही स्वर्ग है।" *

गोस्वामी विजय कृष्णजीने कहा है:—"स्त्रीको भगवानकी शक्ति तथा देवी समझकर उनकी भक्ति करनी चाहिये और अच्छी तरह उनका भरणपोषण करते रहना चाहिये। जो पत्नीको साक्षात् देवी नहीं जानता, उसके घरमें शान्ति और मङ्गल नहीं होता।"

गृह ही आहार-विहारके लिये उत्तम आश्रम है। गृहिणी उस आश्रमकी अन्नदायिनी देवी है। भोजन बना कर परिवार तथा अतिथि-अभ्यागतोंको खिलाना, उसका सबसे महान् कर्त्तव्य है। शास्त्रमें लिखा है:—"स्त्रीको चाहिये, कि रसोई बनाकर सबसे पहले पति तथा घरके अन्यान्य लोगोंको अच्छी तरह भोजन कराये अनन्तर स्वयं थोड़ा आहार कर गृह-नीतिका पालन करे।"

---

* "तया धर्मार्थकामानां त्रिवर्गफलमश्नुते।
अनुकूलकलत्रो यस्तस्य स्वर्ग इहैव हि॥"

जिस तरह शरीरको पुष्ट रखने और जीनेके लिये भोजन करना जरूरी है, उसी तरह वह सुख देनेवाला भी है। जिस तरह हो पेट भर लेनेके लिये हो भोजन करनेकी आवश्यकता नहीं, वरं शरीरके स्वास्थ्य और रसनाको तृप्तिकी ओर भी ध्यान देना जरूरी है। इसलिये खानेकी चीजोंके गुण-दोषका भी विचार कर लेना चाहिये। साथ ही इस बातका भी खयाल रखना चाहिये, कि कौनसी वस्तु किस तरह बनानेसे स्वादिष्ट और बलकारक हो सकती है। प्रत्येक गृहिणीको इन बातोंका सदा ध्यान रखना चाहिये।

दूसरा उपदेश ।

समय और श्रम ।

"जो अपनी मदद आप करते हैं, उनकी मदद ईश्वर करता है।"

"मानव-जीवनकी दीर्घताका पता उसके अच्छे कामोंसे लगता है, न कि उसके जीवन-कालकी अधिकतासे।"

—स्माइल्स।"

जो काम नहीं करना चाहता उसे खाना भी नहीं चाहिये।"

"काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पलमें परलै होयगो बहुरि करेगो कब॥"

—कबीरदास।

मनुष्यके दुःख-सुख और उन्नति अवनति समय और परिश्रम पर ही निर्भर हैं। समयका उचित व्यवहार तथा मिहनत न कर आलसीकी तरह पड़े रहनेसे मनुष्यकी उन्नति कदापि नहीं हो सकती। कहावत है, कि आलस्यकी छायामें दुःखकी कमी नहीं। गृह मनुष्यका प्रधान कर्म्मक्षेत्र, और समय तथा उसका उचित व्यवहार उसके कर्म्मसाधनके प्रधान सहायक और अवलम्बन हैं। इसलिये गार्हस्थ-धर्म्म पालन

सम्बन्धी दूसरी बातोंसे पहले समयके विषयमें कुछ कहना बहुत जरूरी है।

समय क्या है?—इस प्रश्नका ठीक ठीक उत्तर देना बड़ा कठिन काम है। एक प्रकारसे विचार किया जाय तो समयका आदि भी नहीं, अन्त भी नहीं और समयमें कोई शक्ति भी नहीं। परन्तु दिन और रातके रूपमें समय सदैव आता और जाता है। पण्डितोंने इस दिवा-रात्रिको ही एक दिन माना है। ऐसे सात दिनोंका एक सप्ताह, पन्द्रह दिनोंका पक्ष, साधारणतः तीस दिनोंका एक महीना और तीन सौ पैंसठ दिनोंका एक वर्ष होता है। सप्ताह, पक्ष, महीना तथा वर्षका विभाग केवल मनुष्योंकी कल्पना ही नहीं, वरं इस सामयिक विभागका पृथिवीकी रोजाना और सालाना चाल तथा सौर-जगतके नक्षत्र-आदिसे भी घनिष्ट सम्बन्ध है।

समय मनुष्य-जीवनके परिमाणको भी बताता है। क्योंकि पृथिवीपर जो जितने ही अधिक समय तक जीते हैं, वे उसीके अनुसार दीर्घजीवी कहलाते हैं। एडिसन नामके एक विद्वानने कहा है:—"समय क्या है?—इसका उत्तर थोड़ेमें नहीं दिया जा सकता। परन्तु यह कहा जा सकता है, कि समयका आदि और अन्त नहीं होता। हर एक आदमीके जन्मसे लेकर मरण तकका समय मानों उसके जीवनके समयकी सीमा है। दिनरात, सप्ताह, पक्ष और मास आदि उसके छोटे

छोटे हिस्से हैं। समयके सम्बन्धमें एक और बड़ी विचित्र बात सुननेमें आती है। प्राय: सभी लोग समय (जीवन) को बहुत थोड़ा बताकर आक्षेप किया करते हैं और फिर वेही अपने वर्त्तमान समयको बहुत लम्बा-चौड़ा बताकर उसको संक्षिप्त करनेके लिये यत्न करते हैं।" मानले कि एक मनुष्य अस्सी वर्षतक जीता रहेगा, सुतरां एक वर्ष उसके जीवनका अस्सीवां भाग और एक महीना नौ सौ साठ भागका एक भाग मात्र है। इसी तरह दिन, घण्टा, मिनट आदि उसके जीवन-कालके छोटे छोटे अंश हैं। क्योंकि इन सबकी समष्टि ही एक जीवन-परिमाण-स्वरूप समझी गई है। फलत: समय और जीवन एक ही चीज हैं, इसलिये समय खोना मानों अपना जीवन खोना है। इसे सदा याद रखना चाहिये।

महात्मा सा इलुसने लिखा है:—वर्षों की गणनाकर मनुष्य को जिन्दगीकी लम्बाईका अन्दाजा लगाना ठीक नहीं, वरं उसके किये हुए अच्छे कामों द्वारा ही उसकी जिन्दगीकी दीर्घताका अन्दाजा लगाना चाहिये।" फलत: बेकार और मरे हुए मनुष्यमें कोई विशेष फर्क नहीं दिखाई देता। क्योंकि यदि कोई मनुष्य सौ वर्ष तक जीवित रहकर भी कोई काम न करे तो उसका जीना और न जीना दोनों ही बराबर हैं, इसलिये सदा याद रखना चाहिये, कि अधिक उमरका मनुष्य प्रवीण नहीं समझा जाता वरन् ज्ञानी तथा सुकर्म्म

करनेवाला मनुष्य ही वास्तविक प्रवीण है। कहावत भी है, कि वयस बड़ी या अक्ल?

जो समय चला जाता है, वह फिर नहीं आता। लोग कहा करते हैं,—"गया वक्त फिर हाथ आता नहीं।" जिस तरह बचपन, लड़कपन और जवानी आदिके बीत जाने पर फिर उनके लौटनेकी सम्भावना नहीं रहती, उसी तरह जीवनका अग्र स्वरूप समय भी बीत जानेपर फिर वापस नहीं आ सकता। जो क्षण—जो घड़ी—बीत गई वह हजार कोशिश करने पर भी नहीं लौट सकती है। बीते हुए समयको लौटा लाना तथा जाते हुए समयको रोक रखना मनुष्यको शक्तिसे बाहर । समयके सम्बन्धमें, मनुष्यको केवल यही अधिकार है कि वह उसका यथोचित व्यवहार करे। इसके सिवा और कोई अधिकार नहीं। प्रत्येक मनुष्य उपस्थित समयका अपनी इच्छाके अनुसार व्यवहार कर सकता है। फलत जो व्यक्ति उस उपस्थित समयका अच्छे कामोंमें लगाता है, वही संसारमें वास्तविक सुखी हो सकता और महापुरुष कहला सकता है।

लक्ष्मीचरित्रमें लिखा है —"जो गृहिणी दिनमें नहीं सोती, जरासा समय भी वृथा नहीं खोती और हर एक कामको ठीक समयपर करती है, उसीके घरमें लक्ष्मी निवास करती हैं।"

विलायतके एक मशहूर व्यवसायीने अपने कारखानेकी दीवालोंपर नीचे लिखे हुए उपदेशोंको लिख रखा था:—

"समय ही सोना है, इसलिये उसे वृथा खोना ठीक नहीं। प्रत्येक क्षणको अच्छे काममें लगाना चाहिये।"

"आज जो कर सकते हो, उसे कलपर मत छोड़ो।"

"जो काम तुम स्वयं कर सकते हो, उसे दूसरोंसे करायो।"

"विना मिहनतके कुछ नहीं मिलता।"

"बीता हुआ समय फिर नहीं लौटता।"

पाठिके! आप जरा विचार करें तो मालूम हो जायगा, कि ऊपर लिखी बातें कैसी सारवान और महत्वसे भरी हुई हैं। आपको चाहिये, कि इन बातोंको बड़े बड़े अक्षरोंमें लिखवाकर अपने कमरेमें तस्वीरोंकी तरह लटका दें, जिसमें हर घड़ी इनपर नजर पड़ती रहे। क्योंकि इन बातोंको मन्त्रकी भांति याद रखना प्रत्येक गृहिणीका कर्त्तव्य है।

कामको अच्छी तरह करनेके लिये सुनियम और शृङ्खलाकी आवश्यकता है। जरूरी कामोंमें अधिक समय लगा देना ही समयका उचित व्यवहार करना नहीं कहलाता; क्योंकि ऐसी बहुत सी गृहिणियां हैं जो दिनभर परिश्रम करती रहने पर भी अपने दैनिक कामोंको पूरा नहीं कर पातीं। विरुद्ध इसके बहुत सी गृहिणियां ऐसी भी हैं, जो घरके कुल दैनिक कामोंको अकेली ही, बहुत थोड़े समयमें पूरा कर डालती हैं, और बाकी समय लिखने पढ़ने वा सीने-पिरोनेमें

बिताती हुई आराम करती हैं अथवा अवसर पाकर आगेके कामोंको ही कर डालती हैं। इसलिये काम करनेकी रीति अच्छी तरह समझ लेना बहुत जरूरी है, जिसमें समय और मिहनत बरबाद न हो।

विलायतके प्रसिद्ध ऐतिहासिक टामस फुलरने लिखा है :—"अपनी चिन्ताओंको सिलसिलेवार बना डालो; क्योंकि ढीला बांधनेवालेका बोझ खुल जाता है, टेढ़ा होकर उसके कन्धोंपर लटक जाता है अथवा नीचे गिरकर रास्ता रोकने लगता है, परन्तु जो कसकर बोझ बांधना जानता है, वह दूनी चीजोंको अच्छी तरह बांधकर अनायास ले जा सकता है। दूसरे कामोंके बारेमें भी ऐसा ही समझना चाहिये। जो अपने कामोंको सिलसिलेवार और नियमितरूपसे करते हैं, वे सहज ही बहुत सा काम कर डालते हैं।"

काम करनेकी रीति और उसका सिलसिला ठीक नहीं रहता तो एक घण्टेके कामके लिये तीन घण्टे लगा देनेपर भी वह भली भांति पूरा नहीं होता। *थोड़े समयमें बहुत सा काम कर डालना ही परिश्रम सम्बन्धीय नियम और सिलसिला ठीक कर लेनेका प्रधान उद्देश्य है।*

यद्यपि मनुष्यके कामोंको कोई सीमा या तादाद नहीं है तथापि बहुतसे काम ऐसे हैं, जिन्हें प्रति दिन करना पड़ता है। इसलिये प्रति दिनके कामोंके लिये एक सिलसिला ठीक कर लेना बहुत ही जरूरी है। किस कामके बाद

कौनसा काम करना आवश्यक और सुविधाजनक है, इस बातका विचार पहले ही कर लेना चाहिये। बहुतसे ऐसे छोटे छोटे कार्य्य हैं, जो दूसरे बड़े कामोंमें लगे रहने पर भी किये जा सकते हैं। बहुत सी गृहिणियां रसोई करनेके समय चूल्हेके पास ही बैठी रहती हैं। विरुद्ध इसके बहुत सी उसी अवसरमें और भी अनेक छोटे छोटे कामोंको कर डालती हैं। इसलिये घरके कामोंको सिलसिलेवार ठीक कर लेना बहु जरूरी है। एक सिलसिलेसे समयका सुव्यवहार करना सफलताकी प्रधान कुञ्जी वा मन्त्र है। केवल इसी एक उपायसे अपने समय और जीवनका यथोचित सद्व्यवहार किया जा सकता है।*

जो काम जिस समयका हो, उसे उसी समय कर डालना चाहिये। जो कहा करते है, कि आज नहीं कल कर लेंगे, उनके काम कभी पूरे नहीं होते। "आज नहीं फिर करेंगे", इस तरह बातें कर जो मनुष्य कामको पूरा करनेमें वृथा देर करता है, उसे 'दीर्घसूत्री' कहते है। दीर्घसूत्रता एक बड़ा भारी दोष है। पण्डितोंने आलस्य, निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध और दीर्घसूत्रताको प्रधान दोष माना है। विलायतके किसी विद्वानने लिखा है:—"समय निकल जानेपर बहुत

* "The methodical employment of time is one of the great secrets of success It is the only way by which one can do justice to time and to ouerselves."

—The Secret of Success

लोग कहा करते हैं, कि अमुक काम आज ही कर लेना चाहता था, परन्तु मैं उसे करना भूल गया। खैर, कल करलूंगा, परन्तु दुःखकी बात है, कि कल पर किसीका अधिकार नहीं।" उर्दू भाषाके नामी कवि स्वर्गीय सुरूरने लिखा है:—
"कोशिश करो कि कलका है क्या ऐतबार।" इसलिये, यदि समय और अवस्था खराब न हो तो हरएक कामको ठीक उसके समय पर हो कर डालनेका यत्न करना चाहिये। एक कहावत है—"शुभस्य शीघ्रं अशुभस्य काल हरणं।" फलतः जो करना है, उसे जल्द ही कर डालना चाहिये।

सर वाल्टर स्काटने लिखा है:—"अपने जरूरी कामोंको करनेके बाद विश्राम करना चाहिये। काम पूरा होनेके पहले आराम करना उचित नहीं। सेनाके लड़ाईपर जानेके समय जबतक अगली कतार यथा-रीति आगे नहीं बढ़ती तब तक पिछली कतारोंमें बड़ी गड़बड़ी मची रहती है। ठीक ऐसी ही दशा संसारके और कामोंको भी होती है। क्योंकि उपस्थित कामोंको सबसे पहले नियमितरूपसे किये बिना अन्यान्य काम पिछड़ जाते हैं और यथारीति—यथासमय न होनेके कारण करनेवालेको व्याकुल कर डालते हैं।"

महाभारतमें लिखा है, कि एक बार महामति भीष्मजीने राजा युधिष्ठिरको उपदेश देते हुए कहा था,—"हे महाराज! जो मनुष्य भविष्यत् सोचकर कार्य्य करता है, उसे 'अनागत विधाता' सहसा कोई काम आ पड़नेपर जो अपनी बुद्धिसे उसके

लिये शीघ्रही कोई अच्छा उपाय सोच लेता है, उसे "प्रत्युत्पन्नमति" और काम आ पड़नेपर जो उसे काल पर छोड़ देता है, उसे 'दीर्घसूत्री' कहते हैं। इस संसारमें अनागतविधाता और प्रत्युत्पन्नमति ही सुख पाते हैं, तथा दीर्घसूत्री शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। मैं आपको एक कहानी सुनाता हूं, उसे सुनिये,—किसी थोड़े जलवाले तालाबमें कुछ मछलियां रहती थीं। उनमें तीन मछलियां बड़ी थीं। उन तीनोंमें एक अनागतविधाता, दूसरी प्रत्युत्पन्नमति और तीसरी दीर्घसूत्री थी। एक बार धीवरोंने मछलियां पकड़नेकी इच्छासे तालाबका जल निकालना आरम्भ किया। तालाबका जल कम होते देखकर दीर्घदर्शी मछलीने अपने दोनों मित्रोंसे कहा, कि अब हम लोगोंको यहांसे शीघ्र ही चल देना चाहिये, नहीं तो तालाबका जल सूख जानेपर बड़ी विपदमें पड़ जाना पड़ेगा। जो मनुष्य विपद आनेके पहलेसे ही सावधान रहता है, उसे कष्ट नहीं उठाना पड़ता। इसलिये विपद आनेके पहले ही हम लोगोंको इस स्थानको छोड़ किसी निरापद स्थानमें जाकर रहना चाहिये। दीर्घसूत्री ने कहा, कि तुम्हारा कहना ठीक है, परन्तु किसी काममें जल्दी करनी उचित नहीं। इसी समय प्रत्युत्पन्नमति मछलीने कहा,—"मुझे भविष्यत्‌का विचार कर कार्य्य करना नहीं आता, परन्तु विपद आ पड़नेपर मैं उससे बचनेकी तदबीर कर लिया करती हूं"। अनागतविधाता मछलीने समझ लिया, कि साथियोंकी इच्छा इस समय

भागनेको नहीं है, इसलिये वह अकेली ही उस स्थानको छोड़ गहरे पानीमें चली गई।

कुछ काल बाद जलाशयका जल सूख गया। धीवरोंने मछलियोंको पकड़नेके लिये जाल डालना प्रारम्भ कर-दिया। फलतः अन्य मछलियोंके साथ—दीर्घसूत्री तथा प्रत्यु-त्पन्नमति—ये दोनों मछलियां भी पकड़ी गईं। इसके बाद धीवरोंने पकड़ी हुई मछलियोंको एक रस्सीमें नथ डाला। प्रत्युत्पन्नमति मछली भी उसीमें नाथी गई। विपद उपस्थित देख उसने धीरे धीरे रस्सीको काटना आरम्भ किया। इधर धीवरगण अपना कार्य्य समाप्तकर पकड़ी हुई मछलियोंको स्वच्छ जलमें धोने लगे। इसी समय सुअवसर पाकर प्रत्यु-त्पन्नमति मछली भाग गई। किन्तु हीनबुद्धि दीर्घसूत्रीने अपने बचावका कोई उपाय नहीं किया। परिणाम स्वरूप अन्तमें उसे अपने प्रिय जीवनसे हाथ धोना पड़ा।"

जो काम करना हो उसे अपना कर्त्तव्य समझ कर करना चाहिये। मनुष्य सुखका दास है, जिस काममें सुख नहीं उसे कोई करना नहीं चाहता। किन्तु बहुतसे कार्य्य ऐसे होते हैं, जिन्हें, सुखकर न होने पर भी, कर्त्तव्यके अनुरोधसे करना ही पड़ता है। इसलिये कामको पूरा करनेमें कर्त्तव्य-ज्ञानकी ही प्रधान आवश्यकता है। जब हम अच्छी तरह समझ लेंगे, कि अमुक कामको करना हमारा कर्त्तव्य है, तब वह कार्य्य चाहे सुखकर हो वा दुःखकर,

सहज हो वा कठिन, कर्त्तव्य पालनके विचारसे उसे करना ही पड़ेगा। संसारमें सबसे बढ़कर सुखी वही है, जो परायेका मुंह न देख अपने कर्त्तव्य-कार्य्योंको आप ही कर लेता है।

गृह-धर्म्म पालन करनेमें गृहिणियोंके कर्त्तव्यकी सीमा नहीं। घरके कुल कामोंको करना उनका कर्त्तव्य है। कर्त्तव्यका बोझ शिरपर लेकर ही वे संसारमें आती हैं। इसलिये जो कुछ उनका कर्त्तव्य है, चाहे वह सुखकर हो अथवा दुःखकर, रोगीकी दवाकी भांति उसे पूरा कर डालना ही उचित है।

हर एक कार्य्यमें सहिष्णुताकी आवश्यकता होती है। धैर्य्य, सहिष्णुता और अध्यवसाय आदि गुणोंकी कमीके कारण कोई भी बड़ा काम अच्छी तरह सम्पादित नहीं हो सकता। कर्त्तव्य समझ कर जिस काममें लगना चाहिये, उसे हजार विघ्नबाधा उपस्थित होनेपर भी न छोड़ना चाहिये—

"कार्य्यं वा साधयामि देहं वा पातयामि।"

यही सच्चे अध्यवसायी और दृढ़प्रतिज्ञ लोगोंका लक्षण है। बहुतसे कार्य्य ऐसे भी आ पड़ते है, जिनके करनेमें बार बार अकृतकार्य्य होना पड़ता है। ऐसी दशामें धैर्य्य, सहिष्णुता तथा अध्यवसायकी बड़ी जरूरत होती है। किसीने कहा है,—"जो सहता है, वही रहता है।" वस्तुतः अध्यवसायी मनुष्यके ऐसा नहीं, जिसे करनेमें उसे असमर्थ होना पड़े।

भागनेको नहीं है, इसलिये वह अकेली ही उस स्थानको छोड़ गहरे पानीमें चली गई।

कुछ काल बाद जलाशयका जल सूख गया। धीवरोंने मछलियोंको पकड़नेके लिये जाल डालना प्रारम्भ कर-दिया। फलतः अन्य मछलियोंके साथ—दीर्घसूत्री तथा प्रत्युत्पन्नमति—ये दोनों मछलियां भी पकड़ी गईं। इसके बाद धीवरोंने पकड़ी हुई मछलियोंको एक रस्सीमें नथ डाला। प्रत्युत्पन्नमति मछली भी उसीमें नाथी गई। विपद उपस्थित देख उसने धीरे धीरे रस्सीको काटना आरम्भ किया। इधर धीवरगण अपना कार्य्य समाप्तकर पकड़ी हुई मछलियोंको स्वच्छ जलमें धोने लगे। इसी समय सुअवसर पाकर प्रत्युत्पन्नमति मछली भाग गई। किन्तु हीनबुद्धि दीर्घसूत्रीने अपने बचावका कोई उपाय नहीं किया। परिणाम स्वरूप अन्तमें उसे अपने प्रिय जीवनसे हाथ धोना पड़ा।"

जो काम करना हो उसे अपना कर्त्तव्य समझ कर करना चाहिये। मनुष्य सुखका दास है, जिस काममें सुख नहीं उसे कोई करना नहीं चाहता। किन्तु बहुतसे कार्य्य ऐसे होते हैं, जिन्हें, सुखकर न होने पर भी, कर्त्तव्यके अनुरोधसे करना ही पड़ता है। इसलिये कामको पूरा करनेमें कर्त्तव्य-ज्ञानकी ही प्रधान आवश्यकता है। जब हम अच्छी तरह समझ लेंगे, कि अमुक कामको करना हमार कर्त्तव्य है, तब वह कार्य्य चाहे सुखकर हो या दुःखकर,

कर सकें। इसलिये अवस्थाके अनुसार अपने पतिदेव तथा ससुर सास आदि दूसरे अभिभावकोंके मतानुसार कार्य्य करनेसे उन्हें इनकार न करना चाहिये। जिसके मत अथवा आदेशके अनुसार कार्य्य करना हो, यदि उसके प्रति यथेष्ट, प्रेम, श्रद्धा और विश्वास हो तो उसके करनेमें कोई कष्ट नहीं होता। इसीलिये शास्त्रोमें कहा गया है, कि पतिका आदेश दासीका पालन करना चाहिय।

परिश्रम ही सब प्रकारकी उन्नतियोंकी जड़ है। संचालन द्वारा ही शरीर तथा मनकी उन्नति होती है। यदि परिश्रम नहीं किया जाता तो शरीरमें नाना प्रकारके रोग प्रवेशकर उसे निकम्मा बना डालते है। परिश्रम करनेसे शरीरका बल बढ़ता है, परिश्रमी मनुष्य बहुत दिनोंतक जीता है और जरा-मृत्यु सहसा उसपर आक्रमण नहीं कर सकते।

परिश्रम दो प्रकारका होता है—शारीरिक और मानसिक। हाथ पैर आदि शरीरके अङ्गोंकी चालनाको शारीरिक परिश्रम तथा किसी विषयको सोचने विचारनेमें मनकी जो चालना होती है, उसे मानसिक परिश्रम कहते हैं। शारीरिक परिश्रम द्वारा शरीरकी और मानसिक परिश्रम द्वारा मनकी शक्ति बढ़ती है। मानसिक तथा शारीरिक शक्तिके बिना मनुष्य कोई काम नहीं कर सकता। दुःखकी बात है, कि आजकल हमारे देशकी स्त्रियोंमें इन दोनों प्रकारकी शक्तियोंका अभाव हो गया है और उनके बढ़ानेकी भी कोई तदबीर नहीं की जाती।

एक विद्वानने कहा है,—व्यवसाय, वाणिज्य अथवा और जो कोई कार्य्य हो, उसको करनेके लिये समयनिष्टा, परिणाम-दर्शिता और अध्यवसायकी बड़ी जरूरत होती है। यदि मनुष्यमें उपर्युक्त तीनों गुण न हों, तो वह कदापि सफल मनोरथ नहीं हो सकता। जिनमें ये गुण होते हैं, वे कुल वाधाओंको पार कर कभी न कभी अवश्य ही क्रतकार्य्य हो जाते हैं।" *

प्रत्येक कार्य्यमें स्वाधीनताकी जरूरत है। यदि हम कोई ऐसा काम करनेके लिये वाध्य किये जायँ, जिससे हमारी बिल्कुल सहानुभूति न हो; जो हमारी इच्छाके सम्पूर्ण विरुद्ध हो तो हमें क्या करना चाहिये? समझदारोंकी बात छोड़ दो, यदि किसी अबोध बालकसे भी कोई ऐसा कार्य्य करनेके लिये कहा जाय जो उसकी इच्छाके विरुद्ध हो तो वह उसे करनेके लिये कदापि राजी न होगा। यदि किसी प्रकार राजी हो भी तो उसे अच्छी तरह कर नहीं सकेगा। इसमें उस बालकका कोई दोष नहीं, वरं प्रक्रतिका नियम ही ऐसा है। इसलिये छोटा या बड़ा जो काम हो उसे अपनी इच्छासे मिला लेनेकी चेष्टा करनी चाहिये। अपने मतके विरुद्ध काम न करना ही स्वाधीन-चेता मनुष्योंका धर्म्म है। परन्तु आज कल हमारे देशकी स्त्रियोंकी विवेचना-शक्ति इतनी अच्छी नहीं, कि वह हर समय भले-बुरेका विचार कर स्वाधीनभावसे कार्य्य

* "At all event (in profession or trade) there are three principles from which no man diverge with impunity The three P's —Punctuality, Prudence and Perseverance sooner or later overcome all difficulties"

जो अपने बाप दादाके कमाये धनसे धनी बने हैं और, बहुतसे ऐसे हैं, जो अपने बाप दादाके खाये ऋण चुका रहे हैं। परन्तु समय रूपी अमूल्य धनपर सबका समान अधिकार है। प्रत्येक मनुष्य समय रूपी धनका उचित व्यवहार कर अपनी दशा सुधार सकता है।

जिस कामका कोई फल नहीं, उसमें समय लगाना ही मानो उसे व्यर्थ खोना है। प्रायः देखा जाता है, कि कुछ नवयुवतियां एक जगह बैठ वृथा हँसी ठट्ठे में लग अपने कर्त्तव्यको भूल जाती हैं। इस तरह समयको बरबाद करना बड़ी भूल है। किन्तु इससे यह कदापि न समझना चाहिये, कि अवसरके समय भी कभी कभी अपनी सहेलियोंके पास बैठकर उचित हास-परिहास द्वारा जी बहलाना अनुचित है। हां हँसी ठट्ठे में लग अपने जरूरी कामोंको भूल जाना अथवा हर घड़ी उसीमें लगा रहना बड़ी ही अनुचित आदत है। बिना कामका समय अनर्थकी जड़ है। बिना कामके आलसी बन बैठे रहनेसे शरीरका बल तो नष्ट होता ही है, साथ ही मनको भी बड़ी अधोगति हो जाती है। बेकार मनुष्यके मनमें कितनी ही बुरी चिन्तायें उठती हैं, जिनके वशो-भूत होकर वह बहुतसे खराब काम कर डालता है। बाइ-बिलमें लिखा है :—"बेकाम मनुष्योंको शैतान ढूंढा करता है।" तात्पर्य्य यह है, कि आलसी तथा बेकार मनुष्योंके ही मनमें अनुचित कर्म्मोंकी इच्छायें उत्पन्न हुआ करती हैं। एक

आज कलकी अधिकांश नई बहुएं नाटक उपन्यास पढ़ने और अपने बनाव-शृङ्गारमें लगी रहनेके सिवा और कोई काम नहीं करतीं। शारीरिक परिश्रम कर कोई काम करनेमें उन्हें बड़ी लज्जा मालूम होती है। इसलिये वे अपने कुल सांसारिक कामोंको—यहां तक कि, सन्तान-पालनको भी दासियोंपर छोड़ निश्चिन्त रहती हैं। इसके विरुद्ध बहुत सी दिन रात कोल्हूके बैलकी तरह व्यर्थ परिश्रम किया करती हैं, इसलिये शारीरिक कष्टकी चिन्ताके सिवा उन्हें और किसी विषयके विचार करनेका अवसर ही नहीं मिलता। वास्तवमें इन दोनो प्रकारकी स्त्रियां गृहिणी कहलाने योग्य नहीं। आजकल नई बहुओंको प्रायः मोह, मूर्च्छा, दर्द, शिरपीड़ा तथा अजीर्ण आदि रोग ही अधिक हुआ करते हैं। हमारे विचारमें शारीरिक परिश्रमकी न्यूनता अथवा आधिक्य ही इन रोगोंका कारण है। इसलिये प्रत्येक गृहिणीको समुचित शारीरिक और मानसिक परिश्रम द्वारा गृह-कार्य्य-साधन करनेमें यत्नवती होना चाहिये। क्योंकि ऐसी ही गृहिणियोंके घरमें लक्ष्मी और सरस्वती निवास करती है।

समय अमूल्य धन है। संसारकी दूसरी चीजोंकी तरह दाम देकर समय खरीदा नहीं जा सकता। समयको रोक रखनेकी भी शक्ति मनुष्यमें नहीं। विधाताके विधानके अनुसार समय आता और जाता है। इसलिये ऐसे अमूल्य समयको वृथा खोना उचित नहीं। संसारमें बहुतसे मनुष्य ऐसे हैं,

द्वारा मनुष्यका मन अपवित्र हो जाता है। तन्दुरुस्त आलसी भी कभी अच्छी चाल-चलन वाला नहीं रह सकता। शारीरिक परिश्रम बड़ा ही उपकारी और मनको पापकी ओरसे फेरनेकी बढ़ियां दवा है।"

फ्रान्स देशके एक डाक्टरका कथन है :—"परिश्रम न करनेके कारण जितने लोग संसारमें मरते हैं, उसके शतांश भी अधिक परिश्रम करनेके कारण नहीं मरते। परन्तु बिना समझे बूझे लोग कह दिया करते हैं, कि परिश्रम कर करते जिन्दगी नष्ट हो गई।" एक कहावत है, कि 'बैठेसे बेगार भली।' अतएव हमारे देशकी कुल-वधुओंको चाहिये, कि वे कभी बेकार न बैठे, क्योंकि हर घड़ी काममें लगे रहनेसे कोई खराब चिन्ता मनमें नहीं उठती।

गृहकार्य्य गृहिणीका प्रधान कर्त्तव्य है। गृहके कुल कामोंकी जिम्मेदारी गृहिणी ही पर है, इसलिये जो काम वह खुद कर सकती हो, उसे किसी दूसरेसे कभी न कराना चाहिये। अपने कर्त्तव्य पालनमें मानापमानका खयाल करना उचित नहीं।

किसी गृहिणीको ऐसा कदापि न सोचना चाहिये कि अमुक काम छोटा है, इसके करनेसे लोग हमें नीच समझेंगे, अतएव इसे किसी नीच मनुष्यसे कराना चाहिये; क्योंकि घरके छोटे बड़े सभी कार्य्य गृहिणीके करनेके लिये हैं। परन्तु यदि म अधिक हो और वह अकेले न किया जा सकता हो तो,

पण्डितने लिखा है, कि मनुष्यके लिये विना कामके समयकी तरह नुकसान पहुंचाने वाली चीज दूसरी नहीं। मनुष्यका मन पत्थरकी चक्कीकी तरह है। घूमती हुई चक्कीमें यदि गेहूं आदि अन्न डाले जायँ तो आटा निकलेगा, नहीं तो वह खुद घिसकर घटने लगेगी।

महात्मा कालीप्रसन्न घोषने लिखा है:—"जीवनके उद्देश्योंको भूल जाना यदि पाप है, तो जीवनके कर्त्तव्य-विषयोंको भूल जाना महापाप है। जीवनके उद्देश्य और लक्ष्यको भूल जाना कभी कभी विना जाने बूझे पाप करना समझा जाता है, परन्तु आलसी बन चुपचाप बैठे रहना मानो जान-बूझकर अपनेको नीचे गिराना है। आलस्यका आरम्भ चाहे कुछ सुखकर भले ही हो, परन्तु उसका आखिरी नतीजा बड़ा ही भयानक होता है। फलतः आलस्यसे बढ़कर दुःख देनेवाली आदत दूसरी नहीं। मूर्ख लोग आलस्यको आरामकी चीज समझते हैं। अपरिपक्व बुद्धिवाली युवतियां उसे सुख समझकर भ्रममें पड़ जाती हैं, परन्तु यदि बुद्धिमानोंकी नजरसे देखा जाय तो आलस्यसे बढ़कर घृणित तथा कलङ्क और लज्जा देनेवाली बुरी आदत संसारमें दूसरी नहीं। मनुष्य जीवनरूप कल्पवृक्षके लिये आलस्य अरबके रेगिस्तानमें बहने वाली 'सैमूम' नाम्नी हवाकी भांति है।"

एक अँगरेजी पुस्तकमें लिखा है:—"आलसी बनकर बेकार और निश्चिन्त बैठे रहनेसे अनुचित विलास-वासनाओं

लियनको बात सुन वह स्त्री लजा गई। वास्तवमें यदि विचार करके देखा जाय तो दिनरात वेकार रहनेवाली रानियोंके अपेक्षा हर घड़ी काममें लगी रहनेवाली दासियां अच्छी हैं। उन्हींका सम्मान भी होना चाहिये। पृथिवी एक विशाल कर्मक्षेत्र है। इसपर बसनेवाले सब जीवजन्तु काम करनेके लिये ही बनाये गये हैं। चीन देशके एक राजाने कहा था :— "राज्यमें यदि एक मनुष्य भी वेकार बैठा हो तो, उसके बदलेमें अवश्य ही किसीको उपवास करनेके लिये बाध्य ह

नीचे कुछ महात्माओंके उपदेश लिखे जाते हैं। आशा है, कि हमारे देशकी नयी बहुएं उन्हें मन्त्रकी तरह याद रखेंगी और सदा उन्हींके अनुसार कार्य्यकर इस लोकमें यश और सुख तथा परलोकमें पुण्यकी भागिनी होंगी।

(१) जो गृहिणी देरसे सोकर उठती है, उसके दिन भरके कामोंका सिलसिला बिगड़ जाता है और काम राततक समाप्त नहीं होते।

(२) सूर्य्योदयसे पहले ही सोकर उठनेका अभ्यास करना चाहिये। क्योंकि सबेरे उठनेसे लक्ष्मी प्रसन्न रहती हैं तथा स्वास्थ्य, धन और ज्ञानकी वृद्धि होती है।

(३) जो गृहिणी प्रातःकाल समय नष्ट कर देती है, वह मानों दिनके पर्देमें छेद कर देती है। घण्टे मिनिट आदि उस छिदमें निकल कर भाग जाते हैं।

(४) यदि तुम्हें अपना जीवन प्यारा है तो अपना समय

खास खास कामोंमें मदद लेनेके लिये दास-दासी रखना अनुचित नहीं। परन्तु यह कभी न भूल जाना चाहिये, कि दास या दासी उसीके बदलेमें काम कर रहे हैं। घरके कामोंको छोटा बड़ा समझनेके कारण ही आजकल बहुत सी गृहिणियां कितने ही साधारण कामोंको करनेमें अपना अपमान समझती हैं। अपने गृहको अपने हाथसे साफ करना—झाड़ू देना छोटा काम और मुलायम पलङ्ग पर बैठकर मोजा बुनना, उपन्यास पढ़ना अथवा अन्य सीने-पिरोनेके कामको बड़ा काम समझना, सरासर भूल है और यही स्त्रियोंकी अवनतिकी जड़ है। इसलिये अवकाश और शक्ति रहनेपर घरके छोटे बड़े सभी कामोंको अपने ही हाथसे करना अच्छी गृहिणीका कर्त्तव्य है।

संसारमें उसी मनुष्यका सम्मान होता है, जो परिश्रमी होता है; आलसीका नहीं। *नेपोलियन बोनापार्ट एक दिन* किसी स्त्रीके साथ टहल रहा था। जिस रास्तेपर वह टहल रहा था उसी रास्तेसे कुछ मजदूर शिरपर बोझ लिये कहीं जा रहे थे। उस रास्तेसे मजदूरोंको आते देख नेपोलियनकी संगिनी स्त्री उनपर बहुत नाराज हुई और उन्हें सामनेसे हट जानेकी आज्ञा देने लगी। यह देखकर नेपोलियनने कहा,— "श्रीमती! बोझ ढोनेवालोंसे घृणा नहीं करनी चाहिये, वरन् उनका सम्मान करना चाहिये; क्योंकि वे भी अपने परिश्रम द्वारा संसारका बड़ा उपकार कर रहे हैं। छोटे कार्य्यके कारण किसीको छोटा समझना उचित नहीं।" नेपो-

(१४) परिश्रमी मनुष्यको बिना माँगे ही सब प्रकारके सुख मिलते हैं; क्योंकि मिहनत ही सौभाग्यकी जननी है।

(१५) कमखर्ची और परिश्रम—ये दो, धन इकट्ठा करनेके सहज साधन हैं।

(१६) एक ही समयमें एकसे अधिक कामोंमें हाथ न डालना चाहिये; एकके पूरा होनेपर दूसरेको आरम्भ करना चाहिये।

(१७) जो काम अपने आप कर सकते हो, उसे दूसरेको कभी न सौंपना।

कदापि नष्ट न करो, क्योंकि समय द्वारा ही जीवनका संगठन हुआ है।

(५) जो अपनी मदद आप करता है, उसकी मदद ईश्वर करता है।

(६) जिस तरह मोरचा धीरे धीरे लोहेको नष्ट कर डालता . उसी तरह आलस्य भी जिन्दगीको बिगाड़ डालता है। व्यवहार कीजानेवाली कुञ्जीकी भांति परिश्रमी मनुष्यका जीवन भी सदा चमकता रहता है।

(७) आलस्य कुल कामोंको कठिन बना देता है, परन्तु परिश्रम उन्हें सहज करदेता है।

(८) जो आज ही कर सकते हो उसे कलपर मत छोड़ो, क कलका कोई भरोसा नहीं।

(९) परिश्रम ही वास्तविक जीवन है, क्योंकि उसके बिना कोई जी नहीं सकता।"

(१०) मनुष्य द्वारा संसारमें जितने बड़े काम हुए हैं, उनकी जड़ परिश्रम ही है।

(११) बेकार समयकी भांति अनिष्ट करनेवाली वस्तु संसारमें दूसरी नहीं।

(१२) आलस्य शरीर और मनका नाश करनेमें विषके समान है, क्योंकि वही सब पापोंकी खान है।

(१३) कल पर किसी कामको कदापि न छोड़ो, क्योंकि कल तुम रहोगी या नहीं, यह कौन कह सकता है।

हैं, कुछ कन्याओंको शिक्षा देना ही महापाप समझते हैं और जो शिक्षाके पक्षपाती हैं, उनकी शिक्षा-प्रणाली कुछ ऐसी बिगड़ी हुई है, कि जिससे लाभके बदले हानि ही अधिक होती है। स्त्री समाजके इस अशिक्षा और कुशिक्षाके दोषसे जैसे अधःपतनकी सम्भावना दिखाई देती है, उसे सोच हृदय काँप उठता है।

शास्त्रोंके अनुसार पति ही स्त्रीका सर्व्वस्व है। पतिकी सेवा ही उसका एकमात्र धर्म्म है। इस लोक तथा परलोकमें पति ही स्त्रीका मालिक है। पतिके सिवा पत्नीके लिये कोई दूसरा देवता नहीं।* इसलिये स्त्रीको, पतिको पूजा देवताकी तरह करनी चाहिये। जो स्त्री अपने पतिकी देवताकी तरह पूजा करती है, वह इस जीवनमें यश और सुख पाती है तथा मरनेपर अपने पतिके साथ सानन्द स्वर्गका सुख भोग करती है। साध्वी स्त्रीको चाहिये, कि वह अपने पतिको देवता समझे और देवताकी तरह उसकी पूजा करे। पतिव्रता तथा पतिपरायणा स्त्रियां ही पुण्यवती हैं। स्त्रियोंके लिये पति ही देवता, मित्र और एकमात्र गति है।"†

* जीवन्वापि मृतो वापि पतिरेव प्रभुः स्त्रियां।
नान्यश्च देवता तासां तमेव प्रभुमर्च्चयेत॥
—बृहत् पाराशर-संहिता।

† "देववत् सततं साध्वी भर्त्तारमनुपश्यति।
शुश्रुषां परिचर्य्यां च देव तुल्यं प्रकुर्व्वंति॥
पतिव्रता पतिप्राणा सा नारी धर्म्मभागिनी।
पतिर्हि देवो नारीनां पतिर्बन्धुः पतिर्गतिः॥—महाभारत।

तीसरा उपदेश।

पतिके प्रति पत्नीका कर्त्तव्य।

"नास्ति स्त्रीणां पृथक् यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम्।
पतिं शुश्रुयते येन तेन स्वर्गे महीयते॥"—मनु।

"अमित दानि भरता वैदेही, अधम सो नारि जो सेव न तेही।
धीरज धर्म्म मित्र अरु नारी, आपद काल परखिये चारी।
वृद्ध रोगवश जड़ धन हीना, अंध, बधिर, क्रोधी, अति दीना।
ऐसेहु पतिकर किय अपमाना, नारि पाव यम पुर दुख नाना।
एकै धरम एक व्रत नेमा, काय वचन मन पति पद प्रेमा।
—गोसाईं तुलसीदास।

कार्य्येषु मन्त्री करणेषु दासी भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा।
धर्मानुकूला क्षमया धरित्री भार्या च षड्गुणवती सुदुर्लभाः॥

मनुजीका उपदेश है,—"पिताको चाहिये, कि जबतक कन्या पतिकी मर्य्यादा और उसकी सेवाका माहात्म्य न जान ले—अपना धर्म्म पालन करना अच्छी तरह न सीखले, तबतक उसका विवाह न करे।" इससे साफ मालूम होता है, कि विवाहसे पहले ही कन्याको उसके कर्त्तव्योंकी शिक्षा दे देना उसके पिता-माताका प्रधान धर्म्म है। परन्तु दुःख है, कि आजकल हिन्दू समाज मनुजीके इस अमूल्य उपदेशको बिल्कुल भूल गया है। कुछ लोग तो शिक्षाका समय आनेसे पहले ही कन्याओंको पतिके घरको राह दिखा देते

हैं, कुछ कन्याओंको शिक्षा देना ही महापाप समझते हैं और जो शिक्षाके पक्षपाती हैं, उनकी शिक्षा-प्रणाली कुछ ऐसी बिगड़ी हुई है, कि जिससे लाभके बदले हानि ही अधिक होती है। स्त्री समाजके इस अशिक्षा और कुशिक्षाके दोषसे जैसे अधःपतनकी सम्भावना दिखाई देती है, उसे सोच हृदय काँप उठता है।

शास्त्रोंके अनुसार पति ही स्त्रीका सर्वस्व है। पतिकी सेवा ही उसका एकमात्र धर्म है। इस लोक तथा परलोकमें पति ही स्त्रीका मालिक है। पतिके सिवा पत्नीके लिये कोई दूसरा देवता नहीं।* इसलिये स्त्रीको, पतिको पूजा देवताकी तरह करनी चाहिये। जो स्त्री अपने पतिकी देवताकी तरह पूजा करती है, वह इस जीवनमें यश और सुख पाती है तथा मरनेपर अपने पतिके साथ सानन्द स्वर्गका सुख भोग करती है। साध्वी स्त्रीको चाहिये, कि वह अपने पतिको देवता समझे और देवताकी तरह उसकी पूजा करे। पतिव्रता तथा पतिपरायणा स्त्रियां ही पुण्यवती हैं। स्त्रियोंके लिये पति ही देवता, मित्र और एकमात्र गति है।"†

* जीवन्वापि मृतो वापि पतिरेव प्रभुः स्त्रियाः।
नान्यच्च देवता तासां तमेव प्रभुमर्चयेत॥
—वृहत् पाराशर-संहिता।

† "देववत् सततं साध्वी भर्त्तारमनुपश्यति।
शुश्रुषां परिचर्य्यां च देव तुल्यं प्रकुर्व्वति॥
पतिव्रता पतिप्राणा सा नारी धर्म्मभागिनी।
पतिर्हि देवो नारीणां पतिर्बन्धुः पतिर्गतिः॥—महाभारत।

महानिर्व्वाणतन्त्रमें लिखा है:—शरीर, मन तथा वचन द्वारा जो स्त्री अपने पतिको सदा प्रसन्न रखती है, उसे ही परम पद मिलता है।" *

गृहस्थाश्रमका आरम्भ विवाहसे ही होता है। प्रेमकी पहली और प्रधान भित्ति प्रणय ही है। इस उपायसे दो आत्माओं—दो हृदयोंके सम्मेलनसे एक पूर्ण मनुष्यरूप बनता है। यही जीवात्माका पहला योग है। स्वार्थी मनुष्यको निस्स्वार्थी और परोपकारी बनानेकी यही सबसे पहली तदबीर है। समाजकी ओर अच्छी तरह गौरकर देखा जाय तो मालूम होगा, कि उसे इस विवाह बन्धनने ही गुप्त रूपसे बाँध रखा है। प्रकृत-दाम्पत्य-प्रणय स्वर्गकी वस्तु है, देवता लोग उसको पानेकी इच्छा रखते हैं। निस्स्वार्थ प्रेम उसका जीवन और परोपकार उसका स्वभाव है।

उपनिषदमें लिखा है,—"स्वयं ब्रह्माजीने अपनेको दो भागोंमें बांट कर एक को पति और दूसरेको पत्नी बनाया था।"† इसके सिवा व्यास देवने भी अपनी संहितामें कहा है:—"पुरुष जब तक स्त्री नहीं प्राप्त करता तब तक वह वह आधा ही रहता है।" ‡ इससे भी मालूम होता है,

* "कायेन मनसा वाचा सर्व्वदा प्रिय कर्म्मभिः।
या प्रीतयति भर्त्तारं सैव ब्रह्मपद लभेत्॥"

† "स इममेवात्मनं द्वेधापयेत्।
ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्॥" —बृहदारण्यकोपनिषद्।

‡ यावन्न विन्दते जायां तावदर्द्धो भवेत् पुमान्। —व्यास-संहिता।

कि विवाह दो अपूर्ण अंशोंको मिलाकर एक सम्पूर्ण मनुष्य-मूर्त्ति गढ़ता है। कैसा ऊंचा भाव है! विवाह अर्थात् स्त्री-पुरुषका मिलन कैसा ही ऊच आदर्श है। स्वयं ब्रह्मा दो भागोंमें विभक्त होकर फिर मिलते हैं। इसलिये हिन्दुओंका विवाह किसी प्रकारकी ठीकेदारी नहीं वरं विधाताका विधान है।

विवाह एक महायज्ञ है; स्वार्थ इस यज्ञकी आहुति और निष्काम धर्म्म लाभ करना इसका फल स्वरूप है। अति पवित्र मन्त्रमय यज्ञ ही हिन्दूविवाहकी एकमात्र पद्धति है। यज्ञको आगमें इसका आरम्भ होता है, परन्तु श्मशानकी आगमें भी अन्त नहीं होता। क्योंकि शास्त्रोंकी आज्ञाके अनुसार पतिके मर जानेपर पतिव्रता पत्नी पतिलोक प्राप्त करनेकी इच्छासे ब्रह्मचर्य्यका पालन करती है। इसलिये यह कदापि न समझना चाहिये, कि हिन्दुओंका विवाह स्त्री और पुरुषको मिला देनेका एक रिवाज मात्र है। अथवा इसलिये बना है, कि जिसमें लोग इन्द्रिय-विलास भी करें और समाजमें किसी तरहकी गड़बड़ी भी न उपस्थित होने पाये अथवा इसलिये, कि जिससे गार्हस्थधर्म्मको सहायता मिले। नहीं नहीं; यह कोई साधारण रिवाज नहीं, वरं यह एक कठोर यज्ञ और हिन्दूजीवनका एक महाव्रत है। क्योंकि विवाहके समय वर अपनी नवोढ़ा पत्नीसे कहता है:—"प्रिये! मैं तुम्हें अपने ही सुखके लिये नहीं ग्रहण करता। तुम मेरे पितामाता, भाइयों और बहनोंकी भी सेवा करना।"

विवाह-मन्त्रमें एक जगह लिखा है:—"जिस तरह पृथिवी, ध्रुवलोक, पर्वत और जगत् चिरस्थायी है उसी तरह पत्नी भी पतिके गृहमें चिरस्थायिनी हो।" *

और एक जगह पति अपनी पत्नीसे कहता है:—हे वधू! इस घरमें तेरी मति स्थिर हो अर्थात् यहां तेरा चित्त लगे। तू इस घरमें आनन्दसे रह और मुझमें तेरा चित्त लगा रहे। आत्मीयजनोंके सहित तेरा मिलन हो। मुझमें तेरा अटल प्रेम हो और मेरे साथ आनन्दसे तेरा जीवन व्यतीत हो। †

पाणिग्रहणके समय वर वधूका हाथ पड़कर जो मन्त्र पढ़ता है, उसका अर्थ है:—"हे कन्ये! भग:, अर्य्यमा, सविता तथा पुरन्ध्री आदि देवताओंने तुझे गृहस्थधर्म पालन करनेके लिये मुझे सौंपा है, तू मेरे साथ मरणकाल तक जीती रहकर गृहस्थधर्म पालन कर। मैं इस सौभाग्यके लिये तेरी बांह पकड़ता हूं।" ‡

हे कन्ये। तेरी दृष्टिसे किसीका अमङ्गल न हो, तू

---

* ओं ध्रुवा द्यौ. ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदंजगत्।
ध्रुवा सपर्व्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुले इयम्।

† इह धृतिरिह स्वधृतिरिह रतिरिह रमस्व।
मयि धृतिर्मयि स्वधृतिर्मयि रमोमयि रमस्व:।

‡ ओं गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथा सः।
भगोअर्य्यमा सविता पुरन्ध्रीर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥

—विवाह मन्त्र।

पतिघातिनी अर्थात् पतिको मारनेवाली न हो, तू पशुओंके लिये सुखकारिणी, सहृदया, तेजस्विनी और पुत्रवती हो, तेरे पुत्र दीर्घजीवी हों, पञ्चमहायज्ञमें तेरा चित्त लगे और सबको तुझसे सुख मिले।"

हे कन्ये! मेरे कार्य्योंमें तेरा मन लगे। तू अपने मनको मेरे मनकी तरह बना डाल अर्थात् मेरा और तेरा हृदय एक हो जाय। तू मन लगाकर मेरे कहनेके अनुसार किया कर। बृहस्पति तुझे मेरे आनन्दको बढ़ानेमें लगायें।

विवाहके समय सप्तपदी अर्थात् 'भांवरों' हो जाती है उस समय वर सात मन्त्र उच्चारण करता है। उन मन्त्रोंका अर्थ इस प्रकार है:—"पहला पग डालनेके लिये विष्णु भगवान् तेरी मनोकामना पूरी करें। दूसरा पग डालनेके लिये विष्णु भगवान तुझे बल दें। तीसरे पगके लिये विष्णु तुझे व्रत तथा यज्ञादिमें लगे रहनेकी मति दें। चौथा पग डालनेके लिये विष्णु तुझे सुखी करें। पांचवां पग डालनेके लिये विष्णु तुझे बहुतसे गाय-बैल आदि पशुओंकी मालकिन बनायें। छठे पगके लिये विष्णु तुझे धनी बनायें और सातवेंके लिये विष्णु तुझे उत्तम ऋत्विक अर्थात् सन्तान प्रदान करें।"

फिर वर कहता है:—"हे कन्ये! तू मेरी सखी और सहचारिणी बन तथा मुझे अपना सखा बना। कोई दूसरा हमारे सख्यको किसी प्रकार नष्ट न कर सके। सुलक्षणा तथा साध्वी स्त्रियोंसे तेरी मित्रता हो।"

इसके बाद 'गंठजोरे' का समय आता है। उस समय जो मन्त्र पढा जाता है उसका अर्थ इस प्रकार है :—हे कन्ये! इन्द्रकी पत्नी इन्द्राणी, अग्निकी स्वाहा, चन्द्रकी रोहिणी, नलकी दमयन्ती, सूर्यकी भद्रा, वशिष्ठकी अरुन्धती और नारायणकी लक्ष्मी जैसी गुणवती और अपने अपने पतियोंके उपयुक्त हैं, उसी तरह तू भी अपने पतिकी उपयुक्त पत्नी बन।"

विवाह हो जानेपर वरवधूको आशीर्वाद देनेके लिये एक मन्त्र पढा जाता है। उसका अर्थ है :—"जिस तरह छाया देहके साथ, चाँदनी चन्द्रमाके साथ, और बिजली बादलके साथ रहती है। हे कन्ये। उसी तरह तू भी सदा—इस लोक और परलोकमें अपने पतिके साथ रह।" इससे पाठिकायें समझ गई होंगी, कि पतिकी सेवा करना और उसके साथ सहचरीकी भांति रहना ही पत्नीका धर्म है और विवाह उस धर्मका साधन है।

पाठिके। स्त्री और पुरुषके सम्बन्धकी जड है प्रेम। परन्तु प्रेम बडा ही विचित्र पदार्थ है। क्योंकि उसमें स्वर्ग और नरक दोनो ही छिपे हैं। जिस प्रेममें किसी प्रकारका स्वार्थ नहीं होता, वही सच्चा प्रेम है। माताको अपनी लडकीसे प्रेम है, इसलिये लडकीको भी मातासे प्रेम है। माता सदैव अपनी लडकीको सुखी रखनेका यत्न किया करती है, इसलिये लडकी भी अपनी माताके आरामकी चेष्टा करती है। ऐसे प्रेमको बिना स्वार्थका प्रेम नहीं कहते।

सच्चे प्रेममें 'इसलिये' की जरूरत नहीं होती। सच्चा प्रेमी अपने प्रेमिकसे प्रेमका बदला नहीं चाहता। वह तो जानता भी नहीं, कि उसे अपने प्रेमिकसे क्यों इतना प्रेम है; क्यों उसे देखते ही उसके आनन्दकी सीमा नहीं रहती? ऐसे ही पवित्र और निःस्वार्थके प्रेमको सच्चा प्रेम कहते हैं। प्रत्येक पति-पत्नीमें ऐसे ही सच्चे प्रेमकी आवश्यकता है।

शिव-पार्व्वती, राम-सीता, नल दमयन्ती तथा सावित्री-सत्यवान आदिका सच्चा प्रेम ही स्त्री-पुरुषके प्रेमका उत्तम आदर्श है। पार्व्वतीके पिता दक्ष प्रजापतिने उनके सामने शिवजीकी निन्दा की थी, इसलिये पार्व्वतीने अपना प्राण दे दिया। राजा जनककी बेटी तथा महाराज दशरथजीकी पुत्रवधू होनेपर भी सीता अपने पतिके साथ बनोंमें फिरीं। दमयन्तीने भी नलके लिये बहुत कष्ट सहा, उसे ढूंढ़नेके लिये बनोंमें अकेली घूमती रही और सावित्रीने अपने पति सत्यवानकी मृतदेहको अपने छातीसे अलग नहीं किया। इन पतिपारायणा रमणियोंने सच्चे प्रेमका जो आदर्श दिखाया है, उसकी तुलना नहीं हो सकती। अपने निःस्वार्थ सच्चे प्रेमके कारण ही आजतक वे देवियोंकी तरह पूजनीया समझी जाती हैं।

एकसे दूसरेको सहायता मिलती है, एकसे दूसरेको सुख मिलता है; संसारके कितने ही कामोंमें एक दूसरेको

सहायता देकर उन कामोंको सहज बना देते हैं। ऐसे स्वार्थों के लिये जो प्रेम होता है, वह स्वार्थके लिये प्रेम करना कहलाता है। आजकल संसारमें ऐसे ही प्रेमकी अधिकता है; निःस्वार्थ प्रेम बहुत कम दिखाई देता है। सच्चे प्रेमकी कमीके कारण आजकल बड़ा अनर्थ होता है। सच्चे प्रेमके न होनेके कारण ही आजकल पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भाई बहन आदिमें मनमुटाव, द्वेष और ईर्षा प्रभृति दिखाई देते हैं। पवित्र प्रेमकी जगह इन सत्यानाशी दुर्गुणोंने छीन ली है और मित्रता शत्रुता बन रही है। यदि गृहिणी अपने पतिमें सच्चा प्रेम दिखाये और परिवारके दूसरे लोग उसका अनुकरण करें तो शीघ्र ही इर्षाद्वेषादिका नाश होकर घर घरमें पवित्र प्रेमका अटल राज्य हो जाये।

पति पत्नीका पवित्र प्रेम ही प्रेममय परमेश्वरके प्रेमका विकाश है। इसीसे जगत्‌को प्रेम करनेकी शिक्षा मिलती है। पति पत्नीका सच्चा प्रम आध्यात्मिक है, उसका सम्बन्ध आत्मासे है, वह शारीरिक वा समाजिक नहीं। शरीरके सुख और तुच्छ भोग विलास अथवा ऐश-आरामके लिये जो प्रेम होता है, बाहरी सुन्दरताकी चाह जिस प्रेमकी जड है, वह प्रेम कोई चीज नहीं. ऐसा प्रेम अधिक कालतक ठहर नहीं सकता, उमरके साथ साथ घटता जाता है और शरीरके नष्ट हो जाने अर्थात् मरनेपर नष्ट हो जाता है। परन्तु आध्यात्मिक प्रेम सच्चा प्रेम है, वह घटता

नही; कभी नष्ट नही होता वरं बराबर बढ़ता ही जाता है। सच्चे प्रेमी पति-पत्नीकी आत्मायें अनन्तकाल तक उस प्रेम-पियूषका आनन्द उपभोग करती है। यह पवित्र प्रेम नित्य नये रससे पति-पत्नीके हृदयको सींचा करता है। समाजकी रीति निबाहनेके लिये जो विवाह करते है, वे पति-पत्नीके सच्चे सुखको नही प्राप्त कर सकते। क्योंकि ऐसा प्रेम युवावस्थाके साथ ही चला जाता है। ऐसे प्रेमको पशु प्रेम कहते है; केवल इन्द्रियोंके सुखके लिये ही उसकी उत्पत्ति होती है। पति पत्नीके सच्चे प्रेममे कमी कभी नहीं आने पाती। जवानी, बुढापा आदि सब अवस्थाओंमें वह बराबरा बढता ही जाता है।

सच्चा प्रेम दोनो प्रेमियोंके मन और हृदयको एक बना देता है। हरएक मनुष्य स्वाधीन और स्वतन्त्र है, इसलिये ऐसे स्वाधीन और स्वतन्त्र हृदयोको एक बना देना कोई सहज काम नहीं। जबतक दोनो प्रेमिकोंके लक्ष्य भाव धर्म्म, उमर और अवस्था एक न हो, तबतक वास्तविक मिलन होना सम्भव नही। परन्तु दुःखकी बात है, कि कही कही स्त्री पुरुषोंमें उतना ही भेद दिखाई देता है जितना पशुओंमें। स्त्री अपने स्वामीका सम्मान नही करती अतः स्वामी पर उसका कुछ अधिकार भी नही होता। आजकल कितनी ही जगह स्त्रिया खरीदो हुई दासिया समझी जाती हैं और पुरुष भी अपनी इच्छाके अनुसार स्वच्छन्दता पूर्व्वक

विचरण करते हैं। जबतक पति-पत्नी इस तरह एक दूसरेसे अलग रहेंगे तबतक सच्चे प्रेमका होना सम्भव नहीं।

यह कदापि नहीं समझना चाहिये, कि पुरुषोंके दोषसे ही आजकल हिन्दू-स्त्रियोंकी ऐसी हीन दशा है। वास्तवमें अशिक्षा और कुशिक्षा ही इस अधःपतनके मुख्य कारण हैं।

पतिका प्रेम ही नारीका सौभाग्य है। पतिके साथ स्त्रीको कैसा बर्ताव करना चाहिये, इसके विषयमें हमारे देशके ऋषि-मुनियोंने जितनी छानबीन की है, उतनी और किसी देशके लोगोंने नहीं की। शास्त्रोंके मतसे पतिका प्रेम ही स्त्रीका सौभाग्य है। जो स्त्री उस प्रेमको नहीं पा सकती वह अभागिनी है, ऐसी स्त्रीका मुंह देखनेमें भी पाप होता है। और जिसने अपने पतिका प्रेम पाया है, वह परम सौभाग्यवती है। वह जिस जगह पैर रख देती है वहांकी पृथिवी पापहीन—पवित्र हो जाती है। इसलिये पतिका प्रेम पानेका यत्न प्रत्येक स्त्रीको करना चाहिये।

मनुजीने लिखा है "—स्त्रियोंको अलग यज्ञ, व्रत तथा उपवास आदि करनेका अधिकार नहीं, केवल स्वामीकी सेवा करना ही उनका धर्म है, उसीसे वे स्वर्ग पाती हैं।" *

और एक जगह लिखा है:—"जो स्त्री पतिके जीवित

* नास्ति स्त्रीणां पृथक् यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितं।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते॥—मनु।

रहते हो व्रत और उपवास आदि करती है, वह अपने पतिकी आयुको घटाती और अन्तमें नरक पाती है।" *

गृहके सुखके लिये पत्नीका चतुरा, ज्ञानवती और स्वामीके प्रति अनुरक्ता होना बहुत जरूरी है। क्योंकि रमणी ही गृह-सुखकी जड़ है। यदि वह हर घड़ी उदास रहती हो; पतिसे उसका मन न मिलता हो तो इससे बढ़कर दुःख पतिके लिये और कुछ नहीं।

पति ही पत्नीका एक मात्र आधार वा अवलम्बन है और पतिका प्रेम पाना ही पत्नीके सौभाग्य की जड़ है। संसारमें ऐसी कौन अभागिनी स्त्री होगी जो पतिका प्रेम पानेकी इच्छा न करती होगी; कौन स्त्री इस परम सौभाग्यसे वञ्चिता रहना चाहती होगी? इसलिये हरएक स्त्रीको सोचना चाहिये, कि किस उपायसे, किस प्रकारकी पूजा तथा व्रत आदि करनेसे वह इस सौभाग्यको प्राप्त कर सकती है। जिसके सुखसे स्त्री सुखी होती है, जिसके दुःखसे उसे दुःख प्राप्त होता है, जिसके जीनेसे हो वह जीती और न जीनेसे जीती हुई भी मरी सी हो जाती है; जीवनके इस एकमात्र आश्रय और अवलम्बन स्वरूप पतिके प्रति स्त्रीका जो कर्त्तव्य है, उसकी सीमा नहीं। तथापि हमारे शास्त्रकारोंने इस विष-

---

* प्रायः सभी स्त्रियां व्रत आदि करती हैं, परन्तु अपने लिये नहीं वरं पतिकी भलाईके लिये। इसलिये वे पुण्यकी भागिनी होती हैं।
—लेखक।

यमें जो आज्ञा दी है उसे जान लेना और यथोचित पालन करना प्रत्येक धर्म-प्राणा गृहिणीका परम कर्त्तव्य है।

पतिकी पूजा। पहले ही कहा जा चुका है, कि शास्त्रानुसार पतिकी सेवाके सिवा स्त्रीके लिये दूसरा धर्म नहीं। ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें पतिको देवता समझकर पूजा करनेका जो विधान बताया गया है, उसका उल्लेख यहां अप्रासंगिक न होगा :—"पतिको पवित्र—निर्म्मल जलसे नहलाकर धोया हुआ साफ वस्त्र पहनाना चाहिये। इसके बाद सहर्ष उनका पैर धो देना चाहिये। फिर, किसी आसन पर बिठाकर उनके ललाटमें चन्दनका तिलक कर, शरीरमें इत्र आदि खुशबूदार चीजें मल गलेमें फूलोंकी माला पहना देनी चाहिये। यह सब हो जानेपर नाना प्रकारकी भोग्य वस्तुओं द्वारा, 'ओं नमः कान्ताय शान्ताय सर्व्वदेवाश्रयाय स्वाहा।' यह मन्त्र पढ़कर भक्ति-पूर्व्वक पतिकी पूजा कर निम्नलिखित स्तोत्र द्वारा स्तुति करनी चाहिये :—

ओं नमः कान्ताय शास्त्रे च शिवचन्द्रस्वरूपिणे।
नमः शान्ताय दान्ताय सर्वदेवाश्रयाय च।
नमो ब्रह्म स्वरूपाय सती प्राणपरायच।
नमस्याय च पूज्यायहृदाधारायते नमः॥
पञ्चप्राणाधि देवाय चक्षुषस्तारकाय च।
ज्ञानाधाराय पत्नीनां परमानन्दरूपिणे॥

पतिर्ब्रह्मा पतिर्विष्णुः पतिरेव महेश्वरः।
पतिश्च निर्गुणाधारो ब्रह्मरूप नमोऽस्तुते॥
क्षमस्व भगवन् दोषं ज्ञानाज्ञान कृताकृतात्।
पत्नीबन्धो! दयासिन्धो! दासी दोषं क्षमस्व च॥

—ब्रह्मवैवर्त्त पुराण।

"हे स्वामिन्! आप शिवजीके ललाटमें चमकने वाले चन्द्रमाकी भांति चमकीले और पवित्र हैं। शमदमादि गुण आपमें मौजूद हैं। आप ही में सब देवताओंका वास है। आप ब्रह्म-स्वरूप और सतीके लिये प्राणसे भी प्रिय हैं। आप नमस्कार करने योग्य, पूज्य और मेरे हृदयके अधिष्ठाता देवता हैं। आप मेरे पञ्च प्राणोंके * प्राण वा कर्त्ता तथा आंखोंकी पुतलियां हैं। आप ज्ञानमय और पत्नीको परम आनन्द देने वाले हैं। आप ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर हैं। आप निर्गुण-ब्रह्म स्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। हे भगवन् दयासिन्धु, पत्नी-वत्सल! आप मेरे जाने तथा अनजाने दोषोंको क्षमा कीजिये। मुझे अपनी दासी समझ मेरे अपराधोंका खयाल न कीजिये।"

पतिकी भक्ति और सेवा ही स्त्रीके लिये एक मात्र विधिका विधान नहीं है वरन् सावित्री आदिकी भांति पतिके मङ्गलार्थ व्रताचरण करना भी हिन्दू-रमणियोंके पतिके सेवाका दूसरा

* प्राण पांच माने गये हैं, यथा :—प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान।

चमकता हुआ उदाहरण है। महाभारतमें लिखा है, कि साध्वी स्त्रियां देवताकी तरह पतिकी सेवा किया करती हैं।" *

जो काम पतिके प्रिय हैं, उन्हें करना तथा सदा उनकी प्रीति सम्पादनमें लगी रहना चाहिये। जिस कार्य्यके होनेसे पतिको आनन्द होता हो, वह यदि कोई अनुचित कार्य्य न हो तो, उसे करनेमें कदापि संकोच नहीं करना चाहिये। स्वामी बाहरसे थककर आयें, तब प्रसन्न मुख और मधुर वचनों द्वारा उनकी थकावटको भुला देनेकी चेष्टा करनी चाहिये। कामके लिये जब वह घरसे बाहर जायें और जब काममे लौटकर आयें तब उनके सामने जरूर आना चाहिये। किसी काममे नाराज होकर यदि वह कोई कड़ी बात भी कहदें, तो उस समय उनकी बातका जवाब न देना चाहिये। पतिके लिये भोजन अपने ही हाथसे बनाना चाहिये। यह काम कदापि किसी गैरको न सौंपना चाहिये। अवसरके समय अच्छी अच्छी बातें सुनाकर पतिको प्रसन्न रखना चाहिये।

एक बार सत्यभामाने द्रौपदीसे पूछा,—"आपने किस उपाय या मन्त्र-बलसे अपने स्वामीको वश कर लिया है, मुझे बतादें।" द्रौपदीने उत्तर दिया,—"मैंने किसी खास उपाय या मन्त्रबलसे पतिको वश नहीं किया है। पतिको वश करनेके

* देववत् सतत साध्वी भर्त्तारमनुपश्यति।
शुश्रूषां परिचर्य्यां च देवतुल्य प्रकुर्व्वति।" —महाभारत।

लिये यन्त्र-मन्त्रकी जरूरत नहीं पड़ती। मैं काम, क्रोध तथा अहङ्कारको छोड़ दिन रात पाण्डवों तथा उनकी अन्यान्य स्त्रियोंकी सेवा किया करती हूं। अभिमान छोड़कर, बड़े प्रेमसे पतियोंका मन प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करती हूं। प्रातः काल उठकर अच्छी तरह घर धोना, बर्त्तन मलना, अपने हाथसे भोजन बनाना और पतियोंको भोजन कराना तथा बड़ी सावधानीसे घरकी सम्पत्तिकी रक्षा करना मैं अपना कर्त्तव्य समझती हूं। मैं किसी दुष्टा स्त्रीके पास नहीं बैठती, किसीको कोई कड़ी बात नहीं कहती, सबके अनुकूल और आलस्यसे दूर, रहती हूं। परिहासके समयके सिवा और कभी नहीं हँसती, द्वारपर अथवा मैली-कुचैली जगह कभी नहीं बैठती। पति-सेवाके बिना मुझे एक क्षण भी चैन नहीं मिलता। स्वामीके आदेशानुसार उनके हितके कामोंमें सदा लगी रहती हूं।"

पुरुषोंमें उग्रता कुछ अधिक होती है; इसलिये नारी हृदयकी कोमलता द्वारा उस उग्रताका मुकाबला वा ह्रास करना चाहिये। किसी वजहसे यदि स्वामी कोई रूक्ष वा कर्कश व्यवहार करें अथवा नाराज होकर कोई कड़ी बात कह दें, तो चुपचाप उसे सह लेना चाहिये। सहनशीलता स्त्रियोंका प्रधान गुण है। पृथिवीमें सहनेकी शक्ति है, इसी वजहसे सभी पदार्थ पृथिवीके अवलम्बनसे रहते हैं, उसी तरह स्त्रियोंमें भी सहनेकी शक्ति होती है और उसी शक्तिके

कारण वे पति, पुत्र तथा अन्यान्य परिवार वर्गका अवलम्बन समझी जाती हैं। जिस नारीमें यह गुण नहीं होता, वह स्वामीका सौभाग्य नहीं पाती। महाभारतमें लिखा है :— "पतिके नाराज होकर कोई कड़ी बात कह देनेपर जो रमणी खुशीसे उसे सह लेती है, वही पतिव्रता है" *

किसी दम्पतिमें सदा झगड़ा हुआ करता था। स्वामी घर आनेपर नाना प्रकारसे अपनी स्त्रीको डांटता और उसका अपमान किया करता था। वह स्त्री भी पतिकी बातोंका मुंह-तोड़ जवाब दे दिया करती थी। फलतः झगड़ा कभी मिटता न था। अन्तमें हारकर स्त्रीने मन्त्रबल द्वारा पतिको अपने वशमें करनेका निश्चय किया। उसे पूर्ण विश्वास था, कि किसी ओझाके मन्त्रबल द्वारा वह अनायास ही अपने पतिको अपने वशमें कर सकेगी। इसलिये एक ओझाके पास जाकर उसने अपना अभिप्राय कहा। ओझा बुद्धिमान था। उसने उस स्त्रीके विश्वासको बिगाड़ना उचित नहीं समझा। एक लोटा जल मंगाकर ओझाने उसे मन्त्रपूत किया और उस रमणीको देकर कहा, कि जब तेरा पति घर आये तब तू एक घूंट जल अपने मुंहमें रख लेना और जबतक वह सो न जाये तबतक मुंहका जल मत फेंकना। लगातार इक्कीस दिन तक इसी तरह करते रहनेसे तेरा पति अवश्य ही तेरे

* पत्युराज्यापि चोक्ता या दृष्टा क्रुद्धचक्षुषा।
सुप्रसन्नमुखी भर्तुर्यानारी सा पतिव्रता।—महाभारत।

वशमें हो जायेगा। इस प्रकार वह स्त्री, तीन सप्ताह तक अपने पतिकी कड़ी बातें चुपचाप सुन लेनेके लिये वाध्य हुई। इधर पतिने देखा, कि आजकल उसकी पत्नी बड़ी सहनशीला हो गई है; वह जो कुछ कहता है, उसे चुपचाप सह लेती है, ऐसी दशामें अब उसे कड़ी बातें सुनाकर वृथा कष्ट देना उचित नहीं। फलतः ओझाके इस अभिनव उपायसे पति और पत्नीके स्वभावमें अद्भुत परिवर्त्तन हो गया और उनका पारस्परिक विवाद अनायास ही मिट गया।

बाईबिलमें लिखा है :—"जो अपनेको जीत लेता है, वह दिग्विजयीसे भी बढ़कर है।" फलतः आत्मसंयमसे बढ़ कर गुण दूसरा नहीं। स्त्रीकी सहनशीलतासे कितने ही निष्ठुर और अत्याचारी पति भी सहृदय और चरित्रवान बन जाते हैं। जो स्त्री अत्याचारी पतिका उत्पीडन सहती हुई प्रेम तथा नम्रतासे उसका प्रतिकार करती है, वह शीघ्र ही अपने पतिको अपने वशमें कर लेती है। ऐसी स्त्रियां ही सच्ची गृहिणी तथा सच्ची पतिव्रता है।

स्त्रीको 'भार्य्या' भी कहते हैं। शास्त्रोंमें भार्य्याके कर्त्तव्य कर्म्मोंके दायित्व तथा गुरुत्वके विषयमें जैसा निर्देश किया गया है और उन्हें जैसा ऊंचा स्थान प्रदान किया गया है, उससे यदि हमारे देशकी स्त्रियोंकी वर्त्तमानावस्थासे मिलान किया जाये, तो बड़ा आश्चर्य्य होगा। महाभारतमें लिखा है, कि भार्य्या पुरुषकी अर्द्धांगिनी और सबसे अच्छी सङ्गिनी

है। भार्य्या अर्थ, धर्म्म, काम प्राप्त करनेकी तदगोर और मुक्तिकी जड़ है। जिसे भार्य्या है, वही क्रियाशील भाग्यवान और लक्ष्मीवान है। फलतः भार्य्या ही गृहका मूलाधार है। जिस घरमें भार्य्या नहीं, वह घर वनके समान है। क्योंकि जिस घरमें गृहिणी होती है, वही घर 'घर' कहलाता है। भार्य्याहीन व्यक्तिको देव तथा पितृ-कार्य्य करनेका अधिकार नहीं। वह यदि कोई अनुष्ठान करे भी तो कोई फल नहीं होता।" *

गरुड़नीतिसारमें लिखा है:—"गृह-कार्य्यमें सुनिपुणा, प्रियवादिनी, प्रतिप्राणा और पतिपारायणा स्त्री ही प्रकृत भार्य्या है। सदा धर्म्म-कर्म्ममें लगी रहनेवाली, मान सीखने वाली, प्रिय बोलनेवाली, पतिको आनन्द देनेवाली, देवताओं और पितरोंकी पूजा करनेवाली और सब प्रकारसे सौभाग्यको बढ़ानेवाली स्त्री जिसके घरमें है, वह मनुष्य, मनुष्य नहीं,

* "अर्द्धं भार्य्या मनुष्यस्य भार्य्या श्रेष्ठतमः सखा।
भार्य्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्य्या मूलं तरिष्यतः॥
भार्य्यावन्तः क्रियावन्तः स भार्य्या गृहमेधिनः।
भार्य्यावन्तः प्रमोदन्ते भार्य्यावन्तः श्रियान्विताः॥
भार्य्याशून्यो वनसमाः सभार्य्याश्च गृहाः सदा।
गृहिणी च गृहं प्रोक्तं न गृहं गृहमुच्यते॥
अशुचिः स्त्रीविहीनश्च दैवे पैत्रे च कर्म्मणि।
यदह्नां कुरुते कर्म्म न तस्य फल भाग् भवेत्॥"—महाभारत।

वरन् इन्द्र है। अपने स्वामीकी आज्ञाका पालन करनेवाली, गुणवती और थोड़ेमें ही प्रसन्न होनेवाली स्त्री लक्ष्मी-स्वरूपिणी है।" *

महाभारतमें लिखा है,—जो स्त्री गृहकार्य्यमें चतुरा और पुत्रवती है, जिसका मन, वचन और कर्म्म पवित्र है, जो पतिकी आज्ञाके अनुसार चलती है, वही स्त्री 'भार्य्या' कहलानेके योग्य है। †

स्त्रीका और एक नाम 'सहधर्म्मिणी' है। दक्षसंहितामें लिखा है :—"जिस स्त्रीमें कोई दोष नहीं होता और जो अपने पतिके साथ रहकर धर्म्माचरणमें तत्पर रहती है, वही सहधर्म्मिणी कहलानेके योग्य है।" पतिके धर्म्म करनेसे पत्नीको

---

* सा भार्य्या या गृहे दक्षा सा भार्य्या या प्रियंवदा।
सा भार्य्या या पतिप्राणा सा भार्य्या या पतिव्रता॥
सततं धर्म्मबहुला सततञ्च पतिप्रिया।
सततं प्रियवक्त्री च सततं चर्तुकामिनी॥
पितृदेवक्रियायुक्ता सर्व्वसौभाग्यवर्द्धिनी।
यस्यैदृशी भवेद्भार्य्या देवेन्द्रो न स मानुषः॥
यस्य भार्य्या गुणज्ञा च भर्त्तारमनुगामिनी।
अल्पाल्पेन तु सन्तुष्टा सा प्रिया न प्रिया प्रिया॥"

—गारुड़ नीतिसार।

† "सा भार्य्या या गृहे दक्षा सा भार्य्या या प्रजावती।
मनोवाक्कर्म्मभिः शुद्धा पत्युरादेशवर्त्तिनी॥"

—महाभारत।

भी धर्म होता है, क्योंकि एकके किये पाप-पुण्यका फल दूसरेको भी भोगना पड़ता है। इससे पतिको धर्म करनेके लिये उत्साहित करना, धर्ममें उसे सहायता देना और उसके मनको पापकी ओरसे हटा लेना सहधर्म्मिणीका प्रधान काम होना चाहिये। सच्ची सहधर्म्मिणी पतिपत्नीके सम्बन्धको अनन्त काल तकके लिये स्थायी समझ पतिके प्रति श्रद्धा और भक्ति करती है। पतिको अपने शरीर और प्राणसे अभिन्न समझ सदा उसके मङ्गल और सुख-शान्तिकी कामनामें तत्पर रहती है। पतिके सम्पद-विपदको अपना सम्पद-विपद समझ परम सुहृदकी भांति उसकी प्रवृत्तिको सदा भले कामों-की ओर आकर्षित करते रहना, भ्रमवश यदि पतिसे कोई अनुचित कार्य्य हो जाय तो नम्रता पूर्व्वक मीठे वचनों द्वारा उसे समझा देना, धर्म्म-कर्म्म आदि समस्त सांसारिक कार्योंमें पतिको सहायता करना और पतिके हृदयमें पवित्र तथा उच्च भावोंका समावेश करना ही वास्तविक सहधर्म्मिणीका प्रधान कर्त्तव्य है। पतिको अच्छे कामोंके लिये उत्साहित करने तथा उसके हृदयमें पवित्र भावोंका सञ्चार कर देनेकी जितनी शक्ति सहधर्म्मिणीमें होती है, उतनी और किसीमें नहीं होती। जो स्त्री अपने पतिको परम धार्म्मिक, दयालु, परोपकारी, कर्म्मठ, साहसी और सहिष्णु बनानेकी चेष्टा न कर उसे अपने सुखमें लगाये रहनेका प्रयत्न करती है, वह अपने 'सहधर्म्मिणी' नामको कलङ्कित करती है।

परायेकी भलाईमें लगा रहना ही मनुष्य-हृदयका प्रधान गौरव है। परायेका दुःख देखकर जो हृदय पिघल नहीं जाता; परायेके लिये अपने सुखोंको छोड नहीं सकता, वह नीच हृदय है, उसमें और पशु-हृदयमें कोई भेद नहीं। किन्तु दु.खकी बात है, कि शिक्षाके अभाव तथा स्वार्थपरता-के विस्तारके कारण स्त्रियोंका कामल हृदय भी पत्थर हो जाता है। हाय, यदि उन्हें उचित शिक्षा दो जाती, वे वास्तविक स्त्रिया बनाई गई होती, तो आज भारतके स्त्री-समाजकी ऐसी अधःपतित अवस्था न होती। एक दिन जिनकी परोपकारकी कथा सारे संसारमें विख्यात थी, वे आज दूसरोंको भी परोपकार करनेसे वञ्चित रखनेमें सङ्कोच नहीं करती। आजकल ऐसी बहुत सी स्त्रिया है, जो अपने घरका एक तुच्छ तिनका भी परोपकारमें लगते देख जल जाती है।

विवाह होनेसे पहले जो नवयुवक बडे स्वदेशभक्त परोप-कारी और उदार हृदय समझे जाते थे, वे विवाह होते ही बड़े सङ्कीर्णहृदय और स्वार्थी बन जाते है। इसमें सन्देह नहीं, कि स्वार्थान्ध स्त्रिया ही उनकी पवित्र उदारताको नष्ट कर डालती हैं। वे पतिके स्वभावको भी अपने ही स्वभावको तरह निष्ठुर अनुदार और सङ्कीर्ण बना डालनेमें अपना गौरव समझती है। ऐसी नीचमना, धर्मके रास्तेमें कांटे बोनेवाली स्त्रियोंको कभी सुख नहीं,मिलता। इसलिये हरएक स्त्रीको सदा इस बातका खयाल रखना चाहिये, कि जिसमें

उसके पतिके सद्गुण बढ़ते जायं तथा अवगुण विनष्ट होते जायें। तभी वे सहधर्म्मिणी कहला सकती हैं। अपने पवित्र प्रेम और पतिभक्ति द्वारा यदि स्त्रियां चाहें तो अपने पतियोंको पापकी राहसे हटाकर पुण्यकी राह पर ला सकती है। हजारों उप-देशोंसे जो काम नहीं हो सकता, उसे एक सुशीला पत्नी बड़ी आसानीमें कर सकती है। जिस घरमें पति पत्नीको और पत्नी पतिको धर्म्म-कार्य्यमें सहायता देती है, वह घर, घर नहीं वरन् स्वर्ग है। ऐसी ही पत्नी अपने पतिकी सच्ची सहधर्म्मिणी है।

अच्छे गुण ही स्त्रियोंके शृङ्गार हैं। परन्तु आजकल उन्हें अच्छे गहने और कपड़े पहननेकी मानों बीमारी सी हो गई है। सम्भव है, कि इससे उनकी सुन्दरता कुछ बढ़ जाती हो, परन्तु ऐसी सुन्दरता बढ़ानेका उद्देश्य क्या है? शायद पतिको सन्तुष्ट करनेके लिये ही स्त्रियोंको शृङ्गार करनेकी आवश्यकता पड़ती है। इसीलिये प्राचीन कालकी आर्य्य-महिलायें भी अपने पतिके आदेशानुसार अच्छे कपड़े और गहने पहना करती थीं, परन्तु पतिके विदेश चले जानेपर वे समस्त शृङ्गार-पटार छोड़, बड़ी सादगीसे रहती थीं। प्रत्येक पुरुष अपनी स्त्रीको सुन्दर देखना चाहता है, वैसे ही स्त्री भी अपने पतिको सुन्दर देखना चाहती है, यह स्वाभा-विक बात है। इसीलिये दोनों एक दूसरेकी सजावटकी चेष्टा किया करते हैं। अतएव यदि उनके सच्चे प्रेममें कमी

न पाये, तो वे एक दूसरेकी सुन्दरता बढानेके प्रयासमें कभी कमी नहीं करते। ऐसी दशामें पतिसे अच्छे गहने और कपड़ोंकी फरमाइश करना; यहां तक, कि अनुरोध करना भी अनुचित और अधर्म है। परन्तु बड़े ही परितापको बात है, कि आजकल बहुत सी स्त्रियां पतिकी प्रसन्नताके लिये शृङ्गार नहीं करतीं वरं दूसरेके आगे बड़ाई पाना तथा अपने धन सम्पत्तिका गौरव दिखाना ही उनके शृङ्गारका उद्देश्य हो रहा है। कितनी ही स्त्रियां लोगोंको दिखानेके लिये एकको जगह दो गहने पहन लिया करती हैं। किसीने बहुत सच कहा है, कि 'अहङ्कार' शब्दके 'ह' अक्षरको 'ल' से बदलकर ही 'अलङ्कार' शब्द बना है।

आजकल बहुत सी स्त्रियां घरके खर्चसे रुपये बचाकर अपने लिये गहने बनवा लेती हैं, गहनोंके लिये पतिको नाना प्रकारसे दिक करती हैं, रूठ जाती हैं और बोलना-चालना तक छोड़ देती हैं। गहनोंकी फरमाइशके भयसे कितने ही युवक अवकाश मिलने पर भी परदेशसे घर लौटनेमें हिचकते हैं। ये गहने न जाने कितने ही नवयुवकोंको उनकी प्रियतमा पत्नियोंके सुन्दर सुख-दर्शनसे वञ्चित रखते हैं। कितने ही युवक स्त्रीके गहने बनवानेके फेरमें पड़कर अपने वृद्ध पिता माताकी सेवा भी नहीं कर सकते। पाठिके! स्त्रियोंके हृदयकी दया, कोमलता, उदारता आदि सद्गुणकी उनके वास्तविक अलङ्कार और शृङ्गारकी चीजें हैं। जिनमें उपर्युक्त

गुण नहीं वे अच्छे से अच्छे वस्त्राभूषण धारण कर भी वास्तविक सुन्दरियां नहीं कहला सकतीं। इसलिये सुन्दर वस्त्राभूषणोंके लिये पतिको तङ्ग करना उचित नहीं। क्योंकि जो स्त्री सदा फरमाइशें किया करती है, वह अधिक दिनतक पतिको प्रेम-पात्री नहीं रह सकती। इसलिये साध्वी और सच्ची पतिव्रतायें अपनी सजावट तथा शृङ्गारका भार अपने पतिकी इच्छापर छोड़ देना ही उचित समझती हैं।

दो हृदयोंका मिलन ही प्रणयकी जड़ है। उर्दूके एक कविने कहा है :—"उलफत (प्रेम) का जब मजा है, कि दोनोंका दिल हो साफ।" जबतक पति-पत्नीके हृदय पवित्र और स्वच्छ नहीं होते तबतक दोनोंका वास्तविक मिलन नहीं होता। दो विभिन्न हृदयोंको अभिन्न बना देनेके लिये ही हिन्दू-विवाहकी सृष्टि हुई है। विवाहके समय एक युवक एक सम्पूर्ण अपरिचिता बालिकाको अपना समझ उसका पवित्र पाणिग्रहण करता है और बालिका भी एक अपरिचित युवकको अपना सर्व्वस्व समझ अनन्त कालके लिये उसे आत्म-समर्पण कर देती है, पतिके अदृष्टके साथ अपने अदृष्टको मिला देती है। विवाहके पश्चात् हिन्दू-नवदम्पति परस्पर एक दूसरेको अपना सर्व्वश्रेष्ठ सहायक, चिरसहचर और परमसुहृद बना लेता है। यद्यपि एक अपरिचित व्यक्तिको अपना बना लेना सहज नहीं किन्तु विवाहके समय वरकन्याको अग्नि, वरुण तथा गणपति आदि देवताओंको साक्षी रखकर एक

अटूट प्रतिज्ञा-बन्धनमें आबद्ध हो जाना पड़ता है और यह सुदृढ़ बन्धन ही उनके मनको मिलाकर एक कर देता है। यह मानसिक मिलन ही विवाहका उद्देश्य है। विवाहित हो जानेपर वरवधूमें एक अविच्छिन्न सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। उसी समयसे वधू वरको अपना, रक्षक, उपदेशक, सहायक और अवलम्बन समझने लगती है तथा वर भी वधूको अपनी जीवनसङ्गिनी, सहायकारिणी, सहधर्म्मिणी और अनुवर्त्तिनी समझने लगता है। विवाहके समय एक मन्त्र पढ़ा जाता है, उसका अर्थ इस प्रकार है :—"तुम्हारा हृदय हमारा और हमारा हृदय तुम्हारा हो जाय तथा अन्तमें दोनोंका हृदय मिलकर ईश्वरका हो जाय।" परन्तु दुःखकी बात है, कि आज-कल दो हृदयोंका मिलन बहुत कम दिखाई देता है। इससे अनेक दम्पति चिरकाल तक विषम मनोकष्ट उपभोग करनेके लिये बाध्य होते हैं। जो स्त्री निष्कपट भावसे अपने मनकी बातें पतिसे नहीं कह सकती, पतिके सामने अपने हृदयकी किवाड़ें खोल नहीं सकती, पतिको अपनेसे भी बढ़कर विश्वासपात्र समझ गुप्तसे भी गुप्त बात साफ साफ उससे नहीं कह सकती, वह पतिके हृदय-राज्यपर अपने प्रेमका सिक्का नहीं जमा सकती तथा पतिप्रेम प्राप्त करनेके लिये आजन्म लालायित रहती है। बहुत सी स्त्रियां अपने पतियोंसे कितनी ही बातें छिपाया करती हैं। वास्तवमें ऐसा करना बड़ा ही अनुचित और अधर्म्म है। जहां सच्चा प्रेम है,—दोनोंका हृदय

मिलकर एक हो गया है, वहां लज्जा और सङ्कोच कैसा; आराध्य देवतासे कपट-व्यवहार क्यों?

स्वामी और स्त्रीकी तरह अपनत्व कहीं दिखाई नहीं दे सकता। इस अपनत्व—इस गूढ़ और सङ्कोच भावका असली मर्म सच्चे प्रेमिक स्त्री-पुरुषके सिवा और कोई नहीं जान सकता। यह अपनत्व ही पतिको पत्नीपर और पत्नीको पतिपर निर्भर रहना सिखाता है। जब दोनों प्रेमिकोंके मनमें अपनत्वकाके अटल साम्राज्य स्थापित हो जाता है, तब कोई किसीसे कुछ छिपानेकी आवश्यकता नहीं समझता। केवल यही नहीं, वरन् एक दूसरेकी सलाहके बिना कुछ कर ही नहीं सकता। यही दो हृदयोंके मिलनका लक्षण है।

यदि स्त्रीमें सब गुण हों, किन्तु सरलता और निष्कपटता न हो, तो वह पतिके प्रेमको अपनी ओर कदापि नहीं खींच सकती। पण्डितोंने कपटी नारीको "विषरस भरे कनक घट"की तरह परित्याग कर देनेकी आज्ञा दी है। इसलिये स्वामीसे कोई बात छिपानी नहीं चाहिये। यदि कोई अपराध हो जाय तो भी सरल मनसे पतिसे कह कर माफी मांगनी चाहिये। ऐसी दशामें कौन ऐसा निठुर-हृदय पुरुष होगा, जो क्षमा न करेगा। साथ ही यह भी स्मरण रहे, कि यदि किसी कारणवश स्त्रीको सरलताके विषयमें पतिके मनमें कोई सन्देह हो जाय तो उसका परिणाम बड़ा ही खराब होता है और उसका कुफल जन्म भर भोगना पड़ता है। इसलिये

सदा इस बातका प्रयत्न करते रहना चाहिये, जिसमें पतिके मनमें अविश्वास न होने पाये।

कुछ स्त्रियां अपने पतियोंको दरिद्र अथवा कार्य्यक्षम समझ उनसे घृणा करती हैं और कभी कभी सामान्य कारण उपस्थित होते ही वे उन्हें अति कर्कश शब्दों द्वारा फटकार दिया करती हैं। यह बड़ी ही अनुचित और घृणित आदत है। जो स्त्री इस गर्हित नीतिका अवलम्बन कर अपने पतिको कोसा करती है वह पति-प्रेमसे आजन्म वञ्चिता रह अन्तमें नरक-गामिनी होती है। ईश्वर जो करता है वह हमारे मङ्गलके लिये ही करता है, इसलिये वह जिस अवस्थामें रखे उसीमें सन्तुष्ट रहना चाहिये। दरिद्रतासे घृणा करना पाप है, क्योंकि दरिद्रता धर्म्म और धैर्य्य आदिकी कसौटी है गोसाईं तुलसीदासजीने लिखा है :—

"धीरज धर्म्म मित्र अरु नारी, आपदकाल परखिये चारी।"

नि:सन्देह हित-अनहित और अपने-परायेकी पहचान विपत्तिके समय ही होती है। विपत्तिमें भी जो साथ नहीं छोड़ता, वही सच्चा साथी है।

यह कदापि नहीं सोचना चाहिये, कि सम्पत्ति द्वारा ही सुख प्राप्त होता है। क्योंकि बहुत सी धनियोंकी स्त्रिया भी आजीवन दु:खिनी रह जाती हैं और बहुत सी दरिद्रोंकी स्त्रिया अपने पतिकी सेवाकर सानन्द जीवन बिताती हैं। अच्छी स्त्रियां कुत्सित, कुरूप और दरिद्र पतिसे घृणा न कर

प्रेम-पूर्व्वक उसकी सेवा-सुश्रुषा किया करती है। हमारे शास्त्रोंमें लिखा है:—"पतिके कुत्सित, पतित, मूढ़, दरिद्र रोगी तथा जड़ होने पर भी कुलवती स्त्री उसे विष्णुतुल्य जानती है।" * दरिद्र तथा रोगी पतिसे घृणा करने वाली स्त्री मरनेपर सर्पिनी होती है तथा बार बार वैधव्य-कष्ट भोगती है। † चाणक्यका कथन है, कि धनाभाव हो जानेपर जो स्त्री घबरा कर पतिका साथ नहीं छोड़ती वही सुभार्य्या है। इसलिये प्रत्येक अवस्थामें प्रसन्नतापूर्व्वक पतिका साथ देकर उसकी सेवा करना स्त्रीका प्रधान धर्म्म है। सुख और शान्ति *अवस्थाके आधीन नहीं हैं। क्योंकि संसारमें* किसीकी अवस्था सदा एक सी नहीं रहती। मनुष्यकी जिन्दगी सुख-दुःखके जालसे जकड़ी हुई है। इसलिये यदि अपनी अवस्था पर सन्तोष न किया जाय तो सच्चा सुख कदापि नहीं प्राप्त हो सकता। विपत्तिके समय पतिको साहस प्रदान करना, शोकके समय धैर्य्य देना और दुःखमें समवेदना तथा सहानुभूति प्रकाश करना स्त्रीका प्रधान कर्त्तव्य है। मनुजोंने

---

* "कुत्सितं पतितं मूढ़ं दरिद्रं रोगिणं जड़ं।
कुलजा विष्णु तुल्यञ्च कान्तं पश्यन्ति सन्ततं॥"

—ब्रह्मवैवर्त्तपुराण।

† दरिद्रं व्याधितं मूर्खं, भर्त्तारं यावमन्यते।
सा मृता जायते व्याली वैधव्यञ्च पुनः पुनः॥

—पराशर-संहिता।

लिखा है, कि दैवयोगसे पतिके दरिद्र होने अथवा बीमार पड़ जानेपर जो स्त्री उसकी अवज्ञा करती है, वह बार बार शूकरी, कुतिया या गदहिनीका जन्म पाती है। घोर विपत्तिके समय जो पुरुष अपनी स्त्रीकी सच्ची सहानुभूति प्राप्त करता है, उसके कष्ट शीघ्र ही घट जाते हैं। अतः प्रत्येक अवस्थामें परम सन्तोष-सहित पतिकी सेवामें तत्पर रहना ही उचित है।

जिस समय श्रीरामचन्द्रजीको वनमें चले जानेकी आज्ञा मिली, उस समय उनकी भार्य्या सीताजी भी प्रसन्नता पूर्व्वक उनके साथ चलनेके लिये तैयार हुईं। रामचन्द्रजीने वनके क्लेशोंका वर्णन कर चाहा, कि सीता न जायें, परन्तु साध्वी सीताने पतिका साथ न छोड़ा। उन्होंने कहा:—"नाथ! ऐसी विपत्तिके समय भी यदि मैं आपकी संगिनी न हो सकी, तो मेरे जीनेकी क्या जरूरत है? यदि मैं साथ न रहूंगी तो वनमें घूमनेके कारण थक जानेपर कौन आपकी सेवा करेगा, कौन आपके लिये भोजन तैयार करेगा और जल देगा?" रामचन्द्रजीके साथ रहते हुए वनमें सीताजीको जरा भी कष्ट नहीं होता था। लङ्कामें जानेपर उन्होंने सरमासे पञ्चवटीका जो सुन्दर वर्णन किया है, उससे प्रतीत होता है, कि घर रहकर भी सीताको उतना सुख नहीं प्राप्त होता जितना रामचन्द्रके साथ वनमें मिलता था।

धन-सम्पत्ति सुखकी जड़ नहीं है, वरन् गरीबी पति-पत्नीके प्रेमको बढ़ा देती है। एक सौदागरका लड़का अपने

पिताके मर जानेपर उसकी अगाध सम्पत्तिका मालिक बन बड़े आनन्दसे जिन्दगी बिताने लगा। कुछ दिनोंके बाद दैवयोगसे उसके रोजगारमें घाटा लगा इसलिये उसे दिवाला निकालनेके लिये बाध्य होना पड़ा। ऐसी दशामें बिना खर्च घटाये काम नहीं चलता था, परन्तु उसने अपने मनमें सोचा, कि यदि घरका खर्च घटा दिया जायगा तो मेरी नव-विवाहिता पत्नीके प्रेममें अवश्य ही कमी आ जायगी, इसलिये खर्चमें सहसा कोई परिवर्त्तन करनेका साहस उसे न हुआ। अथच अवस्था दिन पर दिन और भी खराब होने लगी। बिचारा सौदागरका लड़का बड़े संकटमें पड़ा। दिन-रात इसी बातकी चिन्ता करते रहनेके कारण उसका मुंह उदास हो गया।

कुछ दिनके बाद प्रियतमा पत्नीको खामोशी उदासी और चिन्ताका कारण मालूम हो गया। उसने हंसते हुए प्रसन्न चित्तसे कहा,—"प्राणनाथ। मैं आपकी हालत अच्छी तरह जानती हूं। आपके पास धन नहीं है इसके लिये मैं तनिक भी दुःखी या भयभीत नहीं हूं। हां, इस बातका दुःख अवश्य है, कि आजतक आपने अपने मनकी बात मुझसे नहीं कही। यदि आप पहले ही मुझसे सब बातें बता देते तो अबतक मैं उसका उचित बन्दोबस्त कर लेती।" पत्नीकी ये प्रेम भरी बातें सुनकर सौदागरका लड़का बहुत ही प्रसन्न हुआ। इधर पत्नी घरके इन्तजाममें लगी। अपने पतिका एक प्यारा बाजा छोड़कर उसने कुल मूल्यवान

चीजें बेच दी और दास-दासियोंसे नम्रता पूर्व्वक कहा, कि इस समय हमारी दशा अच्छी नहीं, अब तुम लोग अपने लिये कोई दूसरा प्रबन्ध कर लो। तुम लोगोंको छोड़ते हुए हमें बड़ा कष्ट हो रहा है, परन्तु यहां रहनेसे अब तुम लोगोंको तकलीफ होगी, इसलिये बाध्य होकर मुझे ऐसा करना पड़ता है। दास-दासियोंके चले जानेपर वह घरका सब काम स्वयम् करने लगी। उसने विचार किया, कि गरीब आदमीका शहरमें रहना ठीक नहीं, क्योंकि शहरमें खर्च अधिक पड़ता है। इसलिये पतिसे परामर्शकर एक गांवमें जाकर आरामसे रहने लगी। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि स्त्रीके इस परिवर्त्तनसे दोनोंका प्रेम और भी बढ़ गया और पहलेकी अपेक्षा वे और भी सुखसे रहने लगे। इसलिये पतिकी अवस्था बदल जाने पर दुःखी नहीं होना चाहिये ; वरन् सदा इस बातकी चेष्टा करनी चाहिये, जिसमें प्रत्येक अवस्थामें पतिको सुख रहे। क्योंकि सुख और शान्ति अवस्थाके आधीन नहीं हैं। मनुजीने लिखा है :—"सन्तोष ही सुखकी जड़ है और असन्तोष ही सब तरहके कष्टोंका कारण है। इसलिये स्त्रीको चाहिये, कि वह थोड़ेमें सन्तुष्ट रहकर पतिको सदा सुखी रखनेकी चेष्टा किया करे।" *

---

* सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी स यतो भवेत् ;
सन्तोष मूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्य्ययः॥ —मनु।

अगणित तारोंके रहते हुए भी चन्द्रमाके बिना आकाशका अन्धकार दूर नहीं होता, उसी तरह रूप, यौवन तथा अन्यान्य सद्गुणोंके रहते हुए भी सतित्व-विहीना स्त्री शोभा नहीं पाती। सतित्व-गुणयुक्ता चाण्डालकी कन्या प्रसती देवांगनाकी अपेक्षा श्रेष्ठा, पूज्या और श्रद्धाकी पात्री है। स्त्रियोंके लिये सबसे बढ़कर प्रधान शिक्षा सतित्व ही है। यही उनके समस्त धर्मों का सार-धर्म-स्वरूप है। जिस स्त्रीका हृदय सतित्वके विमल प्रकाशसे उद्भासित नहीं, उसका कोई धर्म भी नहीं। क्योंकि सतित्व ही स्त्रियोंके धर्मका प्रधान बन्धन-स्वरूप है। जिस नारी-हृदयमें सतित्वको सर्वोच्च स्थान नहीं प्राप्त होता उसमें धर्म भूलकर भी नहीं ठहरता। ऐसे महान् गौरव-युक्त सतित्व-धर्मकी रक्षा करना स्त्री-मात्रका प्रधान कर्त्तव्य है।

मनमें क्षणभरके लिये भी कोई कुचिन्ता उपस्थित हो जानेपर सतित्वकी मर्य्यादा नष्ट हो जाती है। इसलिये वास्तविक सती भूलकर भी कभी किसी ऐसी चिन्ताको मनमें स्थान देना नहीं चाहती, जिससे उसके पवित्र सतित्वको धक्का लग सकता हो। वह अहर्निश पति-सेवामें निमग्न रहती है। पतिका प्रफुल्ल आनन देख उसके आनन्दकी सीमा नहीं रहती। वह अपने प्रियतम पतिके किसी कार्य्यमें दोष नहीं देखती और न कभी उससे असन्तुष्ट ही होती है। सती अपने मूर्ख पतिको महापण्डित_समझ उसके प्रति श्रद्धा

प्रकाश करती है। महाकुलित होनेपर भी पतिसे बढ़कर सुन्दर उसे कोई नहीं प्रतीत होता। पतिके साथ वनमें रह कर भी वह स्वर्गीय सुखका अनुभव करती है। हजार कष्ट होनेपर भी पतिके साथ रह वह परमानन्द प्राप्त करती है। कविवर रहीम कह गये हैं :—

"टूट टाट घर टपकट खटियौ टूट,
पियकी बांह उसिसवां सुखकै लूट।"

इस प्रकार पतिको अपना सर्वस्व समझ, उसके सुख-सम्पद मान-मर्यादाको अपना सुख-सम्पद मान-मर्यादा जानती हुई जो रमणी तन्मय होकर पति-भक्ति करती है, वही वास्तविक सती है और वही पतिके प्रति अपने कर्त्तव्यका अच्छी तरह पालन भी कर सकती है। इसके विपरीत जो स्त्रियां अपने रूप, गुण तथा पिताके धनसे गर्विता होकर पतिके प्रति ताच्छिल्यता प्रकाश करती हैं, वे असती और पिशाची हैं। ऐसी स्त्रियोंको नरकमें भी स्थान नहीं मिलता।

पतिकी मङ्गलकामना स्त्रीके जीवनका अन्यतम उद्देश्य है। वह सवदा पतिके आरामकी चिन्तामें निमग्न रहती है। पतिके मङ्गलार्थ वह असाध्यसे असाध्य कामोंको भी बड़ी आसानीसे कर डालती है। इसके लिये वह आत्मसुख तो क्या आत्म-विसर्जन तक कर देनेमें किञ्चिद् पश्चात्पद नहीं होती। सती संसारकी समस्त यातनायें अम्लानवदनसे सह सकती है, परन्तु पति-निन्दा नहीं सह सकती। सतीके लिये पति वियोगसे

अभिमान ही अप्रणय और अनर्थकी जड़ है। हमारे समाजमें कुछ ऐसी स्त्रियां हैं जिन्हें जरा जरा सी बात पर अभिमान हो जाया करता है। वे बात बातमें अपनेको अपमानित समझ अधीर होती रहती हैं। वे चाहती हैं, कि उनका पति उनके हाथकी कठपुतली बना रहे। ऐसी बुद्धिहीना स्त्रियोंमें आन्तरिक प्रेम पहचाननेकी बुद्धि नहीं होती, इसलिये मौखिक प्रेम दिखानेसे वे बहुत खुश रहती हैं। सामान्य कारण उपस्थित होते ही वे वहीं आंसू बहा देती हैं। शायद समझती हैं, कि इस तरह बात बात पर रूठनेसे लोग उनका खूब आदर करेंगे। परन्तु फल *इसके विपरीत* होता है। क्योंकि जब लोगोंको मालूम हो जाता है, कि बात बातमें रूठने और अभिमान करनेकी इसको आदत है, तब वे आदरके बदले उससे घृणा करने लग जाते हैं। ऐसी स्त्रियां अपने स्वामीका सर्वस्व निगल जाती हैं। अपने पतिके धन, मान मर्य्यादा और विद्या-बुद्धिको अपने ही हाथमें कर लेना चाहती हैं, मानों पतिपर उनके सिवा और किसीका कुछ अधिकार ही नहीं।

अभिमान करना तथा रूठनेसे बढ़कर प्रेमका शत्रु और कोई नहीं। क्योंकि अविश्वास अभिमानका प्रधान सहचर है। अतः अभिमान करना ही मानो किसी पर अविश्वास कर लेना है। इस बातका उदाहरण हमारे समाजमें बहुत मिलेगा। कितनी ही स्त्रियां अपने पतिपर व्यर्थ अविश्वास कर,

ऐसी रुठ जाती है, कि मनाये नहीं मानती। फल यह होता है, कि पतिको भी उनकी परवाह नहीं रहती। ऐसी स्त्रियां अपनी मूर्खताके कारण अपने ही हाथोंसे अपने पैरमें कुल्हाड़ी मार लेती हैं। ऐसी तरलमति स्त्रियोंके हृदयोंमें प्रेमको गभीरता नहीं ठहर सकती। क्योंकि सच्चा प्रेम दिखाऊ नहीं होता वरन् उसकी गभीरता इतनी अधिक होती है, कि प्रकट उसका कोई चिन्ह दिखाई ही नहीं देता। गभीर प्रणय दोनों प्रेमियोंके हृदयोंमें अन्तःसलिला नदीकी भांति गुप्त भावसे प्रवाहित होता है। बार बार रुठनेवाली अभिमानिनी स्त्रियां पतिके सच्चे प्रेम और श्रद्धाकी पात्री कदापि नहीं बन सकतीं। वास्तवमें ऐसी स्त्रियोंके दोषसे ही आजकल कुछ लोग स्त्रियोंको विलासकी वस्तु समझने लगे हैं। स्त्री जातिके उचित सम्मानको भी ऐसे ही स्वभाववाली रमणियोंने खो दिया है। इसलिये तरलमति बनकर प्रणयकी गभीरताको कदापि नहीं भूलना चाहिये। अपने मनमें ऐसी कल्पना भूलकर भी नहीं करनी चाहिये, कि पतिपर जो कुछ अधिकार है, वह स्त्री होका है और किसीसे उसका कोई वास्ता नहीं। ऐसा स्वार्थसे भरा हुआ भाव पवित्र प्रणयका शत्रु है; उसकी जड़को काट डालता है।

सतित्वसे बढ़कर प्रिय सामग्री स्त्रियोंके लिये दूसरी नहीं। सतित्व ही उनके गौरवको बढ़ाकर उन्हें इहलोकमें यश-ख्याति तथा परलोकमें शान्ति-सुख प्रदान करता है। जिस तरह

अगणित तारोंके रहते हुए भी चन्द्रमाके बिना आकाशका अन्धकार दूर नहीं होता, उसी तरह रूप, यौवन तथा अन्यान्य सद्गुणोंके रहते हुए भी सतित्व-विहीना स्त्री शोभा नहीं पाती। सतित्व-गुणयुक्ता चाण्डालकी कन्या अमरी देवांगनाकी अपेक्षा श्रेष्ठा, पूज्या और श्रद्धाकी पात्री है। स्त्रियोंके लिये सबसे बढ़कर प्रधान शिक्षा सतित्व ही है। यही उनके समस्त धर्मों का सार-धर्म-स्वरूप है। जिस स्त्रीका हृदय सतित्वके विमल प्रकाशसे उद्भासित नहीं, उसका कोई धर्म भी नहीं। क्योंकि सतित्व ही स्त्रियोंके धर्मका प्रधान बन्धन-स्वरूप है। जिस नारी-हृदयमें सतित्वको सर्व्वोच्च स्थान नहीं प्राप्त होता उसमें धर्म भूलकर भी नहीं ठहरता। ऐसे महान् गौरव-युक्त सतित्व-धर्मको रक्षा करना स्त्री-मात्रका प्रधान कर्त्तव्य है।

मनमें क्षणभरके लिये भी कोई कुचिन्ता उपस्थित हो जानेपर सतित्वकी मर्य्यादा नष्ट हो जाती है। इसलिये वास्तविक सती भूलकर भी कभी किसी ऐसी चिन्ताको मनमें स्थान देना नहीं चाहती, जिससे उसके पवित्र सतित्वको धक्का लग सकता हो। वह अहर्निश पति-सेवामें निमग्न रहती है। पतिका प्रफुल्ल आनन देख उसके आनन्दकी सीमा नहीं रहती। वह अपने प्रियतम पतिके किसी कार्य्यमें दोष नहीं देखती और न कभी उससे असन्तुष्ट ही होती है। सती अपने मूर्ख पतिको महापण्डित समझ उसके प्रति श्रद्धा

प्रकाश करती है। मद्दाकुसित होनेपर भी पतिसे बढ़कर सुन्दर उसे कोई नहीं प्रतीत होता। पतिके साथ वनमें रह कर भी वह स्वर्गीय सुखका अनुभव करती है। हजार कष्ट होनेपर भी पतिके साथ रह वह परमानन्द प्राप्त करती है। कविवर रहीम कह गये है :—

"टूट टाट घर टपकट खटियौ टूट,
पियकी बांह उसिसवां सुखकै लूट।"

इस प्रकार पतिको अपना सर्वस्व समझ, उसके सुख-सम्पद मान-मर्यादाको अपना सुख-सम्पद मान-मर्यादा जानती हुई जो रमणी तन्मय होकर पति-भक्ति करती है, वही वास्तविक सती है और वही पतिके प्रति अपने कर्त्तव्यका अच्छी तरह पालन भी कर सकती है। इसके विपरीत जो स्त्रियां अपने रूप, गुण तथा पिताके धनसे गर्विता होकर पतिके प्रति ताच्छिल्यता प्रकाश करती है, वे असती और पिशाची है। ऐसी स्त्रियोंको नरकमें भी स्थान नहीं मिलता।

पतिकी मङ्गलकामना स्त्रीके जीवनका अन्यतम उद्देश्य है। वह सर्वदा पतिके आरामकी चिन्तामें निमग्न रहती है। पतिके मङ्गलार्थ वह असाध्यसे असाध्य कामोंको भी बड़ी आसानीसे कर डालती है। इसके लिये वह आत्मसुख तो क्या आत्म-विसर्ज्जन तक कर देनेमें किञ्चिद् पश्चात्पद नहीं होती। सती संसारकी समस्त यातनायें अम्लानवदनसे सह सकती है, परन्तु पति-निन्दा नहीं सह सकती। सतीके लिये पति वियोगसे

बढ़कर दूसरा कष्ट नहीं। इसलिये मनवचकर्मसे परछाईं की भांति वह पतिका अनुगमन करती है।

पतिके घोर अन्याय करनेपर भी साध्वी स्त्री उससे असन्तुष्ट नहीं होती। प्रजावत्सल राजा रामचन्द्रने प्रजाके मनोरञ्जनार्थ बिना अपराध गर्भवती सीताको वनमें भेज दिया था। बड़े भाईके आज्ञानुसार लक्ष्मण सीताको घोर वनमें छोड़ने चले। जनमानवहीन घोर अरण्यमें निराश्रया गर्भवती अबला सीताको छोड़कर लक्ष्मण वहांसे अयोध्याको लौटने लगे। भय, दुःख और अभिमानसे राजेश्वरी सीताका हृदय भर आया। वह जानती थीं कि रामचन्द्रने बिना अपराध ही उन्हें परित्याग किया है, परन्तु इसके लिये उन्होंने अपने पतिके प्रति एक भी कठोर शब्द नहीं व्यवहार किया। प्रत्युत अपने भाग्यको दूषती हुई बोलीं :—"वत्स लक्ष्मण! पतिदेवने मुझे निरपराध परित्याग किया है, परन्तु इसके लिये मैं उनपर तनिक भी असन्तुष्ट नहीं हूं। मैं अपने अदृष्टका फल भोगनेके लिये सर्वथा प्रस्तुत हूं। तुम मेरी ओरसे रघुराजसे निवेदन कर देना, कि यद्यपि आपने बिना अपराध सीताको निर्व्वासित कर दिया है, परन्तु वह अभागिनी आपके चरणोंकी सेवाके सिवा और कुछ नहीं जानती। वह जबतक जीती रहेगी तबतक आपके चरणोंका ध्यान करती रहेगी।" सीतादेवी परम पतिव्रता थीं, इसी वजहसे इतने पर भी उनके पतिप्रेममें न्यूनता न आने पायी।

राजा हरिश्चन्द्रकी राजमहिषी भगवती शैव्या पतिके साथ वनोंमें घूमती रहीं तथा पतिको ऋणमुक्त करनेके लिये अपने कुल गहने उतार देनेके सिवा अपने शरीर तकको भी बेच डाला। जो स्त्री पतिकी दुरावस्थाके समय शैव्यादेवीका अनुकरण करती है वही सच्ची साध्वी है।

यवन-सम्राटोंके कराल हाथोंसे अपने अमूल्य सतीत्व रत्नको बचानेके लिये मेवाडको राजपूत-ललनाओंने अपनी देहको भस्म कर डाला परन्तु सतीत्वमें धब्बा न लगने दिया।

वास्तवमें सतीत्वका गौरव दैवशक्तिके गौरवसे भी बढ़कर है। इसलिये वही स्त्रियोंका जीवन-सर्वस्व तथा आदरको प्रधान वस्तु है। विशेषतः भारतीय ललनाओंके लिये तो सतीत्वसे बढ़कर कोई वस्तु हो नहीं। सतीत्व एक ऐसा अच्छा और महान् गुण है, कि जिसको बदौलत हमारे देशकी स्त्रियोंने संसारके सभी समाजोंको स्त्रियोंसे बढ़कर सुख्याति और गौरव प्राप्त किया है। सतीत्व अपार्थिव है, इसोलिये जगत्में इसकी पूजा होती है। पुराने जमानेमें भारतवर्षमें पतिव्रत धर्मका जैसा आदर और मान था, वैसा और कहीं न था। ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें लिखा है :—"पृथिवीपर जितने तीर्थ हैं, वे सभी पतिव्रताओंके चरणोंमें मौजूद रहते हैं। सब देवताओंका तेज, ऋषियोंका तप-बल, योगियोंका योग बल तथा सर्वस्व दान कर देनेवाले दाताओंके दानका फल सती स्त्रीमें विराजते हैं। पतिव्रता स्त्रीके पुण्यफलसे उसका पति भी सब

पापोंसे छूट जाता है। स्वयम् नारायण, ब्रह्मा तथा महेश आदि देवतागण पतिव्रता स्त्रीसे डरते हैं। सतीके चरणोंकी धूलिसे पृथिवी पवित्र होती है। पतिव्रताको प्रणामकर मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है।" *

पार्वती, सावित्री, और दमयन्तीकी जीवन कथाओंसे साफ समझमें आ जाता है, कि सतीत्वमें दैवशक्ति विराजती है। क्योंकि सतीके अपमानके कारण ही दक्षका यज्ञ विध्वंश हुआ था और उनको कष्ट उठाना पड़ा था। सावित्रीके सतीत्वके आगे यमराजको दैवी शक्तिकी हार माननी पड़ी तथा उसके मृत पति सत्यवानको जिन्दा देना पड़ा था।

परन्तु संसारमें जो सबसे महान् और श्रेष्ठ वस्तु होती है वह उतनी ही विपदाकीर्ण और दुर्लभ भी होती है। इसलिये सतीत्व रूप धनकी रक्षा बड़ी सावधानी और सतर्कताके साथ होनी चाहिये।

* पति पतिव्रतानाञ्च मुच्यते सर्व्वपातकात।
पृथिव्या यानि तीर्थानि सतीपादेषु तान्यपि॥
तेजश्च सर्व्वदेवानां मुनिनाञ्च सतीषु च।
दाने फलं यज्ञानाञ्च तत् सर्व्वं तासु सन्ततं॥
स्वयं नारायणः शम्भुर्व्विधाता जगतामपि।
सुराः सर्व्वे सुसनय भीतास्ताभ्यश्च सन्ततं॥
सतीनां पादरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा।
पतिव्रतां नमस्कृत्य मुच्यते पातकान्नरः॥ —ब्रह्मवैवर्त्तपुराण।

मनुष्यजीवनमें—विशेषत: स्त्रियोंके लिये यौवनावस्थाकी भांति खराब अवस्था दूसरी नहीं। अत: सदैव सतर्क और छिन भावसे इस अवस्थाको बिताना चाहिये। पापचिन्ता या सम्कलुषित कल्पनाको चण भरके लिये भी मनमें स्थान देना उचित नहीं। बड़ी बड़ी लहरों वाले सुविशाल समुद्रमें एक छोटी सी नाव ले जानेके समय जैसी सावधानी और सतर्कताकी आवश्यकता होती है वैसे ही सावधानी और सतर्कता पूर्वक इस जीवन तरीको भी खेनेकी आवश्यकता है। कहीं ऐसा न हो, कि किसी उत्तालतरङ्गसे टकराकर अथवा किसी भयङ्कर भँवरमें पड़ यह छोटी सी नाव डूब जाय। बिना स्थान देखे आगे पैर बढ़ानेसे इस लोभमय संसारमें अपने धर्मका बचाव करना बड़ा मुश्किल है। इसीलिये हमारे प्राचीन ऋषि मुनियोंने स्त्रियोंको कितने ही कठोर नियमोंको पालन करनेकी आज्ञा दी है। शास्त्रोंमें लिखा है :—"पतिके विदेश चले जानेपर क्रीड़ा करना, विवाह आदि उत्सवोंमें सम्मिलित होना, घरसे बाहर निकलना शृङ्गार करना, चमकीले वस्त्राभूषण धारण करना तथा हँसी ठट्ठा करना पत्नीके लिये मना है।" * मनुजीके मतानुसार भी हँसी दिल्लगीके बहाने पर पुरुषका अङ्ग स्पर्श करना, एकान्तमें अथवा एक ही आसन पर देरतक परपुरुषके साथ बैठना तथा परपुरुषकी

* क्रीड़ा शरीर संस्कार समाजोत्सव दर्शनं।
हास्य परगृहे यानं त्यजेत् प्रोषितभर्त्तृका॥—याज्ञवल्क्य-संहिता।

शारीरिक सेवा करना भी व्यभिचार है।" मनुजीने और एक जगह कहा है:—"नहानेके बाद सबसे पहले केवल अपने पतिका ही मुख देखना चाहिये। यदि पति घर न हो तो मन ही मन उसकी चिन्ता अथवा ध्यान करना चाहिये। रजकी, हेतुकी वा आत्मत्यागिनी स्त्रियोंसे साध्वी स्त्रियोंको मित्रता नहीं करनी चाहिये। जो स्त्री स्वामीका द्वेष करती है उसका मुँह देखना भी पाप है।"

खराब पुस्तकें पढ़ना, खराब लोगोंके साथ उठना-बैठना और खराब बातोंकी चर्चा करनेसे मनमें पाप-बुद्धिका सञ्चार होता है। इसलिये इन बातोंसे सदा दूर रहना ही उचित है। आजकल नाटक उपन्यास पढ़नेका शौक बहुत सी स्त्रियोंमें देखा जाता है। हिन्दी भाषामें बहुतसे उपन्यास निरर्थक तथा कुत्सित भावोंसे भरे हैं। अधिकांश युवतियां ऐसे ही गन्दे उपन्यासोंको पढ़ना पसन्द करती हैं। इससे अनन्य भावसे उनका पवित्र चरित्र कलुषित हो जाता है। इसलिये प्रत्येक स्त्रीको ऐसे गन्दे उपन्यासोंसे बचना चाहिये और जहांतक हो सके ऐसी पुस्तकें पढ़नी चाहियें, जिनसे मनोरञ्जनके साथ साथ कुछ सद्‌विद्या भी प्राप्त हो।

. विवाह आदि उत्सवोंके समय गाली गाने तथा वरके साथ हास परिहास करनेका रिवाज हमारे देशमें बहुत दिनोंसे प्रचलित है किन्तु आजकल कहीं कहीं इस रिवाजने भयानक कुत्सित रूप धारण कर लिया है। कुलवती स्त्रियां

ऐसी भद्दी गालियां गाती है जिन्हें सुनकर घृणा और लज्जासे सिर नीचा कर लेना पड़ता है। कोहबरमें वरके साथ कहीं कहीं बड़ी ही अनुचित हँसी-दिल्लगी की जाती है। यद्यपि सभ्योचित हास्य परिहास करनेमें कोई दोष नहीं, परन्तु उसे कुत्सित बनाना स्त्री-जीवनके लिये बड़ा ही हानिकर है। जो स्त्रियां ऐसी भद्दी हँसी-दिल्लगीकी पक्षपातिनी हैं, वे अपनेको सचरित्रा कहनेका साहस नहीं कर सकतीं।

मनुजीने सतीत्वके बाधक छः दोषोंका उल्लेख किया है। जैसे :—"(१) पानदोष, (२) कुसङ्ग, (३) पतिविरह (४) अकारण घूमना, (५) असमय सोना और (६) दूसरेके घर रहना। सतीत्वको मर्यादा रक्षा करनेवाली स्त्रियोंको सदैव भगवान् मनुके इस आदेशका पालन करना चाहिये।

पाठिके! यदि सती-लक्ष्मी बननेकी इच्छा है, अपने कुलको कलङ्कसे बचाकर सच्ची कुलवती नारी बननेकी अभिलाषा है और सीता-सावित्रीकी भांति सुयश प्राप्त करना चाहती हो तो कुत्सित आमोद-प्रमोदमें कदापि न सम्मिलित होना। शास्त्रकारोंने स्त्रियोंको अबला कहा है, पुरुषके आश्रय बिना उनका रहना बड़ा ही मुश्किल है; सुतरां आत्म-रक्षा करते हुए चलनेमें स्त्रियोंको कितनी सतर्कता और सावधानीकी आवश्यकता है, इसे चतुर पाठिकायें स्वयं समझ सकती हैं।

किसी दूसरेको अपने वशमें करनेका सबसे सहज और उत्तम उपाय मधुर भाषण है, क्योंकि मीठी बातोंसे जगत्

सन्तुष्ट रहता है। दुःखकी बात है, कि आजकलकी बहुत सी युवतियां मृदुभाषिणी नहीं होतीं। कोई बात पूछनेपर वे बड़े ही कर्कश स्वरसे उत्तर प्रदान करती हैं। निस्सन्देह यह आदत बड़ी ही अनुचित है। जिस स्त्रीमें यह आदत होती है, उससे कोई प्रसन्न नहीं रहता। एक विचारशीला स्त्रीने कहा था:—"जो स्त्री मीठी बातोंसे अपने पतिको सन्तुष्ट नहीं कर सकती है, वह परम अभागिनी है।" महाभारतमें लिखा है, कि जो स्त्री अपने पतिके पुकारनेपर कर्कश उत्तर देती है वा खफा हो जाती है, वह मरनेपर यदि गांवमें जन्म पाये तो कुतिया और बनमें जन्म पाये तो स्यारन होती है।" महानिर्वाण तन्त्रमें लिखा है:—"पतिपर क्रूर दृष्टि डालना, पतिको दुर्वाक्य बोलना, तथा मनमें भी किसी प्रकारका अनुचित आचरण करना दोषावह है।

दिन भरके परिश्रमके पश्चात् घर लौटने पर जिस गृहस्थको अपनी प्रियतमा भार्य्याका सुन्दर मुख देखनेका अवसर नहीं मिलता और उसकी मधुरवाणी सुनकर सुखानुभव करनेका सौभाग्य नहीं प्राप्त होता उससे बढ़कर मन्दभागी संसारमें दूसरा नहीं। इसीलिये पण्डितोंने कहा है, कि जिसके घरमें प्रियवादिनी भार्या न हो उसे घर छोड़कर बनमें चल देना चाहिये, क्योंकि उसके लिये घर और बन दोनों ही बराबर हैं। अतः पत्नीको चाहिये कि वह सदा मीठी मीठी बातें सुनाकर अपने पतिके समस्त क्लेशोंको दूर कर देनेकी चेष्टा करे।

उपाय ही गुणोंको कार्य्यमें परिणत कराता है। शास्त्रोंमें लिखा है, कि गृहस्थाश्रम सुखके लिये बना है और गृहिणी ही उस सुखकी जड है। सुतरां पतिको सुखी रखना गृहिणीका प्रधान कर्त्तव्य है। बहुत सी स्त्रियां पतिको सन्तुष्ट रखनेका उपाय नहीं जानतीं, इसलिये इच्छा रहते भी वे अपने पतियोंको खुश नहीं रख सकतीं। प्रत्येक इच्छाको कार्य्यमें परिणत करनेके लिये कौशलकी आवश्यकता होती है। पतिको प्रसन्न रखनेका कौशल न जाननेके कारण जो गृहिणियां अपने पतियोंको खुश नहीं रख सकतीं, उनका घर कष्ट और अशान्तिका आश्रयस्थल बन जाता है तथा उनके पति भी स्वेच्छाचारी और चरित्रहीन हो जाते हैं। घरमें इच्छा और आशाके अनुरूप सुख न पानेके कारण ही वे इधर उधर मारे मारे फिरते और पापजालमें फँस अपनी जिन्दगी बिगाड डालते हैं। ऐसे पुरुषोंकी स्त्रियां रूप तथा गुणमें श्रेष्ठा होनेपर भी अपने पतियोंको खुश नहीं कर सकतीं। केवल विद्या और बुद्धि होनेसे ही मनुष्य संसारमें सुखी और सौभाग्यशाली नहीं हो सकता। सुखी वही होता है, जो अपने सद्गुणोंका प्रयोग करना जानता है। इसलिये कौशल पूर्व्वक पतिकी रुचिके अनुरूप आचरणकर जो स्त्री उसे प्रसन्न कर सकती है, वह शीघ्र ही पतिके हृदयकी अधिकारिणी बन जाती हैं।

एक अँगरेजने लिखा है :—"केवल गुण रहनेसे ही उसका फल नहीं प्राप्त होता, वरन् उसे कार्य्यमें परिणत करनेकी

तदबीर जाननी चाहिये। कौशल मनको स्थिरकर काममें शीघ्रता करने तथा निपुणता प्राप्त करनेकी शिक्षा देता है। जिन्दगीके काम जितने कौशलसे होते हैं, उतने गुणसे नहीं होते।" इसलिये सब विषयोंमें कौशली होनेकी बड़ी आवश्यकता है। किस विषयमें, किस समय किस कौशलसे काम लिया जाय, यह कोई किसीको बता नहीं सकता; कौशली आदमी स्वयं समयानुकूल तदबीरें ढूंढ लेता है।"

एक और पण्डितने गुण और कौशलकी परस्पर तुलना करते हुए लिखा है:—"गुण एक प्रकारकी शक्ति है और कौशल निपुणता है। गुणी यह जानता है, कि अमुक काम करना उत्तम है और कौशली यह जानता है, वह काम किस तरह होगा। गुण मनुष्यको सम्मान लाभ करनेके योग्य बनाता है, किन्तु कौशल उस सम्मानको प्राप्त करा देता है। गुणी कभी कभी सुअवसरोंकी परवाह न कर उसकी अवहेला कर देता है, परन्तु कौशली अवसरको हाथसे जाने नहीं देता।

अब विचारना यह है, कि वह कौनसा कौशल है, जिसके द्वारा स्त्री अपने पतिको अपने वशमें कर सकती है। शास्त्रोंमें लिखा है:—"जो स्त्री अपने पतिके सो जानेपर सोती है, पतिके जागनेसे पहले ही जागती है, पतिके चुप हो जानेपर बोलती है, पतिके उठनेके समय उठकर खड़ी हो जाती है और मन-बच-कर्मसे सदा अपने प्राणपतिकी आज्ञाका पालन करती है, उसकी पूजा देवता लोग भी करते हैं। 'यही मेरे माता पिता

परम बन्धु और देवता हैं,' इसी भावसे जो स्त्री अपने पतिको सेवा करती है, वह मृत्युको भी जीत लेती है। पतिको वशीभूत करनेका यही सर्व्वोत्तम उपाय है।"*

पतिके सुख और सन्तोषके लिये क्या करना चाहिये? यद्यपि इस प्रश्नका समयोचित मीमांसा चतुरा पाठिकायें स्वयं कर लेंगी, तथापि दो चार साधारण बातोंका उल्लेख नीचे किया जाता है। घरमें दास-दासियोंके रहते हुए भी पतिकी चीजोंकी रक्षा करना, आवश्यकतानुसार उन्हें स्वयम् पतिको देना तथा लेकर रखना और पतिकी प्रतिदिनकी आवश्यकीय चीजोंको पहलेसे ही ठीक रखना चाहिये, जिसमें समयपर उन चीजोंके लिये पतिको कष्ट न हो। यह बार बार बताया जा चुका है, कि पतिके लिये भोजन अपने हाथसे बनाना तथा परोसना चाहिये। अवस्थाके अनुसार यदि अपने हाथसे भोजन बनाने तथा परोसनेका मौका न हो तो कमसे कम पतिके भोजन करनेके समय वहां उपस्थित अवश्य ही रहना चाहिये।

---

* प्रसुप्ते या प्रस्वपिति विबुद्धे जाग्रति स्वयं।
भुङ्क्ते तु भोजिते विप्र सा मृत्युं जयति ध्रुवं॥
मौने मौनवती भवेत् स्थिते तिष्ठति या स्वयं।
एकदृष्टिरेकमना भर्त्तुर्वचन कारिणी॥
देवानामपि सा साध्वी पूज्या परमशोभना।
एष माता पिता बन्धुरेष मे देवतं परं॥
एवं शुश्रूषते या तु सा भो विजयते सदा।" —ब्रह्मवैवर्त्त पुराण।

परन्तु सास-ननदके रहते हुए इसके लिये हठ करना भी उचित नहीं।

पतिके सोनेके कमरेकी सफाई और सजावटका भार दूसरेको सौंपना अच्छा नहीं। अतः यह कार्य्य स्वयं करना चाहिये और उस कमरेमें कोई ऐसी वस्तु न रखनी चाहिये जो पतिके लिये विरक्तिकर हो।

गृहस्थी सम्बंधीय किसी वस्तुके घट जानेपर मौका देखकर पतिको जना देना चाहिये। बेमौके कोई बात नहीं करनी चाहिये।

यदि पति किसी कारणसे नाराज होकर, न्याय वा अन्यायसे, कुछ तिरस्कार करें तो उसे उस समय चुपचाप सह लेना ही उचित है। क्योंकि क्रोधके समय क्रोध करना अथवा उचित अनुचित समझाना व्यर्थ है; उस समय उसका कोई फल नहीं होता। इसलिये जब पतिका क्रोध शान्त हो जाये, तब अति विनीत भावसे बता देना चाहिये, कि आपने अमुक काम अनुचित किया था अथवा जिस कामको अनुचित समझकर आप मुझपर नाराज थे, वह वास्तवमें अनुचित नहीं था। पतिके सामने उद्दता दिखाना उचित नहीं। लज्जा-शीलता और नम्रता स्त्रियोंमें ईश्वरके दिये हुए गुण हैं; जो स्त्री इन गुणोंसे काम नहीं लेती उसे भविष्यमें बहुत पश्चात्ताप करना पड़ता है।

कुछ स्त्रियोंको बात बातमें चिढ़ने और बकबक करनेका

रोग सा होता है; वे अकारण ही बका-झका करती हैं। यह वाहियात आदत सोनेकी गृहस्थीको मट्टीमें मिला देती है। जिस पुरुषको ऐसी बकबक करनेवाली स्त्री मिलती है; उसका जीवन कदापि शान्तिसे नहीं बीतता और ऐसी स्त्री भी सदा दुःखी ही रहती है। इसलिये जहांतक हो सके अपनी जबानको अपने काबूमें रखनी चाहिये और चुपचाप, धीरता पूर्वक, सदा इस बातकी चेष्टा करनी चाहिये, जिसमें किसी प्रकारकी अशान्ति न पैदा होने पाये।

अवसरके अनुसार रहस्यालाप कर पतिको सन्तुष्ट रखना उचित और आवश्यक है। परन्तु यदि पति किसी गुरुतर विषयको चिन्तामें लगे हों, तो उस समय कोई हँसी-दिल्लगीकी बात नहीं करनी चाहिये। क्योंकि बेमौके हंसी-दिल्लगी करनेवाली पत्नीसे चिन्ताशील मनुष्य सदा दूर रहनेकी चेष्टा किया करता है।

सफाईसे रहना बहुत जरूरी है। परन्तु अपने ही शृङ्गार-पटारमें नहीं लगी रहना चाहिये वरन् घरकी कुल चीजों और बच्चोंके कपड़े लत्तेकी सफाई पर भी ध्यान देना चाहिये। परन्तु यह याद रहे, कि केवल बाहरी सफाई किसी कामकी नहीं होती। इसलिये हृदयको साफ रखना चाहिये। जिस तरह सेमरका फूल किसी काममें नहीं आता, उसी तरह बाहरी सफाईको भी कोई नहीं पूछता। एक पण्डितने कहा है:—"चित्तकी प्रसन्नतासे बढ़कर धर्म्म दूसरा नहीं। जो प्रसन्न

रहना जानता है, वही भाग्यवान है। ऐसा मनुष्य अनायास ही लोगोंको सुखी कर सकता है। प्रसन्नचित्त मनुष्यके पास बैठकर दुःखी मनुष्य अपने दुखोंको भूल जाता है। उसकी मधुर हंसी अन्धेरेमें रोशनीका काम कर जाती है।"

पतिको सुखी और सन्तुष्ट रखनेके विषयमें श्रीमती प्रसन्न तारा गुप्ता नामकी एक बंगालिन पण्डिताने बड़ा ही सुन्दर उपदेश दिया है, उसका कुछ अंश नीचे लिखा जाता है :—
"अपने पतिसे प्रेमका करना स्त्रियोंके लिये एक स्वाभाविक बात है। जिसे सब प्रकारकी आशाओं और सुखोंकी जड़ समझती हैं, उसके प्रति प्रेम होही जाता है। जिससे प्रेम होता है, उसके प्रिय कार्य्योंको करनेकी इच्छा भी मनमें अपने आप ही उत्पन्न होती है। जो स्त्री अपने पतिको हृदयसे प्यार करती है, उसको इस विषयमें युक्तितर्क द्वारा समझानेकी कोई आवश्यकता नहीं। जिस तरह पतिको प्यार करना स्त्रीका धर्म्म है, उसी तरह उनके शरीर और मनके स्वास्थ्यकी रक्षाकी ओर भी ध्यान देना अत्यावश्यक है। अच्छी पुष्टिकर चीजें खानेसे जिस तरह शरीरका स्वास्थ्य अच्छा रहता है, उसी तरह मनकी सुखशान्ति बढ़ानेके लिये मीठी बातोंकी जरूरत होती है। पतिके शरीर और मनकी रक्षाका भार स्त्री ही पर निर्भर रहता है। यही स्त्रियोंका सर्व्व प्रथम कर्त्तव्य है। बीमारीमें सेवा, शोकके समय धीरज, जैसा स्त्री दे सकती है वैसा और किसीसे नहीं बन पड़ता। पतिके खाने

तथा व्यवहार करनेकी चीजोंको रक्षा करना स्त्रीका प्रधान काम है। प्रतिदिन पतिके भोजनके लिये उचित प्रबन्ध करना चाहिये। यदि घरमें रसोइया हो तो भी पतिके लिये दो एक चीज अपने हाथसे बनाकर यत्नसे उन्हें भोजन कराना चाहिये। भोजनके समय मीठी चीजोंकी अपेक्षा मीठी बातोंसे अधिक लाभ होता है। इसलिये भोजनके समय पतिको मीठी बातें सुनाकर उनका मनोरञ्जन करना चाहिये। इससे पति-पत्नी दोनोंको प्रसन्नता और शान्ति प्राप्त होती है। सांसारिक कामसे थककर पतिके घर आनेपर प्रसन्नता पूर्वक बातचीत कर उनकी थकावट दूर करनी चाहिये। उस समय घरके अभावोंका जिक्र नहीं करना चाहिये। पति स्त्रीके सुख-दुःखका साथी है, उसको अपने मनके दुःखोंको जना देना स्वाभाविक बात है, परन्तु चतुरा स्त्रियां उसके लिये भी उचित समय ढूंढ़ लेती हैं, असमय कोई दुःखकी बात सुनाकर पतिको दुःखी नहीं किया करतीं। पतिके सोनेके कमरेकी चीजोंको अच्छी तरह सजा रखना तथा कमरेको सदा साफ रखना चाहिये। जहांतक हो, यह काम स्वयं करना चाहिये। यदि दासी ही द्वारा कराना अभिष्ट हो तो भी वहां मौजूद रहकर अपने सामने ठीक करा लेना चाहिये।"

महाभारतमें लिखा है, कि एकबार श्रीकृष्णजीकी धर्म-पत्नी सत्यभामाने द्रौपदीसे पूछा :—"हे द्रौपदी! लोक-पालोंकी तरह वीर्य्यवान पाण्डवोंको तुमने कैसे अपने वशमें

कर लिया है? क्यों वे तुम्हारे वशीभूत हैं और कभी तुम्हारे ऊपर नाराज नहीं होते! कृपाकर ठीक ठीक बताओ, कि किस तपस्या, व्रत, औषध अथवा मन्त्रसे उनसे तुमने उन्हें अपने वशमें कर लिया है? हे कृष्णे! वही तदबीर मुझे भी बताओ, जिससे मैं अपने प्राणप्यारे कृष्णचन्द्रको अपने वशमें कर सकूं। वह सौभाग्यप्रद उपाय मुझे शीघ्र बताओ।"

द्रौपदीने कहा,—"सखी सत्यभामा! दुःख है, कि तुम अनाड़ी-असाध्वी स्त्रियोंके आचरणकी बातें पूछ रही हो। असाध्वी स्त्रियां पतिको वश करनेके लिये जिस पथका अवलम्बन करती हैं, उसके विषयमें उत्तर देना मैं उचित नहीं समझती। तुम कृष्णचन्द्रकी प्यारी पत्नी हो। तुम्हें ऐसा प्रश्न कदापि नहीं करना चाहता था। यदि पति जान जाय कि उसकी पत्नी उसे अपने वश करनेके लिये यन्त्र-मन्त्र अथवा जादू-टोनासे काम लेना चाहती है, तो वह उसे कालोसर्पिणीकी भांति परित्याग कर देना ही उचित समझेगा। पत्नीके ऐसे आचरणोंको खबर पाकर पतिका चित्त उद्विग्न हो जाता है। ऐसे उद्विग्न-चित्त मनुष्योंको सुख नहीं प्राप्त होता। इसपर कभी न विश्वास करना चाहिये, कि यन्त्र-मन्त्रसे पति वशीभूत हो जाते हैं। पतिको वश करनेकी इच्छासे कुछ स्त्रियां नाना प्रकारकी ओषधियां खिलाकर उन्हें रोगी बना डालती हैं। ऐसे भयङ्कर उपायों द्वारा पतिको अपने वशमें करनेकी चेष्टा करनेवाली स्त्रियां यह नहीं विचारतीं, कि

पतिका अनिष्ट करना महापाप है। हे यशस्विनी सत्यभामे! महात्मा पाण्डवोंके प्रति मैं जैसा व्यवहार करती हूं, उसे जी लगाकर सुनो। मैं अहंकार और क्रोधको छोड़कर बड़ी नम्रता और सावधानीसे दिन रात पाण्डवोंकी सेवा किया करती हूं। ईर्षाको त्याग, आत्माको मनसे मिला और घमण्डसे रहित हो अपने पतियोंकी सेवामें लगी रहकर उन्हें प्रसन्न रखती हूं।

मैं अपने पतियोंसे बढ़कर किसी देवता, गन्धर्व, सुन्दर, धनवान और गुणवान पुरुषको कोई चीज नहीं समझती। जबतक पति नहाकर भोजन नहीं कर लेते तबतक मैं भी भोजन नहीं करती। यहांतक, कि नौकरोंको खिलाये बिना भी मैं नहीं खाती। पतिके बाहरसे आनेपर मैं तुरन्त उठकर उन्हें आसन और जल आदि प्रदान करती हूं। घरकी चीजों तथा अन्नादिकी रक्षा बडो सावधानीसे किया करती हूं। हर घडी पतियोंके अनुकूल रहती हूं; कभी उनका विरुद्धाचरण नहीं करती। दुःशीला स्त्रियोंकी भांति कोई अनुचित आचरणकर पतियोंको दुःख पहुंचानेकी चेष्टा नहीं करती। किसी काममें आलस्य नहीं करती। मैं बेमौके कभी नहीं हँसती। घर छोड़कर कहीं दूसरी जगह नहीं जाती। नित्यकर्म अथवा घरके निकटवाले उद्यानमें टहलनेके लिये जाती भी हूं तो तुरन्त ही चली आती हूं। मैं भूलकर भी कभी कोई ऐसा काम नहीं करती जिससे

पतियोंको क्रोध हो। मगी सत्यभामा! मैं दिन रात पतियोंकी सेवामें लगी रहती हूं। मुझे पतिसे अलग रहनेकी इच्छा नहीं होती। कार्य्यवश पतिके परदेश चले जानेपर मैं शृङ्गार आदि छोड़ देती हूं और व्रताचरण कर दिन बिताती हूं। पति जिन जिन चीजोंको खाते पीते और व्यवहार करते हैं मैं उन्हें उस समय परित्याग कर देती हूं। पतिके आदेशानुसार गहने और कपड़े पहनकर उनके प्रिय-कार्य्योंमें लगी रहती हूं। इससे पहले हमारे ससुरजीने गृहस्थोंके सम्बन्धमें मुझे जो उपदेश दिया था, उसे तथा भिक्षा, बलि, श्राद्ध, व्रत, और, माननीय लोगोंकी सेवा-समादर आदि जितने कर्म्म स्त्रियोंके लिये निर्दिष्ट हैं, उन्हें मैं बहुत अच्छी तरह जानती हूं और दिनरात उन्हींके अनुसार कार्य्य करती हूं। अधिक क्या कहूं, मैं सदा, सब प्रकारसे सत्य, सच्चरित्रता, विनम्रता, पवित्रता और धर्म्मका आश्रय लेकर स्त्री-धर्म्मपालनमें लगी रहती हूं। मेरे ख्यालमें पतिका आश्रय लेकर जो धर्म्म किया जाता है, वही स्त्रियोंका धर्म्म है। पति ही स्त्रियोंके देवता, और पति ही गति हैं। पतिके सिवा स्त्रियोंकी दूसरी गति नहीं। इसलिये पतिका अप्रिय आचरण करना किसी स्त्रीको उचित नहीं। मैं अपने पतियोंको अतिक्रमकर अशन, भूषण और शयन कभी नहीं करती। मैं अपनी सास-ससुरकी कभी निन्दा नहीं करती। बड़े संयमसे रहती हूं। मेरी सावधानता, नियत-उद्यम-शीलता, पतिपरायणता और गुरु-

सेवा देख मेरे पति मुझसे बहुत प्रसन्न रहते हैं, इसीलिये वे मेरे वशमें हैं। वीरप्रसविनी, सत्यवादिनी, आर्य्या कुन्तीदेवीको मैं अपने हाथसे भोजन परोसती हूँ तथा बराबर उनकी सेवामें लगी रहती हूँ। मैं कभी उनकी निन्दा नहीं करती उनकी आज्ञा माननेके लिये सदा प्रस्तुत रहती हूँ।"

"कुछ दिनोंतक महाराज युधिष्ठिरके यहां प्रतिदिन आठ सहस्र ब्राह्मण सोनेके वर्त्तनोंमें भोजन करते थे और अट्ठासी सहस्र स्नातक ब्राह्मणोंको सेवाके लिये तीस तीस दासियां नियुक्त थीं। इसके सिवा प्रतिदिन दश सहस्र उर्द्धरेता यति -योंको सुसंस्कृत अन्न प्रदान किया जाता था। इस विराट भोजका समस्त आयोजन मेरे ही जिम्मे था। इसके सिवा चरवा हों, नौकरों तथा परिजनोंके कामोंको भी खबर मुझे रखनी पडती थी। यही नहीं, महाराज युधिष्ठिरकी कुल आमदनी और खर्चका हिसाब भी मुझे ही रखना पडता था। इसप्रकार गृहस्थीके सब कामोंका भार मुझपर छोडकर पाण्डव लोग दिनरात उपासनामें लगे रहते थे। मैं सब प्रकारके सुखोंको छोड दिनरात उन्हीं कामोंमें लगी रहती थी। मेरे पति तो आराधनामें लगे रहते थे और मैं अकेले ही उनके रत्नाकर तुल्य खजानेकी रक्षा किया करती थी। भूख प्यासको भूलकर मैं अपने पतियोंके कार्य्यमें ऐसी तन्मय हो गई थी, कि मुझे दिनरातके आने जानेकी भी खबर नहीं रहती थी। मैं सदा सबसे पहले जागती और सबसे पीछे सोती थी। सखी

सत्यभामा! यही मेरा वशीकरण मन्त्र है, भर्त्तारको वश करनेका यही उपाय मैं जानती हूं। अनाड़ी स्त्रियोंकी भांति पतिको वश करनेके लिये मैं कोई अनुचित आचरण नहीं करती।" द्रौपदीकी बातें सुनकर सत्यभामा लज्जा गई! उसने कहा :—"बहन, मुझे माफ करना। तुमसे ऐसा प्रश्न कर मैंने बड़ी भूल की।"

द्रौपदीने कहा,—"अब मैं तुम्हें एक ऐसी सरल युक्ति बताती हूं, जिससे तुम अनायास ही अपने पतिको अपनी सौतोंसे छीन अपने वशमें कर सकोगी। सत्यभामा! स्त्रीके लिये पतिसे बढ़कर और कोई देवता नहीं। क्योंकि पतिके प्रसादसे ही स्त्री सब प्रकारकी काम्य-वस्तुओंको प्राप्त कर सकती है। पतिकी ही कृपासे हमें सन्तान-सन्तति, विविध भोग-विलास, अच्छी शय्या, आसन, गहने, कपड़े तथा और भी नाना प्रकारकी चीजें मिलती हैं। अन्तमें पति हीकी कृपासे स्त्रियोंको स्वर्ग भी मिलता है। यह तो तुम जानती ही हो, कि संसारमें अनायास ही कोई सुख नहीं मिल जाता। इसलिये साध्वी स्त्रियां कष्ट सहकर इन सुखोंको लाभ करती हैं। तुम सच्चे हृदयसे, प्रेमपूर्वक तथा अच्छे वेषभूषा द्वारा अपने प्राणपति श्रीकृष्णचन्द्रको आराधना किया करो। सदा इस बातका ख्याल रखो, कि मैं उनकी प्रीति-भाजन हूं। सदा उनको अपनेसे संयुक्त समझा करो। द्वारपर पतिकी आवाज सुनते ही उठकर खड़ी हो जाया करो और उनके

भीतर आनेपर तुरन्त ही उनकी सेवामें लग जाया करो। यदि वह किसी कामके लिये दासीको बुलावें तो भी तुम उठ कर उस कामको कर दिया करो। उनके मनमें यह विश्वास दृढ़ कर देनेकी चेष्टा करो, कि तुम तन-मनसे उनपर न्योछावर हो गई हो। तुम्हारे पति तुमसे जो कुछ कहें—चाहे वह बात गुप्त न हो तो भी उसे कहीं प्रकाश न किया करो। क्योंकि तुम्हारी कोई सौत यदि उनसे कह दे, कि तुम्हारी कही हुई अमुक बात सत्यभामा कहती थीं, तो वह अवश्य ही तुमपर नाराज होंगे। पति जिन्हें प्यार करते हों; जो उनके हितकारी हों, उनकी खूब खातिर करना और जो उनके द्वेषी हों; उनका अनिष्ट चाहते हों; और उनके विपक्षी हों उनसे सदा दूर रहना। पुरुषोंके सामने मत्तता और लापरवाही छोड़कर खूब संयत भावसे अपना अभिप्राय प्रकट करना चाहिये। अच्छे घरकी पतिव्रता और धर्म्मात्मा स्त्रियोंको छोड़ और किसी स्त्रीको अपनी सखी सहेली न बनाना। क्रोध करनेवाली, मतवाली, अधिक भोजन करने वाली, चपला और चोरी करनेवाली स्त्रियोंसे कोई वास्ता न रखना। ऐसे उत्तम व्यवहार ही स्त्रियोंके यश, सौभाग्य और स्वर्गप्राप्तिके कारण हैं।"

एकबार महाराज युधिष्ठिरने भीष्मजीसे पूछा—"हे पितामह! कृपाकर मुझे सती स्त्रियोंका चरित्र सुनाइये।" भीष्मजी बोले—एक बार कैकय देशकी राजकुमारी सुमनाने शाण्डिली नाम्नी एक पण्डितासे ऐसा ही प्रश्न किया था।

सर्व्वथा गाण्डिली देवीने सुमनाको जो उत्तर दिया था, वही मैं तुम्हें सुनाता हूं। सुमना बोली,—हे देवि! किस प्रकारके चरित्र और आचार द्वारा आपको स्वर्ग मिला है? इसमें सन्देह नहीं, कि थोड़ी तपस्या द्वारा आपको स्वर्ग नहीं मिला है; इसलिये कृपाकर आप उन आचारोंका सविस्तर वर्णन सुनाइये। चारुहासिनी गाण्डिलीने प्रसन्न होकर कहा—"मैं गैरिकवस्त्र अथवा पेड़की छाल पहनकर तपस्या करनेवाली योगिनी नहीं हूं और न मैंने मुण्डा अथवा जटिला बनकर स्वर्ग प्राप्त किया है। प्रत्युत तन्मय होकर मन वचन और कर्म्मसे मैंने अपने पतिदेवकी सेवाकी है। मत्ता होकर मैंने पतिको कभी कटुवचन नहीं कहा है और न उनका कोई अहित ही किया है। देवताओं, पितरों और ब्राह्मणोंकी पूजा भी की है। श्वसुर और सासकी सेवासे कभी विमुख नहीं रही हूं। मैंने आजतक कोई अनुचित कर्म्म नहीं किया है और न कभी किसी अनुचित कर्म्मकी चिन्ता ही किया है। विवाहके बाद मैं दरवाजेपर कभी नहीं खड़ी होती थी और न देरतक किसीसे बातचीत करती थी। मैं हँसी दिल्लगीमें कदापि अपना समय बरबाद नहीं करती थी। पतिके घर आनेपर उनकी यथोचित सेवा करती। उन्हें बैठनेके लिये यथासाध्य सुन्दर आसन देकर उनका सत्कार किया करती थी। जिस भोजनको वे नापसन्द करते उसे मैं कभी नहीं बनाती। परिवार वालोंके आदर सत्कारमें भी

कभी त्रुटि नहीं करती थी। उन लोगोंके प्रति मेरा जो कर्त्तव्य था, उसका प्रतिपालन बड़ी सावधानीसे करती थी। जिन कामोंको मैं स्वयं कर सकती थी, उन्हें किसी दूसरेके भरोसेपर कदापि नहीं छोड़ती थी; दूसरोंके करनेके योग्य कामोंको ही दूसरोंको सौंपती थी। पतिदेवके परदेश जानेपर केवल मङ्गल चिन्ह धारणकर बड़े संयत भावसे रहती थी। उस समय किसी प्रकारका शृङ्गार नहीं करती, उबटन, फुलेल, काजल तथा फूलकी माला आदि बिल्कुल परित्याग कर देती थी। पतिके सो जानेपर भी उन्हें छोड़कर कहीं नहीं जाती। छिपाने लायक बातोंको कभी जाहिर नहीं करती। मैं सदा प्रसन्न रहती; तथा उदासीको अपने पास नहीं आने देती। जो स्त्री सच्चे दिलसे इन नियमोंका पालन करती है, वह अरुन्धतीकी भांति स्वर्गमें विराजी है।"

उपर्युक्त कथाओंसे पाठिकायें अच्छी तरह समझ गई होंगी, कि द्रौपदी तथा शाण्डिलीने पति सेवा द्वारा ही अपने पतियोंको अपने वशमें कर लिया था। उनके इस अनन्त सुयशका कारण भी पति सेवा ही थी। प्रत्येक रमणीको इस बातपर अच्छी तरह विश्वास कर लेना चाहिये, कि पिता, पुत्र, आत्मा, माता और सखियोंके रहते हुए भी एकमात्र पति ही स्त्रीकी गति है। * विशेषतः हिन्दू स्त्रियोंके लिये

* "न पिता नात्मजो नात्मा न माता न सखीजनः।
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा।" —रामायण।

तो पतिसे बढ़कर पूज्य, प्रिय और श्रद्धेय दूसरा हो ही नहीं सकता। पति ही उनकी आत्मा, पति ही मन, पति ही देह और पति ही सर्वस्व है। रामायणमें लिखा है :—

"पतिर्हि देवता नार्य्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः।"

अर्थात् पति ही स्त्रियोंका देवता, गुरु और मित्र है। तैंतीस कोटि देवोंकी उपेक्षाकर भी जो स्त्री निष्कपट भावसे पति सेवा करती है वह अच्छी गति प्राप्त करती है, परन्तु एकमात्र पतिकी उपेक्षाकर आमरण समस्त देवोंकी पूजा करने वाली स्त्रीका कदापि निस्तार नहीं होता। अतः पतिकी सेवा करना ही स्त्रीजीवनका प्रधान उद्देश्य है।

विवाहके पश्चात् द्विरागमन होता है अर्थात् पत्नी पिताके घरसे विदा होकर पतिके घर आती है। हठात् एक अपरिचित स्थानमें आनेपर कुछ दिन वहां चित्त न लगना स्वाभाविक होनेपर भी कर्त्तव्यके अनुरोधसे पतिगृहमें मन लगाना ही उचित है। बहुत सी स्त्रियां बार बार पितामाताके घर जानेके लिये व्यस्त रहती हैं। वास्तवमें ऐसा करना अनुचित है। क्योंकि पति-सेवा तथा पतिगृहके अन्यान्य व्यक्तियोंके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन करना ही विवाहका उद्देश्य है। अपने जीवनके इस गुरुतर कर्त्तव्यका पालन, जो स्त्री जितना ही कर सकती है, वह उतना ही यशस्विनी और सौभाग्यशालिनी है। विवाहसे पहले इन कर्त्तव्योंके पालनका अवसर नहीं मिलता। इसीलिये स्त्रियोंकी कौमार्य्यावस्थाको विज्ञोंने

एक प्रकारसे उद्देश्यहीन माना है। फलतः यह बतानेकी आवश्यकता नहीं, कि विवाहके साथ ही कर्त्तव्यका गुरुतर बोझ स्त्रियोंके शिरपर पड़ जाता है! जीवनके इस भयङ्कर कर्त्तव्यसे पराङ्मुख हो आराम करनेके लिये जो स्त्री बार बार नैहर जानेके लिये समुत्सुक रहती है, वह वास्तविक पतिपरायणा नहीं बन सकती। बार बार नैहर जाते रहनेके कारण पतिके मनमें पत्नीके विषयमें सन्देह हो जाना भी स्वाभाविक है और इस सन्देहका परिणाम कितना शोचनीय हो सकता है, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं। सीता और सावित्रीकी जीवन-कथा जाननेवाली पाठिकायें यह भूली न होंगी, कि ये दोनों यशस्विनी रमणियां विवाहके पश्चात् कभी अपने पिताके घर नहीं गईं।

जनकजीके पञ्चवटीमें आनेपर सीता अपनी मातासे मिलने गई थीं परन्तु पतिको छोड़कर माताके निकट रात बिताना उन्होंने उचित नहीं समझा। *

इसी प्रकार सावित्री भी विवाहके पश्चात् आजन्म पिताके घर नहीं गईं। राज-कन्या होकर भी उसने दरिद्र सत्यवानसे विवाह किया था और ससुरके घरसे आनेपर पिताके दिये हुए आभूषणोंको भी उतार दिया था।

यहां यह कह देना अनुचित न होगा, कि कुछ स्त्रियां

* "कहति न सीय सकुच मन मांहीं, यहां बसब रजनी भल नाहीं।"
—गोसाईं तुलसीदास।

अपने धनी स्वामीके धनसे पिताकी सहायताके लिये सदा उत्सुक रहती हैं और पतिसे छिपाकर पिताको धनादि दे देती हैं। पतिके आज्ञानुसार दरिद्रोंकी सहायता करना अवश्य ही उत्तम है, परन्तु पतिसे छिपाकर एक कौड़ी भी किसीको देना उचित नहीं। जो स्त्री इस नीतिका अवलम्बन नहीं करती, वह पतिकी विश्वास पात्री नहीं बन सकती।

बहुत सी अबोध स्त्रियां अपनी माताओं तथा बहनोंसे पतिकी निन्दा किया करती हैं। अथवा अपनी सहेलियोंसे पतिके प्रेम-व्यवहार आदिकी बातें कह दिया करती है तथा पतिके लिखे पत्र सहेलियोंको दिखानेमें सङ्कोच नहीं करतीं। ऐसी निर्लज्जा स्त्रियां पतिका आदर नहीं प्राप्त कर सकतीं।

पतिकी इच्छाके विरुद्ध कोई कार्य्य करना उचित नहीं। इसलिये किसी कामको आरम्भ करनेसे पहले ही इस बातका विचार कर लेना उचित है, कि यह पतिकी इच्छाके विरुद्ध है वा नहीं। पतिकी इच्छा तथा आज्ञाके विरुद्ध किसी स्त्रीसे सखीत्व स्थापन करना भी उचित नहीं।

उपर्युक्त उपदेशोंके अनुसार आचरण कर जो स्त्री अपने पतिको सदा सन्तुष्ट रख सकती है, पतिको ही अपना सर्वस्व समझ अहर्निशि पति-सेवामें लगी रहती है और पति-सेवाको ही अपने जोवनका उद्देश्य समझती है, वही सच्ची पतिव्रता, यशस्विनी और गृहलक्ष्मी बन सकती है।

चौथा उपदेश।

परिवार वालोंके प्रति कर्त्तव्य।

भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्ग साधनम्।
नरक पीडने चास्यत्तस्माद यत्नेन तत् भवेत्॥—मनु।

सृष्टिके अन्यान्य प्राणियोंकी भांति मनुष्य अकेला रहकर जीवन नहीं बिता सकता, क्योंकि अकेला रहना उसके स्वभावके विरुद्ध है। इसीलिये वह पित-माता, भाई-बहन तथा पुत्र पुत्री आदि परिजनोंके साथ एकत्र रहता है। इस प्रकार परिवार-वर्गके साथ मिलकर रहनेका मुख्योद्देश्य पारस्परिक साहाय्य प्राप्त करना ही है। यदि मनुष्योंमें परस्पर सहायता देने तथा प्राप्त करनेका अभ्यास न होता अथवा वे मिलकर रहना और कार्य्य करना न जानते तो शायद बड़े बड़े नगरों तथा गांवोंकी सृष्टि न होती। ऐसी दशामें मनुष्य भी इतर प्राणियोंकी भांति बनोंमें बिल खोदकर अथवा और किसी प्रकार रहनेके लिये बाध्य होते तथा वर्त्तमान मानव-समाजका भी सङ्गठन न होता। इससे प्रतीत होता है, कि मानव-समाजकी मूलभित्ति पारिवारिक बन्धन होन है।

यह पहले ही बताया जा चुका है, कि गृह एक प्रकारका राज्य तथा गृहिणी उस राज्यकी रानीके तुल्य हैं। राज्य-कार्य्य निर्व्वाह करनेके लिये जिस तरह राजा वा रानीको अपने आ-

मात्यों, मन्त्रियों, सरदारों तथा अन्यान्य कर्म्मचारियोंकी सहायताकी आवश्यकता होती है, उसी तरह गृहिणीको भी गृह-कार्य निर्व्वाहार्थ परिजनोंकी सहायताकी आवश्यकता होती है। राज्यका समस्त प्रबन्ध अकेले ही कर लेना जैसे राजा वा रानीके लिये असम्भव है, वैसे ही गृहस्थीका समस्त प्रबन्ध अकेले ही कर लेना गृहिणीके लिये भी असम्भव है। जिस तरह राजा अपने मन्त्रियों तथा अन्यान्य कर्म्मचारियोंपर विश्वास करता हुआ अपने राज्यका कार्य करता है, उसी तरह गृहिणीको भी अपने परिजनोंपर विश्वास कर गृहकार्य्य चलाना पड़ता है।

जो गृहिणी अपने परिजनों तथा नौकरोंपर स्नेह-ममता नहीं रखती, उनके सुख दुःखका खयाल नहीं रखती तथा उनपर विश्वास नहीं करती वह सुचारुरूपसे गृहकार्य्य सम्पादन करनेमें सफलता नहीं प्राप्त कर सकती। प्रत्युत स्नेहहीनता और अविश्वासके कारण गृह विवाद उपस्थित होकर परिवार वर्गको 'तीन तेरह' कर डालता है।

प्रेम ही पारिवारिक सुखकी जड़ है। परिजनोंके प्रति प्रेम करना तथा उनका प्रेम पाना ही पारिवारिक सुख है। वास्तवमें गृहस्थाश्रम प्रेमके विहार करने अथवा खेलनेका स्थान है। प्रेम ही पिता-माताके हृदयमें स्नेह रूपसे, पुत्र-पुत्रियोंके हृदयोंमें भक्तिरूपसे और पति-पत्नीमें प्रणय रूपसे विराजता हुआ पारिवारिक सुखकी जड़ जमाता है। जगत्‌में जो किसीसे प्रेम नहीं

करता अथवा जिसे कोई प्यार नहीं करता वह अभागा है। जिस परिवारके मनुष्य प्रेमपूर्वक मिल जुलकर रहते हैं; सदा एक दूसरेके सुखके लिये सचेष्ट हैं, वही परिवार सुखी और आदर्श परिवार है।

प्रेमाभाव भाई भाईको अलग कर हरीभरी गृहस्थीके पूर्ण-पारिवारिक सुख और शान्तिको सदाके लिये दूर कर कर देता है। बड़े दुःखसे कहना पड़ता है, कि अनेक स्थानोंमें इस भयङ्कर अनर्थकी जड़ गृहिणियां ही होती हैं। वे ही ईर्षाके वशीभूत हो विमल पारिवारिक प्रेमकी जड़पर कुठाराघात कर देती हैं। नहीं जानते हिन्दू-समाजकी स्त्रियों-के लिये इससे बढ़कर कलङ्क और लज्जाकी बात और क्या हो सकती है? विवाहसे पहले जिन भाइयोंका मन प्राण एक था; जो एक दूसरेके पसीनेकी जगह अपना रक्त बहा देनेमें तनिक भी नहीं हिचकते थे, सरल अन्तःकरणसे अपने प्यारे भाईके सुख और शान्तिके लिये यत्न किया करते थे, वही विवाह हो जानेपर, स्त्रीके बहकावेमें आकर सब प्रकार स्नेह बन्धनोंको तोड़ अपने सगे भाईकी जान लेनेपर उतारू हो जाते हैं; उनके हृदयके स्नेह और ममताका स्थान द्वेष और हिंसासे भर जाता है!

स्वार्थपरता, नीचता, अहङ्कार, अविश्वास और अभिमान, ये पारिवारिक प्रेमके कट्टर शत्रु हैं। जिस घरमें ये घुसते हैं, उसका सत्यानाश किये बिना नहीं छोड़ते। बहुत जगह

देखनेमें आया है, कि जिन स्त्रियोंके पति कुछ उपार्ज्जन करते हैं, उनके घमण्डका कुछ ठिकाना ही नहीं रहता; वे अपने सामने किसीको कोई चीज़ ही नहीं समझतीं और जिनके पति कुछ उपार्ज्जन नहीं करते वे अभिमानके वशमें होकर परिवारमें सदा अशान्ति पैदा किया करती हैं। वे बात बातमें अपनेको अपमानित और अनादृत समझा करती हैं। ये दोनो बातें पारिवारिक प्रेम और एकताका नाशकर देती है।

अर्थनीतिके पक्षपाती हृदयहीन मनुष्य कह सकते हैं, कि सम्मिलित परिवार दरिद्रता तथा व्यक्तिगत सुखके नाशका कारण है, परन्तु हमारी पाठिकायें यदि विचार करेंगी तो मालूम होगा, कि केवल अपने ही पति और लड़के-लड़कियोंको लेकर अलग रहना भी सुखदायक नहीं। सम्मिलित परिवार किस दशामें व्यक्तिगत सुखमें बाधा नहीं पहुँचाता है, यह बतानेकी यहां कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती, परन्तु पारिवारिक नियमोंके अनुसार कार्य्य करने, दूसरेके दुःख-सुखके साथ अपने दुःख-सुखको मिला देनेसे ही यदि व्यक्तिगत सुख घट जाता है और स्वाधीनताका नाश हो जाता है, तो हम लोगोंको सबसे पहले अपने समाजसे ही अलग हो जाना चाहिये।

पारिवारिक नियमोंका अच्छी तरह पालन न होनेके कारण कहीं कहीं, लोगोंको आलस्यकी शिक्षा मिलती है। ऐसे ही

कई कारणोंसे कुछ विलायती विद्वानोंने सम्मिलित परिवारका विरोध किया है। वे प्रायः विवाह होतेही अपने पितामाता और परिवार वालोंको छोड़कर अलग हो जाते हैं। कोई भी स्वाधीनचित्त मनुष्य दूसरेकी कमाई खाना पसन्द नहीं करता और यह विधाताको भी मञ्जूर नहीं, कि एक आदमी दिनरात परिश्रम करता रहे और दूसरे चुपचाप बैठकर मौज उड़ावें। इसलिये परिवारके हरएक व्यक्तिको यथासाध्य उद्योग कर अर्थोपार्ज्जन करना चाहिये। हर एकको अपनी गृहस्थीकी उन्नतिकी चेष्टामें लग जाना चाहिये। इसके सिवा घरके मालिक और मालकिनको चाहिये, कि वे अपने सब प्रकारके स्वार्थोंको छोड़ परिवार वालोंके सुखकी चेष्टामें लगे रहें।

शास्त्रोंमें लिखा है, कि यदि प्राण निकलता हो तो भी पिता-माता, स्त्रीपुत्र, सहोदर और अतिथि-अभ्यागतोंको छोड़ कर स्वयं भोजन कर लेना गृहस्थके लिये महापाप है। महा-निर्वाण तन्त्रमें लिखा है:—"इस प्रकार हितमित्र, परिजन, नौकर-चाकर, स्वधर्म्मनिरत, उदासीनों तथा अन्य अतिथियों-का सत्कार करना ही गृहस्थका धर्म्म है। ऐश्वर्य्य रहनेपर भी जो गृहस्थ ऐसा नहीं करता, वह महापापी और पशु तुल्य है। *

* एवं क्रमेण भ्रातृंश्च स्वस्-भ्रातृ सुतान पि।
ज्ञातीन् मित्राणि भर्त्यांश्च पालयेत्तोषयेद् गृही॥

मनुजीने लिखा है :—"बूढ़े पिता-माता, सती स्त्री और बालबच्चोंके पालनके लिये यदि कोई अपकार्य्य भी करना पड़े तो भी करना चाहिये। क्योंकि परिजनोंका पालन करना ही स्वर्ग प्राप्त करनेका सीधा रास्ता है। जो ऐसा नहीं करते उन्हें नरककी यातना भोगनी पड़ती है।*

संसारमें सबकी अवस्था एक सी नहीं होती। कोई मूर्ख, कोई ज्ञानी, कोई दुर्व्वल, कोई बलवान, कोई किसी कार्यमें निपुण तथा कोई किसी कार्य्यमें अक्षम होता है, इसलिये ऐसी आशा करना वृथा है, कि सभी एक समान होंगे। कोई उपार्ज्जनशील होता है; बराबर कुछ न कुछ उपार्ज्जन किया करता है और कोई एक कौड़ी भी नहीं ला सकता। इन बातोंका विचार कर सबपर समदृष्टि रखती हुई जो गृहिणी अपना कर्त्तव्य पालन करती है, उसके गृहमें सुख और शान्तिका कभी अभाव नहीं होता।

ततः स्वधर्म्मे निरतानेकग्रामनिवासिनः।
अभ्यागतानुदासीनान् गृहस्थः परिपालयेत्॥
यद्येवं नाचरेत् देवि गृहस्थो विभवे सति।
पशुरेव स विज्ञेयः स पापी लोकगर्हित॥ —महानिर्व्वाणतन्त्र

* वृद्धौ च मातापितरौ साध्वी भार्य्यासुतः शिशुः।
अपकार्य्यशतं कृत्वा भर्त्तव्य मनुरब्रवीत्॥
भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनम्।
नरकं पीड़ने चास्य तस्मात् यत्नेन तं भरेत्॥ —मनु।

परिवारके प्रत्येक व्यक्तिकी प्रकृति एक सी नहीं होती। कोई शीघ्र ही नाराज हो जाता है; थोड़ेमें ही असन्तुष्ट होता है और किसीकी अधीनता स्वीकार नहीं करता, कोई बड़ा धीर, सहिष्णु, अटल-प्रतिज्ञ होता है, कोई बड़ा सीधा और भोलाभाला होता है; वह सदा प्रसन्न रहता है। सुतरां गृहिणीको चाहिये, कि परिवारके प्रत्येक व्यक्तिके स्वभावके अनुसार उसके साथ वैसा ही व्यवहार करे। "तुम दूसरेसे जैसा व्यवहार चाहती हो, उसके प्रति भी सदा वैसा ही व्यवहार किया करो।" जो गृहिणी इस उपदेशका मर्म्म समझकर उसीके अनुसार कार्य्य करती है, उससे सभी प्रसन्न रहते हैं; कोई उससे झगड़ा या विवाद नहीं कर सकता क्योंकि उपर्युक्त महत्‌भाव उसे क्षमाशील बना देता है। जो स्त्रियां अपने घरकी मालकिन होती हैं अथवा जिनके पति उपार्ज्जन करते हैं, वे अनायास ही अपने परिजनोंपर अपना प्रभुत्व विस्तार करती हैं; न्याय-अन्यायका विचार न कर जिसे चाहती हैं उसे ही दो चार खरी-खोटी सुना देती हैं; अपने अधीनस्थ व्यक्तियोंको महा तुच्छ समझती हैं; बात बातमें उन्हें फटकार दिया करती हैं और जो कुछ कर नहीं सकता, उसके साथ कुत्ते-बिल्लीकी तरह व्यवहार किया करती हैं, उन्हें एक बार विचार कर देखना चाहिये, कि अपने वशवर्ती लोगोंपर वे जैसा अनुचित अत्याचार करती हैं, वैसा ही अत्याचार यदि उनपर किया जाये तो क्या वह उन्हें अच्छा लगेगा? किसीपर अत-

रुष्ट हो उसके साथ कड़ा व्यवहार करनेके समय यदि इस बातका खयाल रहे, तो अवश्य ही स्त्रियां क्षमाशील बन सकती हैं। क्योंकि किसीके दोषको क्षमा करनेके लिये इससे बढ़कर और कोई तदबीर नहीं।

पण्डितोंका कथन है, कि छोटे खयालवाले ही यह विचार किया करते हैं, कि अमुक अपना मित्र तथा अमुक पराया है; उदार चरित्रोंके लिये समस्त संसार ही कुटुम्ब है। * विशाल जगत्‌की बात छोड़ दो, अपने छोटेसे परिवारमें ही जिन्हें अपना-पराया दिखाई देता है, उनसे बढ़कर नीचहृदय और कोई नहीं। इतरजीवोंकी तरह मनुष्य सदा अपने स्वार्थमें ही लगा नहीं रहता, इसीलिये विधाताने सृष्टिके अन्यान्य जीवोंकी अपेक्षा मनुष्यको उच्चासन प्रदान किया है। क्योंकि पशुपक्षियोंकी तरह वह केवल अपने ही बालबच्चोंके भरण-पोषणमें व्यस्त नहीं रहता, वरन् दूसरोंके बालबच्चोंका कष्ट देखकर उसके दिलमें दया आती है तथा यथासाध्य उनका दुःख दूर करनेके लिये प्रयत्न किया करता है। मनुष्य दूसरेको सुखी देख अपनेको सुखी समझता है। इसलिये सुखी होनेकी इच्छा रखने वालेको सबसे पहले अपने हृदयकी संकीर्णताको छोड़ उदारताका अवलम्बन करना चाहिये; परायेका सुख देख सुखी होनेकी आदत डालनी चाहिये।

---

* अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

यही वास्तविक मनुष्यत्व और गृहस्थोंको सुखशान्तिमय बनानेका सहज साधन है।

पारस्परिक अविश्वास पारिवारिक बन्धन और मेलजोलका नाश कर देता है। परस्पर विश्वास करना स्वाभाविक है। जिस घरमें इस स्वाभाविक भावकी कमी होती है, उसमें प्रेम कदापि नहीं ठहरता। अविश्वास मनुष्यकी आत्मीयताकी जड़ खोखली कर देता है और दो मिले हुए हृदयोंको अलग अलग कर उनके बीच मानों एक प्रकारका पर्दा डाल देता है। जहां विश्वास नहीं वहां शान्ति और सुख भी नहीं। इसलिये प्रत्येक बुद्धिमती गृहिणीको सबसे पहले गृहमें पारस्परिक विश्वासकी जड़ जमानी चाहिये।

किसी वस्तुका गुण पहचाननेकी शक्ति, वर्षमें लाखों रुपये कमानेकी अपेक्षा अधिक लाभ पहुंचानेवाली है। वस्तुतः जो गुणग्राही मनुष्य लोगोंका गुण ही देखना जानता है; अवगुणोंको छोड़ केवल गुण ही ग्रहण किया करता है, उससे किसीसे कभी नहीं बिगड़ती। संसारमें ऐसा कोई मनुष्य नहीं, जिसमें केवल अवगुण ही हों और न ऐसा ही कोई है, जिसमें तमाम गुण ही भरे हों। हां, बहुतोंमें अवगुणोंकी अधिकता होती है और बहुतोंमें गुणोंकी। जिनमें गुण अधिक होता है, वे साधु तथा जिनमें अवगुण अधिक होता है, वे असाधु कहे जाते हैं। उदार-हृदय व्यक्ति साधु-असाधु दोनोंसे ही लाभ उठाते हैं, क्योंकि जिस तरह हंस पानीको

छोड़कर दूधको ग्रहण करता है, उसी तरह वे भी अवगुणको छोड़कर गुणसे ही लाभ उठाते हैं। वे संसारमें सदा सुख और शान्ति फैलाया करते हैं। दूसरोंके दोषोंको ढूंढ़ना तथा परायेका दोष कीर्त्तन करनेका अभ्यास ही कहीं कहीं मनोमालिन्य और विरोधका कारण होता है। परनिन्दा महापाप है। ऐसे महापापसे सदा दूर रहना चाहिये।

सबको इस बातको जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिये, कि परिवारमें किस तरहका व्यवहार करना उचित है। मनुष्यकी अवस्था और उमरके साथ साथ उसके कर्त्तव्य भी बदला करते हैं। क्योंकि आज जो कन्या है, वही कुछ दिन बाद माता हो जाती है, आज जो पुत्रवधू है, वही सास होती है; नातेके अनुसार जो किसीकी भौजाई है, वही किसीकी ननद होती है। इसलिये समय, अवस्था और नाताकी विभिन्नताके अनुसार कर्त्तव्यमें भी भिन्नता दिखाती है।

हमारे देशके सभ्य समाजोंमें पुरुषोंको जिन्दगी भर एक ही परिवारमें वास करना पड़ता है, किन्तु समाजकी रीतिके अनुसार स्त्रियोंको पहले पिताके घर तथा विवाह हो जानेपर ससुरके घर जाकर रहना पड़ता है। इसलिये इस परिवर्त्तनके साथ साथ उनके कर्त्तव्यमें भी परिवर्त्तन आ जाता है। पिताके घर रहनेपर पिता-माता, भाई-बहन आदिके प्रति जो कर्त्तव्य था, ससुरालमें आनेपर पिता-माता तुल्य सास-ससुर, भाई तुल्य भसुर-देवर और बहन तुल्य जिठानी-

देवरानीके प्रति भी वही, कर्त्तव्य होता है। इसलिये ससुरालमें आकर भी उन्हीं भावोंके अनुसार वर्त्ताव करना उचित है।

विवाह पारिवारिक बन्धनकी पहली सीढ़ी है। विवाहके समय एक मन्त्र पढ़ा जाता है, उसका भावार्थ इस प्रकार है :—"हे कन्ये! तू ससुर, सास, ननद और देवर आदिकी निकट वर्त्तिनी होकर उनके प्रिय कार्यों द्वारा उनका प्रेम प्राप्त कर।" *

एकबार द्रौपदीने सत्यभामासे कहा था,—"मैं अपनी सासकी कभी निन्दा नहीं करती। सदा, सब प्रकार संयमसे चलती हूं। बड़ोंकी सेवा करनेके कारण ही मेरे पति मुझसे सन्तुष्ट रहते हैं। अपनी सासको मैं स्वयं भोजन और जल देकर नित्य उनकी सेवा किया करती हूं। असन, वसन तथा भूषण द्वारा मैं कदापि उनका अतिक्रमण नहीं करती।

हमारे देशकी अधिकांश स्त्रियां अपने ससुरसे बोलने तथा उनके सामने आनेमें शर्माती हैं। यह रिवाज अच्छा नहीं। जब कन्यायें अपने पिताओंसे बातचीत करनेमें संकोच नहीं करतीं तब वधुएं अपने पितातुल्य ससुरोंसे बोलनेमें क्यों संकोच करती हैं, इसका कोई कारण दिखाई नहीं देता। प्रत्युत् इस रिवाजसे कभी कभी बड़ी हानि होती है।

---

* ओं साम्राज्ञी श्वशुरे भव साम्राज्ञी श्वश्रुवां भव।
ननन्दारिच साम्राज्ञी भव साम्राज्ञी अधिदेवृषु॥

अपने ससुर-सासकी परम गुरुकी भांति उनकी सेवा करना परम कर्त्तव्य है। क्योंकि वे सदा पुत्रकलत्रादि परिजनोंकी भलाईमें ही लगे रहते हैं। जबतक ससुर और सास मौजूद रहते हैं, तबतक पुत्र तथा पुत्रवधूको किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं रहती, बड़े पेड़की छायामें ठहरकर राही जैसे *अपनेको निरापद समझता है, उसी तरह ससुर सासके आश्र*यमें रहनेवाली बहुएं भी अपनेको निरापद समझती हैं। गुरुतर गृहिणी कर्त्तव्यका भार सासके सिर डाल उनके आदेश तथा उपदेशके अनुसार कार्य्य करनेसे बढ़कर सुख और क्या हो सकता है? सासके रहते हुए अपनेको घरकी मालकिन कदापि नहीं समझना चाहिये तथा उनकी इच्छा और अनुमति बिना, अपने मनसे कोई काम न करना चाहिये।

बुढ़ाईके कारण सासके असमर्थ हो जानेपर उनकी आज्ञा लेकर घरका सब काम करना उचित है। यदि कोई बात वह न समझ सकें तो अति विनीत भावसे समझा देना चाहिये। किसी विषयमें सासमें मतभेद हो जानेपर भी कर्त्तव्यके अनुरोधसे उन्हींके मतानुसार कार्य्य करना चाहिये। आजकलकी कुछ पढ़ी लिखी स्त्रियां बूढ़ी सासकी अपेक्षा अपनेको अधिक बुद्धिमती समझती हैं। वे यह नहीं समझतीं, कि पुरानी गृहिणियोंने सुदीर्घ कालतक गृह कार्य्य कर जो अभिज्ञता और पटुता प्राप्त की है, वह उपेक्षणीय

नहीं। वैसी अभिज्ञता प्राप्त करनेके लिये कठोर श्रम और समयकी आवश्यकता पड़ती है। नई बहुओंके लिये वह सहज नहीं। साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये, कि कार्य्य करनेसे जो जानकारी प्राप्त होती है, वह पुस्तक पढ़नेसे कदापि प्राप्त नहीं हो सकती।

विचारशीला सुलक्षणा कुल-वधुएं ससुर और सासको गृहदेवता समझ उनकी सेवा और पूजा किया करती हैं। ससुर-सासकी सेवाको व्यर्थ समझ कर उनका अनादर करना उचित नहीं। शास्त्रानुसार पति स्त्रीका गुरु है और पतिके पिता-माता उसके भी गुरु हैं; इसलिये वे महागुरु हैं। जो स्त्री भक्तिपूर्व्वक अपने बूढ़े ससुर-सासकी सेवा करती है, उससे ईश्वर प्रसन्न रहते तथा उसकी सब मनोकामनायें पूरी होती हैं।

बूढ़े और बालकका स्वभाव प्रायः समान होता है। बहुतसे बूढ़े शीघ्र ही नाराज हो जाते हैं; कभी कभी नाना प्रकारकी सुखकी चीजोंकी अभिलाषा दिखाते हैं, बात बातमें उन्हें भ्रम हो जाया करता है तथा वे अपनेको अपमानित और अनादृत समझकर दुःख प्रकाश किया करते हैं। बुद्धिमती गृहिणियां इन बातोंका खयाल रखकर बच्चोंकी तरह उन्हें सन्तुष्ट रखती हैं और चुपचाप उनकी सब बातें सुन लेती हैं। लक्ष्मीजीने श्रीनारायणसे कहा था,—"जिस गृहमें बूढ़े और बच्चे सन्तुष्ट रहते हैं, उसी घरमें मैं निवास करती हूं।"

वृद्ध ससुर-सासका भरण-पोषण वृथा समझ, उनका अनादर करनेसे बढ़कर पापकर्म दूसरा नहीं। इसके अतिरिक्त इस कुकर्मका परिणाम भी बड़ा ही भयङ्कर होता है। क्योंकि ऐसा करनेसे अगली पीढ़ीवालोंको जो कुशिक्षा मिलती है वह बुढ़ापेमें उन्हीं गृहिणियोंके सिर आ पड़ती है, जो अपने बूढ़े ससुर और सासका निरादर किया करती हैं। इस विषयमें एक बड़ी ही सुन्दर कहानी प्रचलित है:—

किसी परिवारमें एक बुढ़िया रहती थी। अधिक बूढ़ी हो जानेके कारण घरका कोई काम उससे नहीं हो सकता था। इसलिये बुढ़ियाकी पुत्रवधू उसकी सेवा व्यर्थ समझती थी। परन्तु लोकनिन्दाके भयसे थोड़ा सा भोजन दे दिया करती थी। इसके लिये एक काठकी 'डोकी' (कटोरा) रखी गई थी; उसीमें बुढ़ियाको किञ्चित साग-सत्तू मिल जाया करता था। यद्यपि बिचारी बुढ़ियामें चलने फिरनेकी ताकत नहीं थी, तथापि उस डोकीको साफ करनेका भार उसीपर था। एक दिन भोजन करनेके बाद बुढ़िया अपनी डोकी लेकर, उसे धोनेके लिये नाबदानकी ओर जा रही थी। अचानक वह डोकी उसके हाथसे छूट कर टूट गई। बुढ़ियाका छोटा पोता पास ही खेलता था। इस सुअवसरको हाथसे निकल जाने देना उचित न समझ वह अपनी बूढ़ी दादीकी पीठपर घूंसे जमाने लगा। इतने ही में बुढ़ियाकी बहू अर्थात् उस लड़केकी मा भी घटनास्थलपर उपस्थित हुई तथा बालकको

खाना देने लगी। यह देख भोलेभाले बालकने कहा,—"माँ, देखती नहीं, बुढियाने डोकी तोड़ दी। जब तू बूढ़ी होगी तो मेरी स्त्री तुझे किस डोकोमें भोजन देगी ?" अबोध बालककी बात सुनकर गृहिणीको होश हुआ। वह समझ गई, कि मैं जो कुछ कर रही हूं, उसका फल मुझे शीघ्र ही भोगना पड़ेगा। आशा है, कि हमारी पाठिकायें भी इस कहानीसे अवश्य ही शिक्षा ग्रहण करेंगी।

जिस तरह एक राज्यमें एक ही राजा रह सकता है, उसी तरह एक घरमें मालिकिन भी एक ही होनी चाहिये। क्योंकि जिस गृहस्थीमें सभी अथवा अधिकांश व्यक्ति अपनेको मालिक समझते हैं वह गृहस्थी शीघ्र ही नष्ट होजाती है। इसलिये जबतक सास जीती रहे अथवा प्रसन्नता पूर्व्वक गृहस्थीका सब भार वधूको सौंप न दे, तबतक उसकी आदेशानुसार कार्य्य करना ही सुशीला बधूका धर्म्म है। यदि पुत्रवधू सासकी आज्ञानुसार कार्य्य कर उसे सन्तुष्ट रखती है तो सास भी उसे अपनी पुत्री तरह प्यार करती है तथा उसके सुखके लिये सदा चेष्टा किया करती है। संसारमें वही गृहणी सबसे अधिक सुखी और सौभाग्यवती है जो अपने आरामकी परवाह न दूसरोंको आराम पहुँचानेमें लगी रहती है।

गृहिणी घरकी कुल सम्पत्तिकी एकमात्र अधिकारिणी न होनेपर भी एकमात्र रक्षाकारिणी अवश्य है। क्योंकि वही एकमात्र गृहकी कर्त्ता है, इसलिये उसकी आज्ञाके बिना

किसीको एक कौड़ी भी खर्च करने तथा उसके प्रबन्धमें किसी प्रकार हस्तक्षेप करनेका अधिकार नहीं है। इसलिये पुत्र-वधूको चाहिये, कि यदि किसी चीजकी जरूरत हो तो पहले अपनी सासस जरूर आज्ञा ले ले। गृहस्थीकी अवस्थाके अनुसार यदि सास उचित समझेगी तो देगी। यदि न भी दे तो इसके लिये असन्तुष्ट होना वा रूठना उचित नहीं। क्योंकि गृहिणीको समस्त परिजनोंकी रुचि तथा आकाङ्क्षाके अनुसार कार्य्य करना पड़ता है।

अपने पतिपर केवल अपना ही अधिकार जमानेका विचार करना महामूर्खता है। क्योंकि पतिपर पत्नीका जो अधिकार है, उससे कहीं बढ़कर अधिकार पिता-माताका अपने पुत्रपर है। इसलिये इस उचित बातका विचार न कर जो स्त्री अपने पतिको अपने हाथमें रख, सास और ससुरको पुत्र सम्बन्धीय न्याय-सङ्गत अधिकारोंसे वञ्चित रखनेकी चेष्टा करती है, वह परिवारमें अशान्ति और विवादका बीज बोती है। स्त्रियोंको कमसे कम इस बातका विचार तो अवश्य ही कर लेना चाहिये, कि यदि उनकी पुत्रवधू भी उनके साथ ऐसा ही वर्त्ताव करे तो वे उसे कहांतक सह सकती हैं।

परिजनोंमें ससुर-सासके बाद ही जेठ-जेठानीका दर्जा होता है। इसलिये जेठको बड़े भाई तथा जेठानीको बड़ी बहन समझ उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति प्रकाश करना चाहिये। उनके सुख-दुःखके साथ अपने सुख-दुःखको मिलाकर प्रेमपूर्वक

गृहकार्य्य निर्वाह करते हुए इस बातकी चेष्टा करते रहना चाहिये, जिसमें परस्पर मनोमालिन्य न उपस्थित होने पावे।

बड़े ही खेदकी बात है, कि कुछ अबोध स्त्रियां जेठ-जेठानियोंकी मर्यादाका खयाल न कर उनको अपना प्रतिद्वन्द्वी समझ दिन रात उनकी बराबरी करनेमें ही व्यस्त रहती हैं। उनका यह अनुचित आचरण भयङ्कर गृहविवादका सूत्रपात कर अन्तमें भाई-भाईमें मनोमालिन्य करा देता है। अतएव परम श्रद्धाभक्ति पूर्व्वक जेठ-जेठानीकी सेवा करनी उचित है। यदि जेठानी किञ्चित क्रोध परायणता अथवा उग्र स्वभाववाली हो तो भी उसकी बातोंको सहकर उसके प्रति प्रेम दिखाना ही सुशीलता है। यदि उसको उग्रताका उत्तर सहनशीलता तथा सौजन्यता द्वारा दिया जाये तो निश्चय ही वह भी स्नेह परायणा बन जायगी।

ससुर तथा सासके न रहनेपर जेठ और जिठानीको ही ससुर और सासके बराबर समझ उनके आदेश तथा उपदेशके अनुसार गृहकार्य्य करना चाहिये। सासके रहनेपर जिस नियमसे गृहकार्य्य सम्पादन होता रहा हो, जिठानीके मालकिन बननेपर भी उसी नियमके अनुसार कार्य्य करना उचित है। यदि जिठानी किसी कारणवश, प्रसन्नता पूर्व्वक गृहकार्य्यका भार देवरानी सौंप दे तो अपनेको उसका प्रतिनिधि समझ सब विषयोंमें उसकी सलाह लेकर काम करना

चाहिये। बुद्धिमती स्त्रियां छोटे बड़े सबसे—यहां तक, कि दास-दासियोंसे भी सलाह लेकर गृह-कार्य्य किया करती हैं। सबकी सलाहसे, एक मत होकर कार्य्य करनेमें बड़ी सुगमता होती है और बड़ासे बड़ा कार्य्य भी बड़ी आसानीसे पूरा हो जाता है। इसीलिये कहा गया है:—पाँच पञ्च मिल कीजे काज, हारे जीते न आवे लाज।"

परिवारके सब लोगोंके दुःख-सुखकी ओर नजर रखकर गृह-कार्य्य करना चाहिये। क्योंकि सबके प्रति समभाव तथा समदृष्टि रखे बिना एकता नहीं होती। यह कभी न ख्याल करना चाहिये, कि मैं उमर और नातेमें बड़ी हूं, घरकी मालकिन हूं, यदि छोटोंसे मिलकर रहूंगी तो मेरी मान-मर्यादा नहीं रहेगी? अथवा यदि ये मुँहलगी हो जायँगी, तो मेरी आज्ञाओंका पालन नहीं करेंगी। वरन् इस बातका ख्याल रखना चाहिये, कि यदि अपनी मानमर्यादाके लिये हम अपने परिजनोंसे अलग रहें; अपने मनकी बातें उनसे न कहें तथा उनसे मिलजुलकर न रहें तो हमें उनके मनकी बातें कैसे मालूम हो सकती हैं? यह अच्छी तरह स्मरण रखना चाहिये कि भयकी अपेक्षा प्रेमका शासन स्थायी तथा बड़े कामका होता है। "जो किसीका भय नहीं करता, वह भी प्रेमके वश होकर भृत्यवत् आदेश पालन करता है। अपने-से छोटी उमरवालेके दोषोंको न देख उनके गुणोंको देखना चाहिये। यदि वे किसी काममें भूल कर दें, तो उन्हें

एकान्तमें शान्तभावसे समझा देना चाहिये, कि तुमने यह भूल की है। भूल करनेके कारण किसीको सबके सामने डांटना या तिरस्कार करना उचित नहीं। वरन् दूसरोंके सामने जहांतक बने उसकी तारीफ ही करनी चाहिये, न कि निन्दा। क्योंकि घरकी निन्दा बाहर वालोंके सामने करनेसे बड़ा अनिष्ट होता है।

देवर-देवरानियोंके प्रति प्रेम दिखाते हुए उनके सब प्रकारके अभावोंकी यथासाध्य पूर्त्ति करते रहना चाहिये। अपनी सन्तानकी भांति उनके भरण पोषणका भी समुचित प्रबन्ध करना चाहिये। इसी तरह भसुरों तथा देवरोंके बाल-बच्चोंके प्रति भी स्नेह-ममता प्रकाश करना, उन्हें सुखी और प्रसन्न रखना तथा उनकी शिक्षा, भूषण और वसन आदि की उचित व्यवस्था करना सुगृहिणीका परम कर्त्तव्य है।

नई उमरमें स्त्रियोंके अच्छे गहने और कपड़ेकी बड़ी इच्छा होती है, सुतरां अपनी अवस्थाके अनुसार अपनेसे छोटोंकी इच्छा पूरी करनेकी अवश्य चेष्टा करनी चाहिये। यदि अवस्थानुसार उनकी इच्छा पूरी न की जा सके तो प्रेम पूर्वक समझा देना चाहिये, जिसमें उनके मनमें किसी प्रकार-का दुःख न हो। बहुत सी स्त्रियां प्रौढ़ावस्था तक सदैव अपने ही बनाव-शृङ्गारमें लगी रहती है; और छोटोंका कुछ खयाल नहीं करतीं। इस अनुचित नीतिका परिणाम बड़ा

ही भयङ्कर होता है। इससे गृहमें हिंसा-द्वेष तथा मनोमालिन्यका आविर्भाव होकर बनी बनाई गृहस्थीका सत्यानाश हो जाता है। इसलिये अपना शौक पूरा करनेकी अपेक्षा अपनेसे छोटोंको सजामजा देखकर प्रसन्न होनेकी आदत डालनेकी जरूर चेष्टा करनी चाहिये।

घरके कुल कामोंका भार गृहिणी ही पर ही होता है। और वही उनके लिये जिम्मेदार भी होती है। परन्तु एक ही मनुष्य सब कामोंको नहीं चला सकता अवश्य ही उसे सहायकोंकी जरूरत होती। इसलिये प्रत्येक गृहिणीको परिवारकी अन्यान्य लोगोंसे मिलकर कार्य्य करना चाहिये और योग्यतानुसार सबको कोई न कोई काम सौंप देना चाहिये। छोटे बड़े सबको व्यक्तिगत स्वाधीनता प्राप्त है, इसलिये उनकी स्वाधीनता की ओर ध्यान रखते हुए नियमके अनुसार उनसे घरका काम करना चाहिये।

अंगरेजों तथा अन्यान्य जातियोंकी भांति हमारे समाजमें पतिपत्नीके एक साथ बैठकर भोजन करनेकी भद्दी रीति नहीं है, किन्तु परिवारकी स्त्रियोंका एक ही पंक्तिमें बैठकर भोजन करनेमें कोई बाधा नहीं। इसलिये जेठानी देवरानी और ननदोंके साथ बैठकर भोजन करनेमें सङ्कोच करना उचित नहीं। इस प्रकार एकत्र बैठकर भोजन करनेमें विशेष आनन्द भी प्राप्त होता है और परिवारमें बहुत सो छोटी छोटी बातोंके लिये मनोमालिन्य भी नहीं उत्पन्न होने पाता।

उपदेशोंमें पाया जाता है, कि अपने ही पति, पुत्र और कन्याओंकी तरह परिवारकी दूसरी स्त्रियोंके पतियों, पुत्रों और कन्याओंका भी ख्याल रखना चाहिये। उचित भी ऐसा ही है, परन्तु वास्तवमें यह बात स्वाभाविक नहीं है। इसलिये जेठानियां या देवरानियां तुम्हारे पति तथा पुत्र-पुत्रियोंके लिये अपने पति तथा पुत्र पुत्रियोंकी भांति परिश्रम न करें तो इसके लिये उनपर नाराज न होना चाहिये। क्योंकि इस तरहका व्यक्तिगत भाव जीवमात्रके लिये स्वाभाविक है। पाठिकायें स्वयं समझ सकती हैं, कि वे अपने पति तथा पुत्र-कन्याओंके लिये जितना त्याग स्वीकार कर सकती हैं, उतना और किसीके लिये नहीं कर सकती। अतः जिसे हम स्वयं नहीं कर सकतीं, उसे दूसरोंसे करानेकी इच्छा रखना व्यर्थ है। हां, दूसरोंके उपकारके लिये अपने सुखोंको छोड़ देना गृहिणीका धर्म है, इसलिये प्रत्येक गृहिणीको सबके साथ उदारताका व्यवहार करना चाहिये, न कि सङ्कीर्णताका।

पतिकी बहनों अर्थात् अपनी ननदोंको ठीक अपनी बहनोंके समान समझना चाहिये और उनके साथ वैसा ही व्यवहार भी करना चाहिये। जो बड़ी हों, उनके प्रति भक्ति और श्रद्धा, बराबर वालियोंके प्रति प्रेम और सखित्व तथा छोटियोंके प्रति स्नेह और ममताका व्यवहार करना चाहिये। साधारणः जबतक विवाह नहीं हो जाता तभी तक ननदें घरमें रहती हैं, इसलिये उनके साथ भौजाइयोंका स्वार्थ सम्बन्ध भी

अपव्ययी होता है। इसलिये उनसे विरोधकी सम्भावना भी कम ही रहती है। परन्तु दुर्भाग्यवश कितनी ही विधवाओंको अपना जीवन नैहरमें ही बिताना पड़ता है। कहीं कहीं ऐसी ननदों और भौजाइयोंमें वैमनस्य और विरोध पाया जाता है। यदि खोज किया जाये तो इसमें कुछ कुछ दोष ननद भौजाई दोनोंका मिलेगा, परन्तु यहां ननदोंके दोषोंकी आलोचना अभिष्ट नहीं, इसलिये ऐसी विधवा ननदोंके प्रति गृहिणीका क्या कर्त्तव्य है, उसीके सम्बन्धमें कुछ लिखा जाता है।

पिता-माता पर सब विषयोंमें पुत्रकी भांति कन्याका अधिकार रहनेपर भी हमारी सामाजिक रीतिके अनुसार साधारणतः पुत्र ही पिताके धन-सम्पत्तिका अधिकारी होता है। विवाहिता होनेपर कन्या पतिके घर जाकर स्वामीके धन-सम्पत्तिकी अधिकारिणी होती है। इसलिये पिताके धनकी वह बिल्कुल प्रत्याशा नहीं करती। परन्तु कारणवश यदि उसे पिताके ही घर रह कर जीवन बिताना पड़े तो पिताकी सम्पत्ति पर न्यायतः कन्याका अधिकार भी पुत्रकी ही भांति ही होना चाहिये। इसलिये यह सोचना महा मूर्खता है, कि विधवा ननदका कोई अधिकार ही नहीं।

जिस तरह पत्नी का अधिकार पतिपर होता है, उसी तरह बहनका भी अधिकार अपने भाईके ऊपर होता है। जिस तरह पति अपनी पत्नीके भरण-पोषणके लिये बाध्य है, उसी

तरह बहनके भरण पोषणके लिये भी। इसलिये किसी स्त्रीको यह कदापि नहीं सोचना चाहिये, कि पतिपर एकमात्र उसीका अधिकार है, दूसरेका नहीं। इस प्रकारके भ्रममें पड़कर बहुत सी स्त्रियां बड़ा ही अनर्थ कर डालती हैं। वे सोचती हैं, कि "मेरे पतिपर दूसरेके क्या अधिकार है! वह जो कुछ लाता और जो कुछ कमाता है, वह सब मेरा ही है; दूसरेका नहीं। ननद आदि मेरे ही असेसे पलती हैं, मैं उनपर अनुग्रह करती हूं।" परन्तु कोई बुद्धिमती गृहिणी ऐसा विचार नहीं करती। वह जानती है, कि उसके पतिपर उसके पिता-माता, भाई-बहन आदि समस्त परिवार वालोंका भी अधिकार है। इसलिये वह पतिके धनकी एकमात्र अधिकारिणी बननेकी चेष्टा नहीं करती।

पति-पुत्रहीना विधवायें नितान्त बाध्य हुए बिना पिताके घर नहीं रहतीं। इसलिये यह विचारना चाहिये, कि यदि उनके पति-पुत्र जीते रहते तो आज उनकी ऐसी हीन दशा न होती। उनके अदृष्टदोष वा कर्मफलके कारण ही उन्हें यह कष्ट भोगना पड़ता है। बिचारी नैहरमें रहकर ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करती हुई भाई-भौजाईकी भलाई तथा उनकी गृहकी उन्नतिमें लगी रहती हैं। इसलिये प्रत्येक गृहिणीका कर्त्तव्य है, कि अपनी विधवा ननदोंको प्रसन्न रखनेकी सदा चेष्टा करती रहें। जिसमें उस निराश्रया विधवाके मनमें किसी प्रकारका कष्ट न हो।

ननदके सिवा यदि परिवारमें और भी कोई विधवा हो तो उसकी भी वैसी खातिर करनी चाहिये। ऐसी चेष्टा करनी चाहिये, जिससे उसके दुःखी हृदयमें शान्ति और सुखका आविर्भाव हो।

एक दिन जो पुत्रवधू होती है, वही समयानुसार सास हो जाती है। इसलिये, जिस तरह सासकी आज्ञा और उपदेशों-को मानकर पुत्रवधूको सब कार्य्य करना उचित है, उसी तरह सासको भी अपनी पुत्रवधूको अपनी कन्याकी तरह देखना और मानना तथा उसके सुख और सुविधाके लिये सदा चेष्टा करते रहना उचित है। आजकल कितने ही घरोंमें सासें अपनी बहुओंपर कितने ही अनुचित अत्याचार किया करती हैं। उनके अनुचित आचरणोंके कारण समस्त परि-वारको कष्ट उठाना पड़ता है तथा उन्हें भी अपमानित होना पड़ता है। किसी कारणसे ननद-भौजाईमें किसी तरहका वैमनस्य उपस्थित होनेपर, सासें उस वैमनस्यको मिटानेकी चेष्टा न कर कन्याका अन्यान्य पक्ष अवलम्बन कर पुत्रवधूको दण्ड देनेकी चेष्टा करती हैं। इसका परिणाम बड़ा ही भयानक होता है। यहांतक कि पुत्रको भी अपनी जननीके अन्याया-चरणसे दुःखी होना पड़ता है। फलतः इस जरासी भूलके कारण पवित्र और अनुपम मातृस्नेहकी जड़ हिल जाती है। सास-की पक्षपातिताके कारण देवरानियों तथा जेठानियोंमें भी विषम कलह उपस्थित होता है। क्योंकि बहुत सी सासें अपनी दो

पुत्रवधुओंमेंसे एकको अधिक चाहती हैं तथा दूसरीको नितान्त द्वेष समझती हैं। पुत्रवधुओंका दोष ढूंढ़ना तथा पड़ोसियोंसे उनकी निन्दा करना भी अशिक्षिता सासोंका एक प्रधान दोष है। सासके अत्याचारोंसे घबराकर कितनी ही बालिका वधुयें आत्महत्या तक कर डालती हैं। इसलिये सासको विशेष सतर्कताके साथ, स्नेहममता प्रकाश पूर्व्वक, अपनी पुत्र-वधूको मिलाकर उससे काम लेना चाहिये। यदि पुत्रवधूसे कोई दोष हो जाये तो उसे निष्ठुरतासे डाटनेके बदले मीठी बातोंसे समझा देना चाहिये। किसी दूसरेके आगे उसकी सच्ची या झूठी निन्दा कभी न करनी चाहिये। बहुत सी स्त्रियां कहा करती हैं, कि हमारा लड़का हमारी अपेक्षा बहूका अधिक पक्षपाती और बाध्य है। ऐसी बातोंसे लड़के-का दिल भी दुखी होता है तथा घरमें विषम अशान्ति उप-स्थित होती है। अपनी सब पुत्रवधुओंको सगी बेटोकी तरह मानना सासका प्रधान धर्म्म है। अपने घरके दोषों तथा भीतरी बातोंको महल्ले वालोंसे कहना बड़ा दोष है। इससे भी गृहकी हानि पहुँचनेकी सम्भावना रहती है।' इसलिये भूल कर भी अपने गृहको बात किसी दूसरेसे नहीं कहना चाहिये।

मनुष्यकी भांति न कोई स्वाधीन है और न पराधीन। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य एक दूसरेके लिये घोर परिश्रम किया करता है। कोई वेतन पानेके लिये, कोई यश पानेकी इच्छा से, कोई स्नेह और ममता पानेके लोभसे और कोई दूसरे ही

प्रकारके स्वार्थवश एक दूसरेकी सेवा करता है। इसलिये मनुष्यमात्र ही पराधीन और दास-दासियोंकी भांति हैं। ऐसी दशामें अपने दास-दासियोंको नीच समझकर उनकी अवज्ञा करना कदापि न्यायसङ्गत नहीं। सदा इस बातका खयाल रखना चाहिये, कि दास-दासी भी हमारे दुःख-सुखके भागी तथा हमारे परिवारके ही मनुष्य हैं। परिवार भरमें इसी महत् भावका प्रचार करना चाहिये। उनकी व्यक्तिगत स्वाधीनतामें किसी प्रकारकी बाधा नहीं देना चाहिये।

संसारमें कोई ऐसा मनुष्य नहीं, जो भूल न करता हो। विशेषतः जो अधिक काम करता है, उससे भूलें भी अधिक होती हैं। कभी कोई भारी भूल करनेपर, दास दासियोंको भविष्यमें सावधानीसे काम करनेके लिये तिरस्कार की भी आवश्यकता पड़ती है। परन्तु इसके लिये भी समय और अवसरकी आवश्यकता होती है। किसी भूलके लिये यदि किसीको तिरस्कार करनेकी आवश्यकता हो तो उससे पहले यह देख लेना चाहिये, कि इस समय उसका चित्त कैसा है। जिस समय वह दुःखी अथवा क्रोधमें हो उस समय उससे न बोलना ही बुद्धिमती गृहिणीको उचित है। क्योंकि क्रोधके समय तिरस्कार करनेसे क्रोधकी शान्ति नहीं, वरं वृद्धि ही होती है। ऐसी दशामें सम्भव है, कि वह भी कुछ कह दे। इसलिये समय देखकर उसे डांटना और समझाना चाहिये। तिरस्कारके साथ ही पुरस्कार भी एक अत्यावश्यक वस्तु है। दोनोंका

प्रयोग किये बिना दास-दासियोंसे अच्छी तरह काम नहीं लिया जा सकता। इसलिये उनकी भूलोंके लिये तिरस्कार करना और अच्छे कामोंके लिये उन्हें पुरस्कार भी देना चाहिये।

जो गृहिणी अपने दास-दासियोंके प्रति समुचित तिरस्कार तथा पुरस्कारका व्यवहार करती हुई उनके दुःखों और अभावोंको दूर किया करती है, उससे वे बहुत प्रसन्न रहते हैं तथा प्रसन्नतापूर्वक उसकी आज्ञाओंका पालन किया करते हैं। उनके खानेपीने तथा विश्रामकी ओर भी गृहिणीको लक्ष्य रखना चाहिये। स्वयं अच्छा भोजन करना और दास-दासियोंको नीच समझकर उन्हें खराब भोजन देना उचित नहीं। इससे उनका चित्त दुःखी होता है। इस अनुचित व्यवहारके कारण उनमें चोरी आदि करनेकी आदत पड़ जाती है। परन्तु यथेष्ट भोजन पाकर वे बहुत प्रसन्न रहते हैं तथा काम भी बहुत अच्छी तरह करते हैं। सबसे अधिक दास दासियोंके प्रति मिष्ट व्यवहारकी आवश्यकता है।

घरके जिन कामोंसे दास-दासियोंका सम्बन्ध हो उनके विषयमें उनसे सलाह लेकर काम करना वा कराना उचित है। इससे काम भी अच्छी तरह होता है तथा वे भी उत्साहित होते हैं।

दास-दासियोंका जो वेतन निर्धारित हो उसे ठीक समय पर चुका देनेकी चेष्टा करनी चाहिये। इसके सिवा विवाह आदि उत्सवोंपर उन्हें पुरस्कार आदि भी प्रदान करते रहना चाहिये।

बहुत सी स्त्रियां अपने नौकरों को डांटा करती हैं तथा बहुत सी उन्हें इतना मुँहलगा बना देती हैं, कि जिससे वे उनको मान-मर्य्यादाका भी कुछ खयाल नहीं करते। वास्तवमें ये दोनों बातें अनुचित हैं। इसलिये नौकरोंसे काम लेनेके लिये बड़ी सतर्कताकी आवश्यकता है। जिन कामोंसे दास-दासियों का कोई सम्बन्ध नहीं, उनके विषयमें उनसे कुछ न कहना ही उचित है। इसके अतिरिक्त बड़ी होशियारीसे उनके चरित्रका खयाल रखना भी आवश्यक है, जिस दास वा दासीका चरित्र अच्छा न हो उसे कदापि न रखना चाहिये। कितने ही नई बहुएं दास दासियोंके सामने अपना दुखड़ा रोया करती हैं। इससे गृहस्थीको बड़ी हानि पहुँचती है। इसलिये दास दासियोंसे ऐसी कोई बात न कहनी चाहिये, जिससे गृहको हानि पहुँचनेकी सम्भावना हो।

घरके पालतू जानवरोंकी सुधि लेते रहना भी गृहिणीका कर्त्तव्य है। प्रायः गृहस्थोंके घर तोते तथा कुत्ते आदि पालतू जानवर रहते हैं। उन अबोध पशुओंमें बोलने तथा अपना दुःख-सुख सुनानेकी शक्ति नहीं होती। इसलिये उनके खाने-पीनेकी समुचित व्यवस्था करना भी गृहिणीका ही कर्त्तव्य है।

उपर्युक्त उपदेशोंको ध्यानमें रखकर जो गृहिणी अपने परिवारकी भलाईमें लगी रहती है, वही यशस्विनी और सौभाग्यशालिनी होती है।

पाचवां उपदेश।

अतिथि-अभ्यागतोंके प्रति कर्त्तव्य।

गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः।
पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्व्वत्राभ्यागतो गुरुः।

"अतिथिसेवा गृहस्थका एक प्रधान धर्म्म है।"

शास्त्रकारोंके मतानुसार जो अपरिचित व्यक्ति थोड़ी देरके लिये अथवा रात भर विश्राम करनेके लिये बिना बुलाये गृहस्थके घर आ जाता है उसे अतिथि कहते हैं। मनुने लिखा है, कि जो केवल रातभर दूसरेके घर रहता है, उसे अतिथि कहते है। एक गृहस्थके घर दो दिन अर्थात् दो तिथि न रहनेके कारण ही वह अतिथि कहा जाता है।* इसके सिवा जिसका नाम, धाम और गोत्रादि ज्ञात न हो तथा जो अचानक गृहस्थके घर आये उसे अतिथि कहते हैं। †

अभ्यागत, गृहागत, आगन्तुक, पाहुने, तथा मेहमान आदि शब्द अतिथि शब्दके अर्थबोधक होनेपर एक ही पर्यायवाची शब्द

---

* एक रात्रन्तु निवसन् अतिथि र्ब्राह्मणः स्मृत.।
अनित्यं हि स्थितिर्यस्मात् तस्मादतिथिरुच्यते।

† यस्कन् ज्ञायते नाम न च गोत्रं न च स्थितिः।
अकस्मात् गृहमायाति सोऽतिथिः प्रोच्यते बुधैः॥—मनु।

नहीं हैं। तथापि परिचित वा अपरिचित, नातेदार वा कोई भी नहीं, बुलानेपर, अथवा बिना बुलाये, जो थोड़े समयके लिये गृहस्थके घर आ जाता है, उसे ही अतिथि समझना चाहिये। पञ्च महायज्ञमें नृयज्ञका जो उल्लेख है, उस के आराध्य अतिथि ही हैं।

हमारे शास्त्रानुसार अतिथिसेवासे बढ़कर पुण्य दूसरा नहीं। *आचार्य्योंने अतिथियोंको ब्राह्मणोंका भी गुरु माना है तथा उनकी* सेवाके लिये सर्वस्व परित्याग कर देनेकी आज्ञा दी है। यद्यपि पृथिवीके अन्यान्य देशोंमें भी अतिथि सेवाका रिवाज है तथा वहाके आचार्य्योंने भी इस विषयमें उपदेश दिया है तथापि इस महान् व्रतका जैसा माहात्म्य हमारे शास्त्रोंमें लिखा गया है, वैसा और कहीं—किसी देश वा जातिके शास्त्रमें नहीं है।

जिस गृहस्थके घरसे जो अतिथि विमुख लौट जाता है, वह उसके समस्त पुण्य-फलको लेकर अपना पाप उसे दे जाता है। *

मनुजीने लिखा है, कि घी, दही आदि चीजें जो अतिथि-को नहीं खिलाई गई हों, उन चीजोंको गृहस्थको भी नहीं खाना चाहिये। यथाविधि अतिथि-सत्कार करनेसे धन, यश और आयुकी वृद्धि होती है।

यह बार बार बताया जा चुका है, कि गृहिणियां ही

---

* अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रति निवर्त्तते।
स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति॥—विष्णुपुराण।

गृहकी अधिकारिणी और मालिकिन हैं। इसलिये अतिथिकी सेवा करना भी उन्हींका काम है। पण्डित शिवनाथ शास्त्रीने लिखा है:—"गृहकी स्त्रियां ही अतिथियोंकी सेवा करती हैं। सङ्कोच छोड़कर वे उसे भोजन और जल देती हैं; यही अतिथिका सबसे बढ़कर सुख है। स्त्रियोंके पवित्र और सरल व्यवहारोंमें एक प्रकारकी शक्ति होती है जो हृदय और मनकी शक्तिको बढ़ाती है।

सुनते हैं, कि बम्बई प्रान्तमें यदि किसी गृहस्थके घर कोई अतिथि आता है तो गृहिणी स्वयं उसके लिये भोजन परोसती है। यदि किसी कारणसे गृहिणी भोजन न परोस सके तो कमसे कम एक चीज तो अवश्य ही अपने हाथसे अतिथिके भोजनकी थालीमें डाल देती है। यदि ऐसा न किया जाये तो मानो गृहिणीका कर्त्तव्य ही अधूरा रह जाता है और निमन्त्रित व्यक्ति भी इसमें अपना अपमान समझता है।

लक्ष्मी चरित्रमें लिखा है,—"जो गृहिणी अतिथि और अभ्यागतोंको भोजन देकर स्वयं भोजन करती है, उसके घर लक्ष्मीजीका निवास होता है।"

विष्णुपुराणमें लिखा है,—"गृहस्थाश्रमके सर्व्वोत्तम होनेका मुख्य कारण यही है, कि जो परिव्राजक वा ब्रह्मचारी भिक्षा द्वारा जीवनयात्रा निर्व्वाह करते हैं उनका प्रधान आश्रय गृहस्थाश्रम ही है। ऐसे ब्रह्मचारियों और परिव्राजकोंके आने पर गृहस्थको चाहिये, कि उनका कुशल

सद्भाव पूछकर अपनी शक्तिके अनुसार उन्हें भोजन आसन तथा शय्या प्रदान करे। अतिथिकी अवज्ञा करना, दान करनेके बाद पश्चाताप करना अथवा लौटा लेना तथा अतिथिके प्रति निठुरता करना गृहस्थको उचित नहीं।" क्योंकि शास्त्रानुसार विधाता, प्रजापति, इन्द्र, सूर्य्य तथा वसु आदिदेव अतिथिकी देहमें प्रवेश कर अन्न भोजन करते हैं। इसलिये अतिथिकी सेवा बड़ी सावधानीसे करनी चाहिये। जो मनुष्य अतिथिकी अपेक्षा न कर स्वयं भोजन कर लेता है, वह पापका भागी होता है।

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि अतिथिके लिये गो-दोहन *कालतक अथवा उससे भी अधिक देरतक अपेक्षा करनी* चाहिये। यदि अतिथि आजाय तो कुशल-समाचार पूछ, आदर सहित उसे बैठाना चाहिये, इसके बाद उसका पैर धोकर भोजन कराना चाहिये। अतिथिकी बातोंका प्रिय उत्तर देना चाहिये तथा जब वह जाने लगे तब थोड़ी दूर तक उसके पीछे जाकर पहुंचाना चाहिये। जिससे कभीको जानपहचान न हो; जो किसी अन्य देशसे आया हो, ऐसे अतिथिकी भी पूजा करनी चाहिये। कदर्पकहीन परदेशी अतिथिको छोड़कर जो गृहस्थ भोजन कर लेता है वह *नरकगामी होता है। अतिथिका गोत्र* आदि जानकर उसकी सेवा करनेको आवश्यकता नहीं उसे हिरण्यगर्भ समझकर उसकी पूजा करनी चाहिये।

शास्त्रोंमें और भी लिखा है, कि यदि अतिथि ग्रामको आजाये, तो जहांतक होसके अवश्य उसको पूजा करनी चाहिये। पैर धुलाकर उसे अच्छी जगह बिठाना चाहिये, इसके बाद भोजन तथा आरामसे सोनेका बन्दोबस्त कर देना चाहिये। दिनको अतिथिके लौट जानेपर जितना पाप होता है उससे आठ गुणा अधिक रातको लौटनेसे होता है। इसलिये सूर्य्यास्तके पश्चात आये हुए अतिथिको कदापि नहीं लौटाना चाहिये। रातको अतिथिकी पूजा करनेसे सब देवताओंकी पूजा करनेका फल मिलता है।

शास्त्रोंमें षोडसोपचार द्वारा अतिथिकी पूजा करनेकी विधि बताई गई है, परन्तु संसारमें सबकी हालत एक ही तरहको नहीं होती। इस लिये सम्भव नहीं, कि सभी गृहस्थ अतिथिकी पूजा सोलह प्रकारसे कर सकें। परन्तु अपनी अवस्थाके अनुसार खिलाना, पिलाना, सुलाना, मीठी बातें तथा आदर करना कोई मुशकिल बात नहीं। इसे हरएक मनुष्य बहुत अच्छी तरह कर सकता है। इसी लिये मनुजीने लिख दिया है, कि यदि अतिथिको खिलानेकी शक्ति न हो तो उसके सोनेके लिये उत्तम स्थान, बिछानेके लिये तृण तथा हाथ-पैर धोनेके लिये जल अवश्य ही देना चाहिये। इसके सिवा प्रेमपूर्वक बातचीत कर उसे सुखी करना चाहिये। ऐसा कोईभी गृहस्थ न होगा जिसके घर जल और तृण भी न हो।

मनुजीने और भी लिखा है:—"यदि एक ही समयमें बहुतसे अतिथि आजायें तो उनकी पद-मर्यादाके अनुसार उनके बैठने आदि की व्यवस्था कर यथोचित परिचर्य्या करनी चाहिये। अर्थात् उत्तम व्यक्तिके लिये उत्तम, हीनके लिये हीन और समान व्यक्तिके लिये समान आसन आदि देना चाहिये, सबके लिये एक ही तरहकी व्यवस्था उचित नहीं। *

अतिथिसे पहले ही भोजन कर लेना अनुचित और रीति विरुद्ध है। मनुजीने लिखा है, कि जो गृहस्थ अतिथिसे लेकर नौकर तकको खिलानेसे पहले ही भोजन कर लेता, वह नहीं जानता, कि मरनेपर उसकी देहको गृद्ध और कुत्ते खायेंगे। नवोढा वधू, कन्या, बालक, रोगी, तथा गर्भवती स्त्रीको अतिथिसे भी पहले भोजन देना चाहिये। यह नहीं समझना चाहिये, कि अतिथिके पहले उन्हें भोजन करा देनेसे किसी प्रकारका दोष होगा।

इससे पहले द्रौपदीका नाम आया है। कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि राजाकी पुत्री और राजाकी रानी, होने पर भी वह स्वयं अतिथि सेवा करती थी। यहा तक, कि जबतक एक भी अतिथि बिना खाये रहता था, तबतक वह भोजन नहीं करती। पाण्डवोंके साथ वनमें रहनेपर भी उसने अतिथि सेवा-व्रत नहीं छोड़ा था।

* मनुस्मृति अध्याय ३।

अपना बड़प्पन दिखानेके लिये अतिथि-सेवाकी व्यवस्था अपनी अवस्थासे बढ़कर करना अनुचित है। क्योंकि अवस्था-से बढ़कर आयोजन देखकर अतिथि लज्जित और दुःखित होता है, इसके सिवा खर्च भी अधिक हो जाता है। फलतः बराबर वैसे ही धूमधामसे आयोजन न होनेके कारण अन्तमें अतिथिका निरादर करना पड़ता है।

अतिथि जितने दिनोंतक घर रहे उतने दिनोंतक उसके आहार आदिका समान बन्दोबस्त होना चाहिये, यह नहीं, कि एक दिन बहुत बढ़ियां भोजन कराया जाय और दूसरे दिन सूखी रोटियां ही परोस दो जायं।

एक कहानी है, कि हरि, माधव, पुण्डरीकाक्ष और धनञ्जय अपनी सुसराल गये। पहले दिन तो वहां इन लोगों-की बड़ी खातिरदारी हुई। परन्तु दूसरे दिन भोजनमें घी कम दिया गया। हरिको यह बात अच्छी न लगी। उसने इसमें अपना अनादर समझा और तुरन्तही वहांसे चला गया। दूसरे दिन बैठनेके लिये उपयुक्त आसन न पाकर माधवने भी वहां रहना उचित नहीं समझा। तीसरे दिन भोजन अच्छा न मिला, इसलिये पुण्डरीकाक्षने भी वहांसे प्रस्थान किया। परन्तु धनञ्जय वहीं डटा रहा। उसने आदर-निरादरकी कुछ भी परवाह न की। फलतः अन्तमें वह मारकर खदेड़ा गया। इन मेहमानोंकी यह दशा देखकर किसी कविने कहा,—

"हविर्विना हरिर्यातिः, विना पीठन माधवः।
कदन्नैः पुण्डरीकाक्षः प्रहारेण धनञ्जयः॥"

पाठिके! जिस घरमें ये अतिथि गये थे, उस घरकी गृहिणी यदि अपनी आर्थिक अवस्थाका विचार कर अतिथियोंके भोजनकी व्यवस्था करती और पहले दिन विशेष धूमधाम न दिखाती तो दूसरे और तीसरे दिन घृत, आसन तथा अच्छे भोजनके अभावके कारण मेहमानोंको भागना न पड़ता। फलतः ऐसे अवसरोंपर गृहिणियोंकी भूलके कारण बड़ा अनर्थ हो जाता है।

अतिथियोंके आनेका कोई ठीक समय नहीं होता। कभी कभी दो पहरके बाद तथा कुछ रात बीतनेपर भी अतिथि आ जाते हैं। इससे जो गृहिणी रंज होती है, उसके घरके निकट भी लक्ष्मी नहीं जातीं।

ऐसी बहुतसी गृहिणियां हैं, जो अतिथिके आनेपर बड़े आनन्द और उत्साहसे उसकी सेवामें लगजाती हैं। दिनभरके घोर परिश्रमके बाद जरासा आराम करनेके समय भी यदि कोई अतिथि द्वारपर आ जाता है तो भी वे रंज नहीं होती। वे खुद निराहार रहकर भी अतिथिको खिलानेमें आनन्द अनुभव करती हैं।

बहुतसी स्त्रियां ऐसी भी हैं। जो अतिथिका नाम सुनते ही जल जाती हैं। मानों उनके सिरपर वज्र गिर पड़ता है। ऐसी नीचमना स्त्रियोंकी सन्तान भी संकीर्ण-हृदय और स्वार्थी होती है। क्योंकि अतिथि अभ्यागतोंकी यथोचित सेवामें घरके छोटोंको उदारता तथा निःस्वार्थताकी

जैसी शिक्षा मिलती है वैसी और किसी तरह नहीं मिल सकती। आतिथ्य ग्रहण करने के समय अतिथि सब प्रकारसे गृहस्थके शरण और आश्रयमें रहता है। इसलिये अतिथिकी स्वाधीनतामें किसी प्रकारकी बाधा नहीं देना चाहिये और न उससे कोई ऐसा काम लेना चाहिये, जो उसकी मर्य्यादा तथा इच्छाके विरुद्ध हो।

पुराणोंमें ऐसे बहुतसे दृष्टान्त हैं, जिनसे प्रतीत होता है, कि अतिथि-सत्कार गृहस्थका एक प्रधान कर्त्तव्यकर्म्म है। यदि, आधुनिक सभ्यताके अनुसार उन दृष्टान्तोंको केवल कल्पना ही मान लें, तो भी ऋषिवाक्य समझ उनपर श्रद्धा-भक्ति करना तथा उनका सार-मर्म्म मात्र ग्रहण करलेना अनुचित नहीं। महाभारतमें सुदर्शनकी कथा लिखकर महर्षि वेदव्यासजीने यह बतानेकी चेष्टा की है, कि अतिथिके लिये गृहस्थ सब कुछ परित्याग कर सकता है, यहांतक कि स्त्रीका सतीत्व भी देकर अतिथिको खुश रखता है। केवल अतिथि सत्कारका महत्व और गुरुत्व प्रतिपादन करनेके लिये ही ऐसी कहानियां रची गई हैं।

महाभारतके अनुशासन पर्व्वमें लिखा है, कि सुदर्शन नामधारी एक गृहस्थने गृहस्थाश्रममें रहकर ही मृत्युको विजय करनेकी प्रतिज्ञा की थी। सुदर्शनकी यह प्रतिज्ञा यमराजको अच्छी नहीं लगी। वे सुदर्शनका दोष ढूंढनेकी इच्छासे उसके सब कर्म्मोंपर कड़ी नजर रखने लगे। ओघवती नाम्नी

राजकन्याका पाणिग्रहण कर सुदर्शन कुरुक्षेत्रमें रहकर गृहाश्रमधर्म्मका पालन करने लगा। एकदिन उसने अपनी स्त्रीसे कहा—"प्रिये ! मैंने यह प्रतिज्ञा की है, कि गृहस्थाश्रम द्वाराही मृत्युको जीतूंगा। इसलिये तुम अतिथि-सेवामें कभी त्रुटि न करना। आत्मप्रदान कर भी अतिथिकी सेवा करते रहना और किसी अतिथिको किसी बातके लिये नाराज मत होने देना। क्योंकि अतिथिसे बढ़कर मैं किसीको नहीं समझता। मेरी बातपर विश्वास कर तुम भी सदा ऐसा ही समझना। मैं घर रहूं या न रहूं परन्तु तुम सदा मेरी बातका ध्यान रखना। अतिथिके आनेपर उसकी किसी प्रकार अवमानना मत करना।" ओघवतीने हाथ जोड़कर कहा,—"प्राणनाथ ! आपकी आज्ञाका पालन करनेमें मैं तनिक भी त्रुटि न करूंगी।" इधर यमराज सुदर्शनके पीछे पड़ उसका दोष ढूंढ़ने की चेष्टामें लगे। एक दिन सुदर्शन लकड़ी लानेके लिये वनमें गया इधर यम अतिथिका रूप धारणकर सुदर्शनके घर पहुँचे और उसकी पतिव्रता स्त्रीसे कहा, कि मैं अतिथि हूं आज तुम्हारे घर रहकर विश्राम करना चाहता हूं। पतिकी आज्ञा माननेवाली ओघवतीने वेद विधिके अनुसार अतिथिका स्वागत किया। उचित आसन तथा जल आदि देकर उसने पूछा, कि महाराज ! बताइये आपको और किस वस्तुका प्रयोजन है ? अतिथि-वेषधारी यमने कहा,—"हे सुन्दरी ! मैं तुम्हें चाहता हूं। यदि तुमको अतिथि सत्कारके महात्म्य

पर विश्वास है तो मेरे इच्छानुसार मेरा-प्रिय कार्य्य करो। ओघवतीने नाना प्रकारकी चीजें देकर अतिथिको प्रलोभन दिया, परन्तु उसने एक न सुनी। वह बार बार यही कहने लगा, कि मैं तुम्हारे सिवा और कुछ नहीं चाहता। अन्तमें पतिकी आज्ञाका स्मरणकर राजकन्या ओघवतीने सलज्ज भावसे कहा, कि जो आपकी मरजी हो वही कीजिये।

इधर सुदर्शन लकड़ी लेकर आ गये और अपनी स्त्रीको पुकारने लगे। उस समय अतिथिने आकर कहा, कि मैं आज आपके घरका अतिथि हूं। आपकी स्त्री मेरी इच्छानुसार मेरी सेवा कर रही है। यदि आप मुझे इस कुकर्म्मके लिये दण्ड देना चाहें तो दे सकते हैं। परन्तु इस बातको भूल न जाइयेगा, कि जो गृहस्थ अतिथि-धर्म्मके पालनमें त्रुटि करता है, उसे बध करनेके लिये मृत्यु उसके पीछे लगी रहती है। अतिथिकी बात सुनकर सुदर्शनने बड़े शान्तभावसे उत्तर दिया, कि हे विप्रवर! आपको जिस तरह सुख मिले, मैं उसीमें प्रसन्न हूं। अतिथिका सत्कार करना ही गृहस्थका परमधर्म्म है। बड़े बड़े ऋषियोंने कहा है, कि गृहस्थके लिये अतिथिकी पूजासे बढ़कर और कोई धर्म्म नहीं है। मैं पहलेसे ही प्रतिज्ञा कर चुका हूं, कि अतिथिके लिये धन, जन, प्राण और पत्नीतक छोड़नेमें त्रुटि न करूंगा। यह सुनकर धर्म्मराजने कहा,—"हे अनघ! मैं धर्म्म हूं। तुम्हारा मङ्गल हो। तुम्हारी परीक्षा करनेके लिये ही मैं यहां आया

हूं। तुम्हारी अटल प्रतिज्ञा और अतिथि-सेवाके लिये इतना त्याग स्वीकार देख मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ हूं। तुमने अपनी धीरतासे मृत्युको जीत लिया। तुम्हारी इस पतिव्रता साध्वी पत्नीको छूना तो दूर रहा, ऐसा भी कोई पुरुष नहीं, जो इसकी ओर आंख उठाकर देख सके। अपने पतिव्रतके बलसे यह रक्षिता है। यह जो कुछ कहेगी वह कदापि मिथ्या नहीं होगा। यह ब्रह्मवादिनी अपनी तपस्या पूरी करने तथा लोक-पालनकी इच्छासे आई है। तुम इस जन्ममें इसी शरीर द्वारा समस्त लोकोंको देख सकोगे और यह भाग्यवती आधे शरीरसे नदी होकर बहेगी तथा आधे से तुम्हारा साथ देगी। अपने योगबलसे यह दोनों शरीर धारण कर सकती है। योग इसके अधिकारमें है। गृहधर्म द्वारा तुमने काम, क्रोध, लोभ और मोहको जीत लिया है। हे ऋषिराज! इस राजपुत्रीने तुम्हारी सेवा द्वारा स्नेह, रोग, तन्द्रा, मोह और द्रोहको जीत लिया है।

इसके बाद स्वयं इन्द्रदेव सुन्दर रथ लेकर ब्राह्मणके पास आये और उन दोनोंको उसपर चढ़ाकर देवलोकको ले गये। गृहस्थाश्रममें रहनेवालोंके लिये अतिथिसे बढ़कर और कोई देवता नहीं है। अतिथि-सेवासे बढ़कर और कोई पुण्य गृहस्थके लिये नहीं है।

महात्मा भीष्मपितामहने राजा युधिष्ठिरको अतिथिसेवाका उपदेश देते हुए एक कपोतकी कहानी सुनाई थी। उस

कहानी द्वारा अतिथि-सत्कार सम्बन्धीय उत्तम उपदेशोंके सिवा और भी बहुत सी अच्छी बातें मालूम होती हैं।

भीष्मजी बोले,—राजन्! किसी पेड़पर एक कबूतर अपने बाल-बच्चोंके साथ रहता था। एक दिन उसकी स्त्री आहार लानेके लिये सवेरे घोसलेसे उड़ गई और शामतक नहीं लौटी। पक्षी अपनी प्यारी पत्नीके लिये बड़ी चिन्ता करने लगा। पत्नी-वियोगके कारण उसे सारा संसार सूना जान पड़ने लगा। सचमुच भार्य्याहीन गृहस्थका घर पुत्र पुत्री आदि होनेपर भी सूना ही मालूम होता है। पण्डित लोग घरको नहीं वरं गृहिणीको ही घर कहते हैं। क्योंकि बिना गृहिणीके घर बनके बराबर है। फलतः कपोत अपनी पत्नीके वियोगमें बड़ा ही दुःखी हुआ और नाना प्रकारका विलाप कर रोने लगा। हाय! मेरी प्यारी कहां चली गई। जो मेरे खाये बिना खाती नहीं थी, मेरे नहाये बिना नहाती नहीं थी, मेरी प्रसन्नताको ही अपनी प्रसन्नता समझती थी, मेरे परदेश चले जानेपर जिसका मुँह मलिन हो जाता था और मेरे क्रोध करनेपर जो नम्रता पूर्व्वक मेरे क्रोधको शान्त करती थी, वह मेरी प्राणप्रिया पतिव्रता कहां गई। जो सदा मेरी भलाई चाहती थी, इस पृथिवीपर जो अपना उदाहरण नहीं रखती थी, वह पतिव्रता यशस्विनी, तपस्विनी और भक्तिमयी प्रिया जब जान पाती, कि मैं भूखा हूं तब तुरन्त ही यथेष्ट आहार प्रदान किया करती थी। जिसके घरमें ऐसी भार्य्या है, वही धन्य है। ऐसे पुरुषको

यदि घर छोड़ वनमें रहना पड़े तो भी वह सुखी रहता है। अपनी प्यारीको छोड़कर यदि मुझे इन्द्रलोकमें रहना पड़े तो भी मेरा मन प्रसन्न नहीं हो सकता। इस प्रकार नाना प्रकारकी बातें कह वह पक्षी रोने लगा।

इधर उस कपोतीके वनमें जानेके कुछ देर बाद ही भयानक तूफान चलने लगा। अपार वर्षाके कारण सारे वनमें पानी ही पानी दिखाई पड़ने लगा। उसी समय एक भयङ्कर विकटाकार बहेलिया शीतसे कांपता हुआ एक ऊँचे टीलेपर आकर खड़ा हुआ। वर्षाके कारण वनके जन्तु इधर उधर भींगते फिरने लगे। कितने ही पक्षियोंके घोंसले नष्ट हो गये और वर्षासे भींगने तथा हवाके झकोरोंमें पड़कर कितने ही पक्षी मर गये थे। सिंह, बाघ, भालू और भेड़िये आदि हिंसक जन्तु भूखसे घबराकर शिकार ढूंढ़ने लगे थे। उत्कट शीत तथा हिंसक जन्तुओंके भयसे बहेलिया कहीं जा न सका। जहां वह बैठा हुआ था, उसके निकट ही उस कपोतकी स्त्री पानीमें भींगकर बेहोश पड़ी थी। पापी बहेलियेने उसे उठाकर अपने पिंजड़ेमें रख लिया और जिस पेड़पर बैठा हुआ वह कपोत अपनी प्रियाकी विरह-वेदनासे अधीर होकर विलाप कर रहा था, उसीके नीचे कुछ घासपात बिछाकर सो गया।

बहेलियेके पिञ्जड़ेमें बन्द कपोती अपने पतिका विरह-विलाप सुनकर मन ही मन कहने लगी—अहा! मैं बड़ी ही

सौभाग्यवती हूं। मुझमें कोई गुण न होनेपर प्राणपति मेरा इतना बखान कर रहे हैं। जिस नारीका पति उससे सन्तुष्ट रहता है, उससे बढ़कर सौभाग्यवती और कोई नहीं, क्योंकि पतिके प्रसन्न रहनेसे स्त्रीपर सभी देवता प्रसन्न रहते हैं। पति ही अबलाओंके देवता हैं, इस बातके साक्षी स्वयं अग्निदेव हैं। जिस तरह दावानलमें पड़कर फूलोंसे लदी हुई लता जल जाती है, उसी तरह पतिके असन्तुष्ट होनेपर भार्य्या भी भस्म हो जाती है। इस तरह मन ही मन अपने सौभाग्यको सराहती हुई कपोतीने अपने पतिको सम्बोधन कर कहा,—"प्राणनाथ! मैं आपकी भलाईके लिये एक बात कहती हूं। आप कृपाकर उसे सुनें। देखिये, यह भूखाप्यासा शीतका सताया बहेलिया आपकी शरणमें आया है। इस समय आप इसका सत्कार कीजिये। ब्राह्मण, गर्भवती, गौ और शरणागतकी रक्षा करना परमधर्म है। जो गृहस्थ यथाशक्ति धर्म करता है, उसे अक्षय पुण्य प्राप्त होता है। आपने पुत्र और कन्याकासुख देख लिया है। अब आप ऐसा कीजिये, जिसमें बहेलियेकी सन्तुष्टि हो। नाथ! आप मेरे लिये चिन्ता न करें। मेरे न रहनेपर जीवनयात्रा निर्व्वाहार्थ आप दूसरी स्त्रीसे विवाह कर सकते हैं।"

अपनी धर्मपत्नीकी धर्मपूर्ण सलाह सुनकर कपोत विशेष प्रसन्न हुआ। बहेलियेका यथाविधि सत्कार कर उसने उसका कुशल आदि पूछकर कहा,—"आप किसी बातका दुःख

न करें। समझिये, कि आप इस समय अपने ही घरमें हैं। बताइये, मैं आपकी कौन सी सेवा करूं? आप इस समय हमारी शरणमें आये हैं। मैं प्रेमसे पूछता हूं, आप शीघ्र बताइये, आप क्या चाहते हैं? आप आज हमारे अतिथि हैं। आपकी सेवा करना हमारा परमधर्म्म है। यदि शत्रु भी अतिथि बनकर द्वारपर आये तो उसकी सेवा करनी चाहिये। अपने काटनेवालेको भी पेड़ छाया प्रदान करता है। इसलिये आपकी सेवा करना मेरा प्रधान कर्त्तव्य है। पञ्चमहायज्ञ करनेवाले गृहस्थको शरणागतकी सेवा अवश्य करनी चाहिये। गृहस्थाश्रममें रहकर भी जो व्यक्ति मोहवश पञ्च-महायज्ञोंसे विमुख रहता है, वह इस लोकमें दुःख और पर-लोकमें अशान्ति प्राप्त करता है। इसलिये आप मुझपर विश्वास कीजिये। इस समय आप जो आज्ञा देंगे, मैं अवश्य ही उसका पालन करूंगा। अब आप शोक छोड़िये।" कपोतकी बातें सुनकर बहेलियेने कहा,—"जाड़ेसे बड़ी तकलीफ पा रहा हूं। यदि होसके तो कोई ऐसा उपाय करो, जिसमें जाड़ेसे छुटकारा मिले।"

बहेलियेकी बात सुनकर कपोत अपने घोंसलेसे निकलकर आगकी खोजमें चला गया और थोड़ी देर बाद आग लाकर उसके आगे गिरा दिया। इसके बाद सूखे तिनके तथा पत्ते आदि एकट्ठे कर लाया। बहेलिया बड़े आनन्दसे आग तापने लगा। इसके बाद उसने कबूतरसे कहा, कि मुझे

बहुत भूख लगी है; कुछ खिलावो। कबूतरने कहा, कि मैं वनका एक पक्षी हूं। जिस तरह ऋषिलोग कलके लिये कोई चीज नहीं रखते, उसी तरह मेरे पास भी खानेको कोई चीज मौजूद नहीं। मैं अपने खानेके लिये प्रतिदिन लाता हूं और जो कुछ लाता हूं सब उसी दिन समाप्त हो जाता है। ऐसी दशामें समझमें नहीं आता, कि मैं आपको क्या खिलाऊं? यह कह कपोत उदास मनसे अपनी सञ्चय न करनेकी आदतपर अफसोस करने लगा। थोड़ी देर चुप रहनेके बाद फिर उसने कहा,—"अच्छा ठहरिये, मैं आपके लिये भोजनको तदबीर करता हूं।" यह कहकर कबूतर फिर सूखे तृण आदि लाकर आगपर छोड़ने लगा। जब आग अच्छी तरह जल उठी तो बड़ी खुशीसे कपोत कहने लगा,—"मैंने बड़ोंसे सुना है, कि अतिथि-पूजासे बढ़कर धर्म दूसरा नहीं। इसलिये हे प्रियदर्शन! अब आप मुझपर कृपा कीजिये। अतिथि पूजापर मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है।" यह कह कपोत बड़ी खुशीसे आगमें कूद पड़ा। कबूतरका यह अद्भुत आत्मोत्सर्ग देख बहेलियेके जीमें भी दया आ गई। वह मनमें अफसोस करने लगा। हाय! मैं कैसा निष्ठुर, निर्दयी और निन्दनीय हूं। मेरे कर्मदोषसे मुझे घोर अधर्म होगा। इस तरह वह बहेलिया बड़ी देरतक अपने नीच कर्म्मोंके लिये पश्चात्ताप करता रहा।

भूखा हुआ बहेलिया जलते हुए कपोतको ओर देखकर

फिर मन ही मन कहने लगा। हाय! मैंने बड़ा ही अनर्थ कर डाला। मैं बड़ा ही बुद्धिहीन हूं। इस दुष्कर्मके लिये अवश्य मुझे भयानक पाप लगेगा। इस तरह बार बार अपनी निन्दा करता हुआ वह बहेलिया पछताने लगा। मैं बड़ा ही निष्ठुर हूं, इसीलिये आज इस महात्मा कबूतरने अपना शरीर जलाकर मुझे धिक्कार देते हुए यह उपदेश दिया है। क्या ही आश्चर्यकी बात है, कि कबूतरने शरीर दान कर अतिथि सत्कार किया। अब मैं अपनी प्रियपत्नी और बालबच्चोंको छोड़कर अपना प्राण दे डालूंगा। परम धार्म्मिक कबूतरने जैसी शिक्षा दी है, मैं उसीका अवलम्बन करूंगा। यह कह पापी बहेलियेने पिञ्जड़ेमें बन्द कपोतीको छोड़ दिया और पिञ्जड़ा तथा कम्पा आदि फेंककर वहांसे चला गया।

बहेलियेके चले जानेपर विधवा कपोती रोने लगी। पति के गुणोंको यादकर कहने लगी,—नाथ! आपने कभी कोई ऐसा काम नहीं किया था, जो मुझे अप्रिय हो। बहुतसे पुत्रोंवाली स्त्री भी पतिके मरनेपर शोक करती है। पतिहीना दुःखिनी स्त्रीका दुःख देखकर उसके हितैषियोंको भी बड़ा दुःख होता है। आपने बराबर मेरा पालन किया है। मधुर और मनोहर बातें सुनाकर आप मेरी बड़ी खातिर करते थे। पहाड़ोंकी कन्दराओंमें, झरनोंके निकट तथा सुन्दर पेड़ोंपर बैठकर मैंने आपके साथ आनन्द मनाया है। आकाशमें उड़ने के समय भी मैं आपका साथ नहीं छोड़ती थी। हे नाथ!

पहले मैंने आपके साथ जो आनन्द किया है, वह अब कुछ भी न प्राप्त होगा। पिता, भाई और पुत्र आदिसे जो सुख प्राप्त होता है, उसकी सीमा होती है, परन्तु पति द्वारा जो सुख मिलता है, उसकी सीमा नहीं होती। ऐसे पतिकी कौन स्त्री पूजा नहीं किया करती? पतिके समान परम हितैषी और सुख देनेवाला संसारमें दूसरा नहीं। अबलाओंका एकमात्र अवलम्बन पति ही है। हे नाथ! अब तुम्हारे बिना मेरा जीना वृथा है। कौन सती पतिहीना होकर जीनेकी इच्छा करती है? अत्यन्त दुःखिता कपोती अपने प्राणपतिके लिये इस प्रकार विलाप करती हुई प्रज्ज्वलित अग्निमें कूद पड़ी। इसके बाद उसने देखा, कि उसका पति सुन्दर देह धारण कर सुन्दर विमानपर बैठा है तथा सब मुक्तिया उसकी पूजा कर रही है। उत्तम वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित सैकड़ों विमान-विहारियोंने उसे घेर लिया है। उसी विमानपर चढ़ स्वर्गमें जाकर कपोती भी अपने प्रियतमके साथ विहार करने लगी।

उपर्युक्त अवतरणों द्वारा हमारी पाठिकायें अतिथि सेवाका महत्व अच्छी तरह समझ गई होंगी। नि.सन्देह अपने घर आये हुए अभ्यागतकी सेवा करनेसे बढ़कर पुण्यकार्य्य दूसरा नहीं। घर आये हुए अभ्यागतों और पाहुनोंका समुचित सत्कार करना गृहिणियोंका ही कार्य्य है। अतिथि-सेवासे कितने ही लौकिक लाभ होते हैं। जिस गृहस्थके यहां अतिथियोंका आदर होता है, वहां साधु महात्माओंका

शुभागमन होता रहता है तथा उनके मसाङ्गसे गृहस्थको देशकाल तथा धर्म सम्बन्धीय विषयोंका ज्ञान प्राप्त होता है। इसीलिये अति प्राचीन कालसे हमारे देशमें अतिथि-सेवा गृहिणियोंका एक श्रेष्ट कर्त्तव्य माना गया है। पाण्डु-पत्नी भगवती कुन्ती तथा कर्णकी स्त्री आदि आर्य्य-रमणियां बराबर अतिथि-सेवा किया करती थीं। महाभारतमें लिखा है, कि महर्षि दुर्व्वासाके लिये मिष्ठान बनाते हुए कुन्तीदेवीका हाथ जल गया था तथा कर्णकी स्त्रीने अतिथिकी इच्छा पूरी करनेके लिये अपने प्रिय पुत्रका गला काट डाला था। इससे प्रतीत होता है, कि अतिथि-सेवा गृहिणियोंका प्रधान धर्म है, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो हमारे धर्मशास्त्रोंमें इस सेवाका इतना गौरव न दिखाया गया होता तथा कुन्ती और कर्णकी पत्नीको इतना त्याग स्वीकार करनेकी आवश्यकता न होती।

दुःखकी बात है, कि अन्यान्य धार्म्मिक कार्यों की भांति हमारे समाजकी गृहिणियां इस अत्यावश्यक धर्मको भी भूल गई हैं। आजकल अतिथिके आनेकी खबर सुनते ही गृहि-णियां कुढ़ने लगती है। यह बड़ा ही अनुचित आदत है। हमारी पाठिकाओंको चाहिये, कि यथासाध्य अतिथि अभ्या-गतोंकी सेवामें कभी त्रुटि न करें।

छठां उपदेश।

मितव्यय और सञ्चय।

"जो जीवनके आरम्भसे ही कम खर्च करना नहीं सीखता, उससे स्वदेश अथवा समाजको कोई आशा नहीं।"

"जो दिनको मोमबत्ती जलाते हैं, उनके घर रातको अँधेरा रहता है।" सद्भाव शतक।

जीवन यात्रा निबाहनेके लिये धनको बड़ी आवश्यकता होती है। यद्यपि पृथिवी धन रत्नकी खान है, तथापि धन पैदा करनेके लिये यत्न, परिश्रम और मूलधनकी आवश्यकता होती है। परिश्रमसे धन प्राप्त होता है और कमखर्चीसे बचता है।

यहां यह बताने को आवश्यकता नहीं, कि धन किसे कहते हैं और उसके कमाने या एकत्र करनेका साधन क्या है। हमें अपने जीवन में जिन चीजों की आवश्यकता पड़ती है, वे ही धन है। रुपया पैसा आदि अर्थ है। परन्तु आजकल रुपये-पैसेसे अन्यान्य जरूरी चीजें बदल लेनेमें बड़ी सुविधा होती है, इसलिये उन्हें भी धनही समझना चाहिये। उस धनको किस तरह खर्च करना चाहिये, यही हमारे विचारनेका विषय है। पुरुष धनोपार्जन करते तथा गृहिणियां उसे उचित रीतिसे व्यय, सञ्चय तथा उसकी रक्षा करती हैं। यही साधारण नियम हमारे

देशमें अति प्राचीन कालसे प्रचलित है। स्मृति-संहितामें लिखा है, कि ग्रामको गृहिणियों को दिनभरकी आमदनी और खर्च का हिसाब ठीककर डालना चाहिये। अग्निपुराण में लिखा है, कि अधिक खर्च करने वाली पत्नी को पति परित्याग कर सकता है। इसके अतिरिक्त आधुनिक सभ्य देशोंमें भी धनके व्यय, संचय और रक्षाका विशेषभार स्त्रियों परही निर्भर है।

एक बंगाली विद्वानने लिखा है, कि धार्म्मिका तथा सच्चरित्रा स्त्रियां धनको बचाती तथा उचित रीति से खर्च करती हैं। जिस गृहमें ऐसी लक्ष्मीरूपिणी गृहिणियां हैं, उसका भण्डार सदा धनधान्यसे परिपूर्ण रहता है।

"कमखर्च करनेवाली स्त्री अपने पति तथा पुत्रों को भी कम खर्च करना सिखाती है। जो स्त्री सञ्चयके लाभोंको समझती है, वह परिवारभर को सञ्चय करनेकी ओर खींच सकती है। ऐसी गुणवती स्त्रीके हाथसे बना हुआ शाक भी अमृतकी तरह स्वादिष्ट लगता है।"

गृहिणी चाहे किसी धनीके घरकी हो अथवा निर्धनकी। दोनों को अपनी आमदनी समझकर खर्च करना चाहिये। क्योंकि अच्छी तरह सोच विचारकर, आमदनीकी ओर ध्यान रखकर खर्च करनेमें दरिद्रता का भय नहीं रहता। बहुतसे लोग ऋण लेकर खर्च करते हैं। वे सदा कष्ट उठाते । ऋण लेकर दानधर्म्म करना भी उचित नहीं। क्योंकि

ऋण परिशोध न करने के कारण जो पाप होता है, वह उस पुण्यसे भी बढ़ जाता है। साथही, दाताकी अपेक्षा न्यायपरायण मनुष्यकी ही अधिक नामवरी भी होती है। कम खर्च करने वाली बुद्धिमती स्त्री थोड़ी आमदनीमें भी अपनी गृहस्थी का सब खर्च अच्छी तरह चला सकती है। पति जो कुछ उपार्ज्जन कर लाता हो, स्त्रीको उसीपर सन्तोष करना चाहिये। पड़ोसियोंका धन देखकर उदास होना, तथा धनके लिये पतिको ताना मारना महा मूर्खता है। कुछ लोग कमखर्च करने वालोंको कंजूस वा कृपण कहकर उनकी निन्दा किया करते हैं, परन्तु वास्तवमें कमखर्ची और कंजूसी एक ही चीज नहीं। उचित खर्च करने वालोंकी तुलना कंजूसोंसे नहीं हो सकती। क्योंकि उचित खर्च करने वालोंमें उदारता होती है और कंजूस महा स्वार्थी होते हैं। वे केवल अपनी ही भलाईकी चिन्ता किया करते हैं। अन्न रहते हुए भी जो भूखेको नहीं खिलाता, जल मौजूद रहने परभी जो प्यासे हुएको नहीं पिलाता तथा द्वारपर आये हुए अभ्यागतका अनादर करता है, उस कृपणको बार बार धिक्कार है। साथही जो दया और धर्म्मके वशीभूत हो ऋण लेकर परोपकार किया करते हैं, वे दयावान होनेपर भी दूरदर्शी वा न्यायवान नहीं कहला सकते। अपने बाहुबलसे धनोपार्ज्जन कर परोपकार करना ही सच्चे परोपकारीका लक्षण है।

हमारे देशमें ऐसे बहुतसे मनुष्य हैं, जो अपने ऐश-आरामके

लिये तो खूब खर्च करते हैं परन्तु अपने परिजनोंकी खबर तक नहीं लेते। बहुतसे ऐसे हैं जो अपनी कमाई स्वयं खर्च कर जाते हैं, तथा उनकी सन्तान दाने दानेके लिये तरसतो फिरतो है। अपनी जीवितावस्थामें जिस लड़केको वे सोनेके गहनोंसे लादे रहते थे, जिसके विवाहमें हजारों रुपयेकी आतशबाजी उड़ाटी गई थी, वही—उनका प्यारा लड़का अन्तमें भीख माँगता फिरता है। जो स्त्रियां एक दिन राज-रानीकी तरह ठाट बाटसे रहती थीं, सोनेके मोटे मोटे गहने जिनकी देहपर लदे रहते थे, वेही अपने अभिभावकों की फजूलखर्चीके कारण अन्तमें पड़ोसियोंके घर 'पिसौनो' कर पेट पालती हैं। फजूल-खर्चीका इतना भयकर परिणाम देखकर भी जो उससे घृणा नहीं करते, उन्हें आंख रहते हुए भी अन्धा ही कहना ठीक है। इसलिये जहांतक हो सके, खूब सावधानीसे, उचित रीतिसे खर्च करनाही उचित है।

जो परोपकारार्थ उचित खर्च करनेका अभ्यास करते हैं, भूखों-को भोजन देनेकी इच्छासे स्वय एक रोटी कम खाते हैं और दूसरोंके सुखके लिये अपने सुखमें कमी करते हैं, वेही महात्मा और महापुरुष हैं। विलायतके विख्यात नीतिज्ञ महात्मा स्माइसने लिखा है, कि उचित रीतिसे खर्च करनेकी अपेक्षा धनोपार्जन करना सहज है। अर्थात् रुपये कमानेमें उतना कठिन नहीं, परन्तु उसका यथोचित व्यवहार बड़ाही कठिन है।

बहुतसे मनुष्य धन कमाने के लिये बहुतसी तदबीरें जानते

हैं, परन्तु संसारमें ऐसे मनुष्य बहुत कम हैं, जो उचितरीतिसे-खर्च करना जानते हैं। धनकी रक्षा तथा मितव्ययता गृहिणियों-का धर्म है। परन्तु दुःखकी बातहै, कि आजकलकी गृहिणियां इस अत्यावश्यक विषयकी ओर बहुत कम ध्यान देती हैं।

गृहस्थी छोटी हो या बड़ी,खर्च सब जगह होता है। कहीं दो-चार ही रुपयेमें महीने भरका खर्च चलता है और कहीं एकही दिनमें दो चार रुपये खर्च हो जाते हैं। इन दोनों प्रकार की गृहस्थियोंकी मालिकिनोंको अपने घरकी आमदनी देखकर खर्च करना चाहिये। बहुतसी स्त्रियां सोचती हैं, कि हमारे घरका खर्च तो थोड़ा है, इसके लिये हिसाब-किताबकी क्या जरूरत है? वास्तवमें ऐसा सोचना उनकी अदूरदर्शिता है। क्योंकि धनियोंकी अपेक्षा गरीबोंको ही ठीक ठीक समझ बूझकर खर्च करने की आवश्यकता है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि रुपया केवल चीजें बदलने-का साधनमात्र है। वास्तविक धन चीजेंही है, जिनकी हमें प्रति दिन आवश्यकता होती है। वास्तवमें रुपया खर्चभी नहीं होता, प्रत्युत किसी वस्तुके बदलेमें हस्तान्तरित मात्र हुआ करता है। इसलिये चीजोंकी रक्षा करना बहुत जरूरी है। सम्भव है, कि सब जगह गृहिणियोंके हाथमें रुपये पैसे न रहते हों। किन्तु गृहकी समस्त प्रयोजनीय चीजें सब जगह उन्हींके हाथमें रहती हैं, इसलिये उनकी रक्षा करना भी उन्हींका कर्त्तव्य है।

संसारमें धनी और दरिद्र दोनों ही हैं, परन्तु इनमें वास्तविक सुखी कौन है, यह बताना मुश्किल है। क्योंकि मनका सुखही सच्चा सुख है, जिसके मनमें शान्ति और सन्तोष है, वही सच्चा सुखी है। धनके सम्बन्धमें भी ऐसाही है। जो अपनी आमदनीके अनुसार उचित खर्च करते हैं तथा ऋण नहीं लेते, वे यदि आगेके लिये कुछ धन न बटोर सकें तो भी उन्हें सुखी ही कहना चाहिये। क्योंकि ऋण चुकानेकी चिन्तामें पड़े रहने के कारण उनके मनमें कभी अशान्तिका आविर्भाव नहीं होता।

अपनी प्रतिदिन की आमदनीमेंसे कुछ न कुछ बचाकर रखना ही भावी सुखको जड़ जमाना है। तथा उचित रीतिसे खर्च करना ही सञ्चय और धनवृद्धिका उपाय है। प्रत्येक मनुष्यके साथ विपद्-आपद लगी रहती है। सम्भव है, कि आज जिस स्त्रीका पति बहुत अच्छी अवस्थामें है, खूब धनोपार्ज्जन कर सकता है, कल वह रोगग्रस्त होकर सदाके लिये बेकाम होजाय। ऐसी दशामें उसकी आमदनीकी राह बिल्कुलही बन्द हो जायेगी, परन्तु खर्च नहीं रुकेगा। फलतः यदि पहलेसे ही कुछ धन एकत्र कर रखा न गया हो तो जिस विकट विपत्ति का सामना करना पड़ेगा, उसे चतुरा पाठिकायें अच्छी तरह समझ सकती हैं।

एक बात और विचारने की है। विवाह होनेके पहले पतिको अपनी पत्नीके लिये कुछ भी खर्च करना नहीं पड़ता।

परन्तु विवाह होनेके साथही उसके शिरपर एक और मनुष्यके भरण-पोषणका भार आ पड़ता है। इसके बाद बालबच्चे पैदा होते हैं, इसलिये खर्चकी मात्रा और भी बढ़जाती है। परन्तु आमदनीका बढ़ना निश्चित नहीं। ऐसी दशामें यदि पहलेसे ही कुछ बचानेकी तदबीर नहीं की जाती तो समयपर खर्चकी तगीके कारण बड़ा कष्ट होने लगता है। यही सोच कर चतुरा गृहिणिया पहलेसे ही कुछ न कुछ सञ्चय कर लिया करती है। यह कभी न समझना चाहिये कि आमदनी बढ़नेसे ही सञ्चय हो सकता है। उचित खर्च ही सञ्चयका साधन है। आमदनी थोडी हो वा बहुत, जबतक खर्चका दरवाजा खुला रहेगा, तबतक बचत कुछ भी न होगी। अतएव यदि भविष्यके लिये कुछ बचानेकी इच्छा हो तो सबसे पहले खर्चमें ही कमी करनी चाहिये। प्रतिदिनके खर्चसे कुछ न कुछ बचालेना कोई मुश्किल बात नहीं। प्रत्येक अवस्थाका मनुष्य इसे बहुत अच्छी तरह कर सकता है। इस बातका निर्णय करलेना बड़ा ही मुश्किल है, कि जीवनमें हमारे लिये कौनसी वस्तु अत्यावश्यक तथा कौनसी अनावश्यक है, क्योंकि जो वस्तु एकके लिये निष्प्रयोजनीय है, वही दूसरेके लिए बड़े कामकी हो सकती है। इसलिये अपनी अपनी आमदनीके अनुसार अपनी अपनी जरूरी चीजोंका विचार कर लेना चाहिये, नहीं तो किसी भी अवस्थाका मनुष्य कुछ बचा नहीं सकता।

आमदनीसे कितना बचाकर कितना खर्च करना चाहिये

इस विषय में धन-विज्ञान वालोंका मत एक न होनेपर भी बचाना जरूरी है इस विषयमें कोई मतभेद नहीं। कुछ लोगोंकी राय है, कि आमदनीका आधा बचाना चाहिये। कुछ लोग तीन हिस्से खर्च कर केवल एक हिस्सा बचानेकी सलाह देते हैं, और कुछ लोग दो हिस्से खर्च कर एक हिस्सा बचानेके पक्षपाती हैं। परन्तु अपना नितान्त आवश्यक खर्च चलाकर, दूसरोंके लिये, दीन दुखियोंके उपकारके लिये, धर्म्म, जाति तथा देशकी भलाईके लिये जो जितनाही बचा सके, उतनाही अच्छा है। दुर्भाग्यवश आजकल हमारे देशके अधिकांश गृहस्थोंकी आर्थिक दशा इतनी बिगड़ी हुई है, कि आधा और तीसरा अंश तो क्या चौथाई बचाना भी उनके लिये मुश्किल होता है। अथच भविष्यके लिये कुछ सञ्चय न कर सकनेके कारण उनकी सन्तानको भीख तक मांगनेकी नौबत आ पड़ती है। एक दिन जो बड़े सुखसे रहते थे, वे सञ्चय न करनेके कारण अन्तमें दाने दानेके लिये तरस कर मर जाते हैं। इसलिये जैसे हो, कुछ न कुछ बचाना अत्यावश्यक है।

पाठिकाओंको यह कभी न सोचना चाहिये, कि घरका खर्च घटाकर कुछ बचालेनेकी जरूरतको समझ लेनेसे ही वे उचित खर्च करनेवाली और सञ्चय करनेवाली बनजायँगी। वरन् इस गुणको कार्य्य में परिणत करनेका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। मान लीजिये, कि किसी स्त्रीका पति महीने में

चालीस रुपये उपार्ज्जन करता है। उसमेंसे वह दस रुपये बचाना चाहती है। जब रुपये उसके हाथमें आते हैं, तब तीस रुपये घरके लिये अलग निकाल बाकी दस रुपये वह अपनी पिटारीमें रख देती है। उन तीस रुपयोंमे घरका खर्च चले वा न चले, इसकी उसे कुछ भी परवाह नहीं। लड़केके लिये दूध नहीं, अपने लिये साड़ी नहीं और भाण्डारमें अन्न नहीं, परन्तु इन बातोंकी उसे कोई चिन्ता नहीं। बहुतसी गृहिणियां इसी उपायसे बचाना जानती हैं। परन्तु घरका आवश्यक खर्च निबाहकर जो अपनी अवस्थाके अनुसार कुछ बचा सकती है, वही गृहिणी चतुर और बुद्धिमती समझी जाती है।

निर्दिष्ट आमदनी द्वारा घरका सब खर्च चलाकर कुछ बचानेके लिये बुद्धि और अभिज्ञताकी आवश्यकता है। संसार-में कोई ऐसी वस्तु नहीं जो कभी किसी काममें न आती हो। एक छोटासा तिनका भी समयपर बड़ा काम देता है। इस-लिये छोटीसे छोटी—तुच्छसे तुच्छ—वस्तुको भी बड़े यत्नसे रखना चाहिये। एक समय जिस वस्तुको हम बिल्कुल बेकार समझकर फेंक देते हैं, दूसरे समय, काम पड़ने पर, उसीके लिये बड़ा कष्ट सहना पड़ता है।

जो गृहिणी घरकी छोटी छोटी चीजोंको यत्नसे नहीं रखती; किसी चीजको वृथा नष्ट होते देख दुःखी नहीं होती उसे समय आ पड़नेपर, उन्हीं तुच्छ चीजोंके लिये बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। छोटी और तुच्छ चीजोंको यत्नसे रखनेसे बड़ी तथा

कामकी चीजोंको भी यत्नसे रखनेकी आदत पड़ जाती है तथा चीजोंकी रक्षा करनेका ढंग भी मालूम होजाता है। पैसेको यत्नपूर्व्वक रखनेसे रुपये भी यत्नपूर्व्वक रखे जा सकते हैं। क्योंकि जिसे पैसेसे प्रेम है, वह रुपयेको कभी व्यर्थ नहीं खो सकता।

एक अङ्गरेजने लिखा है,—"किसी वस्तुको तुच्छ समझ उसका निरादर न करो। यह ध्यान रहे, कि छोटे छोटे बालू-के कणोंके ढेरसे ही सुविशाल पर्वत बनता है, एक एक क्षण-का ही वर्ष होता है और छोटी छोटी घटनाओं द्वारा ही मनुष्य का जीवन गठित होता है।" एक और अँगरेजने लिखा है,—"कभी कभी धनियोंको लोग कृपण कहकर उनपर कलङ्कारोपण किया करते हैं, क्योंकि वे छोटी छोटी बातोंपर भी ध्यान रखते हैं। परन्तु यदि विचार किया जाय तो अच्छी तरह समझमें आ जायगा, कि यदि इस तरह हिसाब न लगाया जाय तो पता नहीं लग सकता, कि कौन खर्च उचित और कौन अनुचित है।"

इङ्गलैण्डमें 'मेञ्चेस्टर' नामका एक नगर है। वहाके एक कारीगरने किसी रईसकी समस्त सम्पत्ति खरीद ली। खरीदी हुई सम्पत्तिपर अपना कबजा करने जाकर खरीदारने देखा, कि एक आलमारी स्थानान्तरित करदी गई है। उसने रईससे उसके बारेमें पूछताछ की। उन्होंने उत्तर दिया, कि आल-मारीको हटाकर मैंने अलग रख लिया है। मैंने यह कभी

नहीं सोचा था, कि इतनी सम्पत्तिमें आप एक छोटोसी आलमारीके लिये पूछताछ करेंगे। उसने कहा,—"महाशय, यदि मैं अपने जीवनमें छोटी छोटी चीजोंकी ओर दृष्टि न रखता तो आज इतनी बड़ी सम्पत्ति खरीदनेकी योग्यता न प्राप्त कर सकता, और आप यदि छोटी छोटी चीजोंपर ध्यान दिया करते तो आज आपको अपनी सम्पत्ति बेचनेकी जरूरत ही न पड़ती।"*

पैसा वही कामका है जो अपने पास है। हमारे देशमें ऐसे बहुतसे मनुष्य हैं, जो भावी आयके भरोसेपर खर्च कर डालते हैं। पीछे यदि उस भावी आमदनीमें किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित हो जाती है तो ऋणग्रस्त होनेके लिये वाध्य होते हैं। इसलिये भविष्यकी आमदनीके भरोसे खर्च करना महा मूर्खता है।

हमारे देशमें पुत्र होनेके अवसरपर, पुत्रके नाम करणके समय तथा विवाह आदिमें अन्धाधुन्ध खर्च करनेकी बड़ी ही अनुचित परिपाटी चल पड़ी है। इससे प्रतिदिन कितने ही घरोंका सत्यानाश हो जाता है। विवाहादिमें बहुतसा द्रव्य मुफ्तखोरोंके लिये खर्च करना पड़ता है। कितने ही मूर्ख अपने लड़केके विवाहमें पैतृक सम्पत्तितक बेच डालते हैं, और कितने ही अपनी हैसियतसे अधिक खर्चकर भयङ्कर ऋणजालमें फंस जाते हैं। कुछ लोग भविष्यमें होनेवाली आम-

* स्माइलस् कृत सेलफहेल्प।

टनोंको आशामें पड़कर भी व्यर्थ खर्च कर दिया करते हैं और अन्तमें दरिद्र बन जाते हैं।

भावी आमदनीके विषयमें हमारे देशमें एक बड़ी मजेदार कहानी प्रचलित है। यहां उसका उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। कहानी इस प्रकार है,—एक मजदूर किसीका तेलका घड़ा पहुंचाने जा रहा था और मन ही मन सोच रहा था, कि इसकी मजदूरी मुझे दो पैसे मिलेगी। इस तरह यदि सोलह घड़े पहुंचानेके लिये मिल जायँ तो शीघ्र ही मुझे एक अठन्नी मिल जायगी। अठन्नीमें एक छोटीसी बकरी खरीदूंगा। कुछ दिनों बाद वह बड़ी होगी और बहुतसे बच्चे देगी। उन्हें दस रुपयेपर बेचकर एक गाय खरीद लूंगा। गायका दूध और बछड़ा बेचकर सौ रुपये बना लूंगा। इसके बाद घोड़े खरीदूं गा। घोड़ोंको बेचनेपर पांचसौ नकद हाथ लगेंगे। फिर क्या है, एक सुन्दरी स्त्रीसे विवाह करूंगा। विवाह होनेपर लड़के बाले होंगे और बड़े आनन्दसे जीवन बीतेगा। इसके बाद फिर मैं अपने गांवका चौधरी बन जाऊंगा। दिनरात लोग मुझे घेरे रहेंगे। इतनेमें बड़ा लड़का आकर कहेगा,—"पिताजी! चलिये भोजन कर लीजिये।" मैं इस तरह सिर हिलाकर कहूं गा,—"ठहरो, अभी नहीं खाऊंगा!" मनहीमन इसतरह कह मूर्ख मज़दूरने सिर हिला दिया। सिरके हिलाते ही तेलका घड़ा धड़ामसे नीचे गिरकर फट गया। तेलका मालिक पीछे पीछे आ रहा था, इस

असावधानीके लिये उसने उसे कई थप्पड़ लगाये। उस समय उस अभागीकी मोहनिद्रा टूटी और तेल वालेका जो नुकसान हुआ था,उसको पूरा करनेमें ही उसको सारी जिन्दगी बीत गई।

हमारे देशमें ऐसे मनमोदक खाने वालोंकी कमी नहीं है। बहुतसे मनुष्य ऐसे मिलेंगे, जो दिनरात इसी तरह-की उधेड़बुनमें लगे रहते हैं। अस्तु, चाहे जिस विषयमें खर्च करना हो, जबतक रुपया हाथमें न आजाय तबतक भविष्यकी आशाके फेरमें किसीसे उधार लेकर खर्च नहीं करना चाहिये। समय आपड़नेपर कभी कभी उधार लेकर काम चलानेकी जरूरत पड़ जाती है, परन्तु उसका परिणाम कभी भी अच्छा नहीं होता।

बहुतसे लोग उधार चीजें खरीदकर व्यर्थ नुकसान उठाते हैं। क्योंकि उधार लेनेमें सोलह आनेकी चीजका दाम सत्तरह आने देने पड़ते हैं। इसके सिवा उधार चीज खरीदनेसे खर्च-की कोई सीमा नहीं रह सकती। जिस तरह भावी आशामें पड़कर ऋण लेनेवाले विपत्तिमें पड़ते हैं, उसी तरह उधार चीजें लेनेवाले भी दुःख उठाते हैं। क्योंकि उधार चीजें मिलनेकी सुविधा रहनेसे अवश्य ही जरूरतसे अधिक चीजें आजाती हैं। यदि उधार मिलनेकी सुविधा हो और लड़का जिद करे, कि मुझे रेशमी कपड़ेका अँगरखा बनवादो तो तुरन्त ही बनवा देनेकी इच्छा होगी और सहज ही ऋणका बोझ शिरपर चढ़ जायगा। इसलिये जहांतक होसके उधार

चीज नहीं लेनी चाहिये। जो गृहिणी उधारका कारबार नहीं करती, उसका लड़का यदि रेशमी कपड़ेका अँगरखा पहनना चाहेगा तो जबतक दामकी सुविधा न होगी, तबतक वह कदापि अपने लड़केकी इच्छा पूरी न करेगी। इस तरह यदि विचार किया जाय तो मालूम होगा, कि खर्चका पथ सुगम बना लेना बड़ा ही अनुचित है। बहुतसे लोग ऐसे भी होते हैं,जो पासमें रुपया रहते हुए भी उधार चीज लेना पसन्द करते हैं। इस तरहके मनुष्योंमें बहुतसे जो मूर्ख नहीं होते—वे प्रायः बुरी नीयतसे ही उधार लेते हैं।

यदि आमदनी और खर्चका एक अन्दाजी हिसाब लगाकर उसीके अनुसार कार्य्य किया जाय तो बड़ी सुविधा होती है और खर्च भी बहुत कुछ घट जाता है। मान लीजिये, कि हमारी किसी पाठिकाके पतिकी आमदनी महीनेमें एक सौ रुपये हैं तो एक वर्ष अर्थात् बारह महीनेकी आमदनी बारह सौ हुई। अपनी गृहस्थीकी अवस्थाके अनुसार गृहिणी उस आमदनीका चौथाई भाग बचाना चाहती है। बाकी नौ सौ रुपयोंमें वर्ष भरका खर्च चलाना है, इसलिये परिवारकी जनसंख्या और अवस्थाके अनुसार यदि सालभरके खर्चकी एक अन्दाजी फिहरिस्त (बजट) बना ली जाय तो बड़ी सुविधा होगी।

अपनी अपनी अवस्थाके अनुसार भिन्न भिन्न व्यक्तियोंका खर्च भिन्न भिन्न प्रकारका होता है, परन्तु साधारणतः बहुतसे खर्च ऐसे हैं, जो प्रायः सबके घर होते हैं:—जैसे भोजन, कपड़े, घर

राजकर, सन्तानकी शिक्षा, दवा-इलाज, दान-दक्षिणा, पूजा-पाठ या धर्मकर्म, घरकी चीजें, पुस्तकें, और बिरादरीमें 'सिरनी-सौगात' आदि। इनके सिवा परिवारके हर एक मनुष्यको अपने विशेष विशेष कामोंके लिये भी खर्चकी जरूरत होती है। इसी तरहकी एक फिहरिस्त बनाकर सालभरका अन्दाजी हिसाब लगा लेना चाहिये। यह कोई बात नहीं, कि बड़े परिवार वाले ही इस तरहका अन्दाजी हिसाब लगाया करें। छोटे परिवारमें भी इस तरह काम चलानेमें बड़ी आसानी पड़ती है।

आमदनी और खर्चका ठीक ठीक जमाखर्च करते जाना बहुत जरूरी है। प्रतिदिनका खर्च जमामेंसे घटा देनेसे यह मालूम रहता है, कि तहवीलमें और कितने रुपये हैं। ऐसा करनेसे सोच समझकर खर्च करनेमें बड़ी सुविधा होती है और यह भी मालूम होता रहता है, कितने रुपये किस काममें खर्च हुए तथा कोई खर्च अनुचित या अनावश्यक तो नहीं हुआ। कितने ही मूर्ख कहा करते हैं कि मैं अपना रुपया खर्च करता हूं, इसके लिये जमाखर्च करने अथवा हिसाब रखनेकी क्या जरूरत है। परन्तु यह उनकी भूल है। हिसाब रखनेके लाभोंके विषयमें कुछ लिखनेकी आवश्यकता नहीं; क्योंकि सभी संसारी मनुष्य जानते हैं, कि हिसाब एक आवश्यक वस्तु है। आजकल बहुतसी स्त्रियां जो पढ़ना-लिखना नहीं जानतीं, वे चूनेका दाग देकर अथवा कंकड़ी रखकर हिसाब लगाकर समझ लेती हैं।

गृहस्थीका कार्य चलानेके लिये बहुत लागोंसे कारबार रखना पड़ता है। यदि नकद रुपये देकर ही सब खर्च चलाये जायँ तो भी हिसाब रखनेकी आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि गृहिणियोंके कामों की कोई सीमा या संख्या नहीं होती, उन्हें बहुतसी बातोंकी चिन्ता करनी पड़ती है। ऐसी दशामें यह सम्भव नहीं, कि वे सब बातें जबानी याद रख सकें। अतः हिसाब रखनेसे सब बातें मालूम होती हैं।

यदि ऊपर लिखी रीतिके अनुसार वर्षभरके खर्चका आनु-मानिक हिसाब लगाकर रखलिया जाय और यह ठीक कर लिया जाय कि अमुक काममें इतना खर्च होना चाहिये तो जबतक प्रति दिनका जमा खर्च ठीक न रहेगा तब तक कैसे मालूम होगा, कि जिस कामके लिये पचास रुपये निश्चित थे, उसके लिये उतने ही खर्च हुए या अधिक? इसके सिवा यदि मालूम हो जाय, कि अमुक कार्यमें खर्च अधिक हुआ है, तो उस खर्चको घटानेकी चेष्टा की जा सकती है। फलतः खर्च घटानेमें हिसाब रखनेसे बड़ी सुविधा होती है। यथा-रीति हिसाब रखनेसे अवस्थासे बढ़कर खर्च देख बहुतसे लोगोंको दुःख होता है, इसलिये वे हिसाब रखना उचित नहीं समझते।

यदि मितव्ययी होकर धन बटोरनेकी इच्छा हो, यदि किसी दूसरेको ठगने और खुद ठगानेकी इच्छा न हो, तो एक कौड़ी भी बिना हिसाबके नहीं खर्चनी चाहिये। यदि और

किसी विषयके लिये स्त्रियोंके पढ़ने-लिखनेकी आवश्यकता न भी हो तो कमसे कम हिसाब रखनेके लिये तो निश्चय ही उनका पढ़ना जरूरी है। हमारे समाजमें अधिकांश ऐसी स्त्रियां हैं, जिन्हें बीससे अधिक गिनती नहीं आती। भला ऐसी स्त्रियां हिसाब कैसे रख सकेंगी! वास्तवमें यह हिन्दू समाजके लिये बड़े लज्जाकी बात है, कि वह अपनी कन्याओं-को आवश्यक शिक्षासे भी वञ्चित रखता है।

प्रतिदिनके खर्चकी ओर नजर रखना उचित खर्चकी आँटत डालनेकी जड़ है। सामयिक खर्चकी अपेक्षा प्रतिदिनके खर्चपर ध्यान देना बहुत जरूरी है। समय पड़ जानेपर किसी कामके लिये दशपांच रुपये खर्च हो जायँ तो कुछ नहीं बिगड़ता, परन्तु प्रतिदिनके नियमित खर्चमें एक पैसा भी बढ़ जानेसे वह खर्च प्रति दिनके लिये बढ़ जाता है। इसीलिये चतुरा गृहिणियां प्रतिदिनका खर्च बड़ी सावधानीसे चलाती हैं।

उचित प्रबन्ध न रहनेकी वजहसे यदि प्रतिदिन एक पाव आटा बेकार नष्ट होजाता है तो साल भरमें ढाईमन आटा नष्ट होता है। कौन कह सकता है, कि ढाईमन आटेका नुकसान कोई साधारण नुकसान है। इसी तरह छोटे बड़े सभी दैनिक कामोंकी ओर ध्यान रखना चाहिये। इन छोटी छोटी बातोंपर ध्यान न रखनेके कारण हमारे समाजकी कितनी ही गृहस्थियोंको कष्ट भोगना पड़ रहा है।

संयुक्त प्रान्तके अधिकांश स्थानोंमें प्रतिदिन 'चुटकी' निकालनेका रिवाज है। रामको भोजन बनानेके लिये आटा निकालनेसे पहले गृहिणी एक मुट्ठी आटा निकालकर किसी वर्त्तनमें अलग रख देती है। सप्ताहमें पुरोहित आकर उसे ले जाते हैं। हम री पाठिकाओंमें बहुतोंने देखा होगा, कि सब घरोंकी 'चुटकी' एकत्रकर लेजानेके लिये पुरोहितजीको एक मजदूरको जरूरत पड़ती है। अब विचारकर देखा जाय, कि एक मुट्ठी आटा निकाल देनेमें किसीको किसी तरहकी असुविधा नहीं होती, अथच दश घरोंकी एक एक मुट्ठीसे कितने ही लोगोंकी परवरिश होजाती है।

एक बार किसी तरहका खर्च बढ़ जानेपर उसका घटाना बड़ाही मुश्किल होजाता है। इच्छा करनेसेही खर्च बढ़ाया जा सकता है। हाथमें रुपये रहनेपर कोई भी गृहिणी रानीकी तरह खर्च कर सकती है, किन्तु रानी अपना खर्च घटाकर साधारण गृहिणीकी तरह नहीं चल सकती। यह सदा स्मरण रहे, कि खर्च बढ़ाना सहज है, परन्तु घटाना सहज नहीं। इसलिये इस विषयमें खूब सोच समझकर काम करना चाहिये।

जरूरी खर्चोंको ध्यान देकर खर्च करना चाहिये। बहुतसे खर्च ऐसे हैं, जो करने होपड़ते हैं और बहुतसे ऐसे जिन्का करना उतना जरूरी नहीं समझा जाता। शरीरकी रक्षाके लिये भोजन, वस्त्र तथा शयनका नितान्त प्रयोजन

है। भोजन विना, सर्दी तथा गर्मीसे शरीरको बचानेके लिये कपड़े विना तथा शयन और विश्रामके लिये गृह बिना किसी प्रकार काम नहीं चल सकता। इसलिये अवस्थाके अनुसार थोड़ा बहुत इनके लिये खर्च करना ही पड़ता है।

मितव्ययिताके साथ मनुष्यके मनुष्यत्व तथा महत्वका निगूढ़ सम्पर्क है। बहुतसी गृहिणियां खर्च घटानेके लिये दीन दुःखियोंकी सहायता, देशोपकार तथा धर्म-कर्म सम्बन्धीय खर्च कम करनेकी चेष्टा किया करती हैं, परन्तु अपने गहने और कपड़ोंमें जो व्यर्थ खर्च करती हैं, उसे नहीं रोकतीं। बहुत सी गृहिणियोंके मुंहसे सुना जाता है, कि "दिन भरमें एक बार भोजन किया जाय वह अच्छा परन्तु बिना गहनेके दस मनुष्योंके सामने जाना अच्छा नहीं। अपने घरमें दो दिन उपवास ही कर लेंगी, परन्तु बच्चेका अन्नप्राशन बिना बाजा बजाये नहीं होगा। लड़केके विवाहमें यदि अंग्रेजी बाजा न बजेगा, नाच न होगा, और गानेवाले न बुलाए जायँगे तो मैं लोगोंके सामने मुंह कैसे दिखा सकूंगी? लोगोंको मालूम कैसे होगा, कि लड़केका विवाह है? उधार रुपये न मिलें तो खेत बंधक रखकर काम चलाना उचित है। यदि लड़केके भाग्यमें होगा, तो कमाकर छुड़ा लेगा। चुपचाप घरमें बैठकर लड़केका व्याह कैसे हो सकता है। यह पिता माताकी आड़ थोड़ेही है, कि जैसे हो वैसे बला टाल दी जाय।" ऐसी बहुत सी बातें गृहणियोंके मुंहसे सुनी जाती हैं और उनकी अदूर-

दर्शिताके कारण व्यर्थ ही बहुत सा रुपया खर्च हो जाता है । विवाह आदि उत्सवोंके समय आजकल जो अन्धाधुन्ध खर्च होता है, उसे घटानेके लिये देशहितैषी मात्र चेष्टा करते हैं । अधिकांश सभाओंमें इस विषयके बहुतसे प्रस्ताव पास हो चुके हैं, परन्तु गृहिणियोंने अभीतक इस विषयकी ओर ध्यान ही नहीं दिया है, और जबतक प्रत्येक घरकी मालकिन इन अनावश्यक खर्चों को रोकनेकी चेष्टा न करेगी तबतक नेताओंके हजार व्याख्यान देनेसे भी कुछ न होगा ।

घरमें जिस वस्तुकी अत्यन्त जरूरत हो, जिसके बिना काम न चलता हो, उसेही खरीदना चाहिये । बिना जरूरत चीज खरीदकर रखना उचित नहीं । आजकल बहुत सी गृहिणियों-को चीज देखते ही उसे खरीदकर पिटारोंमें बन्दकर रखनेकी बीमारी सी हो गई है । घरमें उस चीजके रहते हुए भी वे दूसरी खरीद लेती हैं । इससे बिना जरूरतकी चीजोंके लिये बहुतसे रुपये खर्च हो जाते हैं और जरूरी चीजोंके बिना घरवालोंको कष्ट उठाना पड़ता है । स्त्रियां समझती हैं, कि इससे धनकी रक्षा होगी और समयपर किसी वस्तुके लिये कष्ट न उठाना पड़ेगा, परन्तु उन्हें याद रखना चाहिये, कि इससे धनकी रक्षा नहीं होती, वरं असमय खर्च बढ़ा देनेसे खर्चके सिलसिलेमें बड़ी बाधा पड़जाती है ।

ऋण लेनेवाला मनुष्य हेय और पराधीन समझा जाता है । अनुचित खर्च करनेके पापका फल उसे आजन्म भोगना पड़ता

है। ऋण-ग्रस्त मनुष्यकी भांति दुःखी संसारमें दूसरा नहीं। संस्कृतमें ऋण लेने वालेको 'अधमर्ण' कहते हैं। परन्तु उसे अधमर्ण न कह 'अधमनर' कहना ही उचित है।

एक युरोपियन विद्वान कह गया है:—"ऋण-ग्रस्त मनुष्य पराधीन रहता है। उसे सदा दूकानदारोंका मुंह ताकना पड़ता है। इसलिये वह व्यवसायियोंके दयाका पात्र, महाजनोंका वशवर्त्ती, वकील मुखतारोंकी दिल्लगीकी चीज और पड़ोसियोंकी दृष्टिमें हेय समझा जाता है। उसे अपने घरमें दासदासियोंकी तरह अवरुद्ध रहनेके लिये बाध्य होना पड़ता है। उसका चरित्र क्रमशः हीन और कलुषित हो जाता है। यहां तक, कि उसके घरवाले भी उससे घृणा करने लगते हैं।"

किसी कारण वश जिस घरमें यह ऋण लेनेका रोग घुस जाता है, उसे कभी चैन नहीं लेने देता। झूठ बोलना, अपमानित होना, पराधीन बन जाना, निराश और हताश होना आदि इस रोगके उपसर्ग हैं। ये धीरे धीरे गृहस्वामीकी देहका रक्त चूस लेते और उसे मनुष्यत्वसे गिरा देते हैं।

पण्डितोंने कहा है:—"उपवास करना अच्छा, परन्तु ऋण लेकर खाना अच्छा नहीं।" असत्य ऋणका वाहन है; वह उसपर चढ़कर घूमा करता है। जिस तरह एक झूठको छिपानेके लिये दूसरे झूठकी आवश्यकता होती है, उसी तरह ऋण भी ऋणको बढ़ाता है।

सेविंगबैंक वा सञ्चयभाण्डार।

हमारी पाठिकाओंमें बहुतोंने सेविङ्गबैंकका नाम सुना होगा। सेविङ्गबैंक डाकघरोंमें होता है। यह नाम अङ्गरेजोंका है, हिन्दीमें इसके लिये कोई उपयुक्त शब्द नहीं, परन्तु काम चलानेके लिये, उसे 'सञ्चयभाण्डार' कह सकते हैं। थोड़ा थोड़ा अर्थ संग्रह करनेका उपाय सेविङ्गबैंकसे बढ़कर दूसरा नहीं। *सबसे अधिक प्रसन्नताकी बात तो यह है, कि* सेविङ्गबैंक खोलनेकी बात सबसे पहले एक स्त्रीके ही मनमें उठी थी। उसीके उद्योग और चेष्टासे हरएक डाकघरमें सेविङ्ग बैंक खोला गया। वह स्त्री विलायतकी थी। उसका नाम कुमारी प्रिस्सिला वेकफील्ड (Miss Priscella Wakefield) था। उसीके आग्रह करनेपर दरिद्र बालक बालिकाओंके उपकारके लिये सरकारने सेविङ्गबैंक खोला था।

सबसे पहले, सन १८६१ ईस्वीमें इङ्गलैंड नगरके डाकघरोंमें सेविङ्गबैंक खुला था। इसके तीस वर्ष बाद भारतवर्षके डाकघरोंमें भी यह रिवाज जारी कर दिया गया।

हमारे देशमें बहुतसे मनुष्य ऐसे हैं, जिनके पास रुपया नहीं ठहरता। हाथमें रुपया आते ही वह उसे खर्च कर डालते हैं। ऐसे मनुष्योंके लिये सेविङ्गबैंक बड़े कामकी चीज है।

सेविंगबैंककी नियमावली।

डाकघरमें रुपया जमा करनेकी नियमावली हरएक डाक-घरमें बिना दाम मिलती है। सर्वसाधारणकी सुविधाके लिये यह नियमावली हिन्दीमें भी छपी है। जो चाहे मंगाकर उन नियमोंको देख सकता है। इसके सिवा उसकी खास खास बातें थोड़ेमें नीचे लिखी जाती हैं:—

(१) स्त्री-पुरुष, बालक-बालिका सभी अपने अपने नामसे रुपये जमा कर सकते हैं। कमसे कम चार आने तक जमा हो सकते हैं। सरकार इस रुपयेके लिये जिम्मेवार होती है। पिता-माता आदि अपने छोटे छोटे बच्चोंके नामसे भी रुपये जमा रख सकते हैं।

(२) जो रुपये डाक घरमें जमा रखे जाते हैं, उनपर सालाना तीन रुपये सैकड़ा सूद भी सरकार देती है। हिसाब लगानेसे मालूम होगा, कि प्रति ६) रुपयेका मासिक सूद एक पैसा होता है। छः रुपयेसे कमकी रकमके लिये सूद नहीं मिलता। प्रति वर्षकी ३१वीं मार्चको साल भरका व्याज जोड़कर असल रुपयेमें जमा हो जाता है। प्रति महीनेकी चौथी तारीख तक रुपया जमा कर देनेसे उस महीनेका सूद मिलता है। यदि छः महीनेके भीतर ही सब रुपये डाक-घरसे वापस न ले लिये जायँ तो सूद सवा तीन रुपये सालाना मिलता है।

(३) पहले-पहल रुपया जमा करनेके समय जमा करने

वालेको अपना तथा अपने पिताका नाम, पेशा और रहनेका स्थान लिखकर एक प्रतिज्ञा पत्र पर दस्तखत कर (यदि लिखना न आता हो तो अंगूठेका निशान बनाकर) डाक घरमें देना होता है। छपा हुआ प्रतिज्ञा पत्र बिना दाम मिलता है।

(४) पहली बार रुपये जमा करनेपर डाकघरसे एक हिसाब बही मिलती है। अंगरेजीमें उसे 'पास बुक' कहते हैं। जब जितना रुपया जमा किया जाता है, तब उतना उस पास बुकमें पोस्टमास्टर चढ़ा देता है।

(५) जमा दिये हुए रुपयेमेंसे कुछ लेनेके लिये एक आवेदन पत्रके साथ 'पास बुक' डाकमुन्शीके पास भेज दी जाती है। जितने रुपये लिये जाते हैं, उतने पास बुकमें जमा खर्च कर दिये जाते हैं और बही फिर रुपये जमा करने वालेको दे दी जाती है।

(६) बही रुपये जमा करने वालेकी चीज है, इसलिये उसे यत्नसे अपने पास रखना चाहिये। किसी कारणसे यदि वह खराब हो जाय या खो जाय तो एक रुपया जुर्मानेके साथ एक आवेदन पत्र भेजनेसे दूसरी बही मिल जाती है।

(७) यदि जरूरत हो तो एक डाकघरसे दूसरे डाकघरमें हिसाब मंगा लिया जा सकता है।

इन थोड़ीसी बातोंसे ही चतुर पाठिकायें समझ गई होंगी कि थोड़ी आमदनी वालोंके धनसञ्चय करनेके लिये सेविंग बैंक कितना उपयोगी है। इसमें कई प्रकारकी सुविधायें भी हैं।

(१) चार आने पैसे भी जमा किये जा सकते हैं, (२) जरूरत पड़नेपर प्रति दिन रुपये जमा हो सकते हैं; किन्तु सप्ताहमें एक दिनसे अधिक रुपये लिये नहीं जा सकते। रुपया जमा करना सहज है, परन्तु लेना उतना सहज नहीं। यदि प्रति दिन जमा करनेकी तरह ले लेनेका भी नियम होता, तो मामूली जरूरत पड़नेपर भी लोग डाकघरसे रुपये लेनेमें त्रुटि न करते। अपने पास रुपये रखनेसे खोजाने तथा चोरी जानेका भय रहता है, परन्तु सेविंगबैङ्कमें रखनेसे इस तरहकी कोई आशङ्का नहीं रहती।

अपने पास रुपये रहनेसे उनके खर्च हो जानेकी अधिक सम्भावना रहती है। कभी कभी लोगोंको उधार देकर भी नुकसान उठाना पड़ता है। अथवा न देनेकी इच्छा होनेपर रुप्या रहते भी झूठ बोलकर बहाना करना पड़ता है। परन्तु सेविंगबैंकमें जमा करनेसे ऐसी किसी बातकी सम्भावना नहीं रहती।

सेविंगबैङ्कमें रखा हुआ रुपया अपने घरकी अपेक्षा अधिक निरापद रहता है और साथ ही कुछ सूद भी मिलता है।

आज कल देहातोंमें भी बहुत डाकखाने हो गये हैं, इसलिये गृहिणियां तथा बालक भी अनायास ही अपने रुपये डाकघरमें जमाकर सकते हैं।

अङ्गरेजोकी एक किताबमें लिखा है, कि एक शराबी आदमीने सेविंगबैंकमें रुपये जमाकर बारह सौ एकत्र कर

लिये थे। यह देखकर किसीने उससे पूछा "तुम्हारे मनमें यह सुबुद्धि कैसे उत्पन्न हुई"? उसने उत्तर दिया—एक दिन मैंने अपनी स्त्रीके पास एक डाकखानेकी पास बुक देखी। कौतूहल वश उसे खोलनेपर मालूम हुआ, कि मेरी स्त्रीने तीन सौ रुपये जमाकर लिये हैं, मैंने विचार किया, कि मेरे शराबी होनेपर भी मेरी स्त्रीने तीन सौ रुपये जमाकर लिये हैं। यदि मैं भी सुधर जाऊं और उसीकी तरह रुपये एकत्र करनेकी फिक्र करूं तो शीघ्रही बहुत कुछ एकत्र कर सकता हूं। बस, उसी दिनसे मैंने शराब पीनेकी बुरी आदत छोड़ दी। मेरे इस परिवर्त्तनका कारण मेरी स्त्रीकी बुद्धि और सेविंग बेंक है।

कहावत है, कि रुपया रुपयेको खींचता है। बात बिलकुल ठीक भी है। एक बार चार आना जमा हो जानेपर अपने आप ही मनमें उसे बढ़ानेकी इच्छा उत्पन्न होती है। जो यहां पाते हैं और वहां खर्च कर देते हैं वे कभी भी कुछ एकत्र नहीं कर सकते।

एक मनुष्यका छोटा भाई बड़ा खर्चीला था। जो कुछ पाता था, उसे खर्च कर डालता था। बड़े भाईने बड़ी चेष्टा की परन्तु उसकी आदत छुड़ा न सका। अन्तमें आजिज़ हो कर उसने अपने छोटे भाईको अलग कर दिया। परन्तु इसका भी कोई फल न हुआ। अलग हो जानेपर वह और भी खर्चीला हो गया। यह देखकर बड़े भाईके मनमें एक

नई युक्ति आई। उसने छोटेको "निन्नानवेके फेरमें" डालकर सुधारना चाहा। एक दिन एक तोड़ेमें निन्नानवे रुपये रख कर चुपचाप छोटे भाईके घरमें डाल आया। थोड़ी देरके बाद छोटा भाई जब घर आया तो रुपयेकी थैली पड़ी देख बड़ा खुश हुआ। झटपट थैली खोल कर रुपये गिनने लगा। थैलीमें निन्नानवे रुपये थे। छोटे भाईने सोचा, कि यदि एक रुपया और इसमें रख दिया जाय तो हमारे पास पूरे सौ रुपये हो जायँ। फलतः उसने एक रुपया और उसमें बढ़ाया। इसके बाद उसके मनमें इच्छा उत्पन्न हुई, कि ऐसी ही एक थैली सौ की और भी एकत्र करनी चाहिये। इस तरह कुछ एकत्र होनेपर उसकी इच्छा बराबर बढ़ती गई और कुछ दिनमें वह रुपये वाला हो गया और फिजूलखर्चीकी बुरी आदत भी छूट गई।

सेविङ्गबैङ्कमें रुपया जमा करना कुछ लोग अच्छा नहीं समझते क्योंकि वहां सूद बहुत कम मिलता है। जो लोग जमा रखते हैं, उन्हें वे निर्बोध समझते हैं। ऐसे लोग सेविङ्ग बैङ्कका उद्देश्य नहीं समझते। उन्हें स्मरण रखना चाहिये, कि सूद जोड़कर रुपये डुबानेके लिये सेविङ्गबैङ्क नहीं है, वरं रुपयेको निरापद रखना ही उसका प्रधान उद्देश्य है। इसलिये सूदमें जो रकम डाकखानेसे मिल जाती है, उसे अतिरिक्त लाभ समझना चाहिये। कुछ चतुर हिसाबी लोग कभी कभी डाकघरसे रुपये उठाकर किसी अच्छी जगह

सूदपर लगा देते हैं और जब जितना वसूल होता है, डाकखानेमें जमाकर दिया करते हैं। इस तरह सेविङ्गबेङ्क द्वारा यह बहुत लाभ भी उठाते हैं।

जिन्दगीका बीमा ।

हर एक बुद्धिमान गृहस्थका यह परम कर्त्तव्य होना चाहिये, कि वह अपने परिवारकी आश्रयहीना विधवाओं तथा अपने बच्चोंके लिये कुछ धन एकत्र कर जाय, जिसमें उसके मर जानेपर उन्हें पेट पालनेके लिये भीख मांगना अथवा चोरी आदि कुकर्म्म करना न पड़े। इसके लिये आजकल बहुत लोग अपनी जिन्दगीका बीमा करा लेते हैं। कलकत्ता तथा बम्बई आदि बड़े बड़े शहरोंमें अनेक कम्पनियां हैं जो लोगोंकी जिन्दगीका बीमा लिया करती हैं। उन कम्पनियोंकी नियमावली मंगाकर देखनेसे इस विषयका पूरा पता लग सकता है।

जिन्दगीका बीमा करानेवाला मनुष्य जिस दिनसे बीमा कराता है, उसी दिनसे प्रति मास, प्रति वर्ष अथवा प्रति तीसरे महीने उसे निर्दिष्ट फीस बीमा लेने वाली कम्पनीके पास भेज देनी पड़ती है। अन्तमें उसके मर जाने पर जितने रुपयेका बीमा कराया जाता है, उतने उसके उत्तराधिकारीको (जिस रूपमें देनेके लिये वह कह देता है) मिलते हैं।

जीवन-बीमाके बहुतसे नियम हैं। निर्दिष्ट उमर तक अथवा मर जाने तकके लिये किस्तके रूपमें जो रूपये दिये जाते हैं, उनमें कमोबेशी भी होती है। 'बोम्बे प्रोविडेण्ट जीवन-बीमा कम्पनीके नियमानुसार यदि कोई मनुष्य इस शर्त पर अपनी जिन्दगीका बीमा कराये, कि उसके मर जानेपर उसके उत्तराधिकारीको एक मुश्त हजार रुपये मिलें और बीमा करानेके समय उसकी उमर पचीस वर्षकी हो तो एक बार ही चार सौ बासठ रुपये और चार आने देनेसे, उस मनुष्यके मर जानेपर उसके उत्तराधिकारीको एक हजार रुपये मिलेंगे।

यदि चार सौ बासठ रुपये और चार आने एक मुश्त देनेकी सुविधा न हो तो प्रतिवर्ष ५७॥।/) देकर दस वर्षमें भी सब रुपये दिये जा सकते हैं। केवल एक किस्तका रुपया देकर ही यदि बीमा कराने वाला मर जाय तो भी उसके उत्तराधिकारीको एक हजार रुपये मिलेंगे। यदि कोई दस किस्तोंमें भी रुपये न दे सकता हो तो पन्द्रह, बीस अथवा तीस किस्तोंमें दे सकता है। यदि वार्षिक किस्तका रुपया एक मुश्त देनेमें असुविधा हो तो, प्रति छठे, तीसरे या महीने महीने भी दिया जा सकता है। इस तरहकी बात तय हो जानेपर यदि एक ही किस्तका रुपया देकर बीमा कराने वाला मर जाय तो भी उसके उत्तराधिकारीको बीमाका कुल रुपया मिल जायगा।

पाठिकायें समझ सकती हैं, कि बुढ़ापेके लिये अथवा बालबच्चोंके लिये, इस तरह कुछ धन एकत्र करनेमें कितनी सुविधा है। साथ ही यह भी बता देना उचित है, कि आजकल भारतवर्षमें जिन्दगीका बीमा लेने वाली कम्पनियोंकी बड़ी भरमार दिखाई दे रही है, इसलिये यह काम बड़ी सावधानीसे होना चाहिये, नहीं तो घरका धन भी व्यर्थ ही नष्ट हो सकता है।

ऊपर जो उदाहरण दिया गया है, उससे यह न समझ लेना चाहिये, कि केवल हजार ही रुपयेका बीमा हुआ करता है। वरं दो हजार, चार हजार अथवा उससे भी अधिकका होता है। जितने ही अधिक रुपयेका बीमा होता है, उतनी ही अधिक फीस भी देनी पड़ती है।

मितव्यय और सञ्चय सम्बन्धीय कुछ उपदेश।

(१) मितव्ययी मनुष्यको समाजका मित्र और अमितव्ययीको समाजका शत्रु समझना चाहिये।

(२) अर्थकी कमीकी अपेक्षा अर्थके कुव्यवहारसे समाजको अधिक नुकसान पहुँचता है।

(३) कमा लेना सहज है, परन्तु उसको यथारीति खर्च करना तथा सञ्चय करना बड़ा ही मुश्किल है।

(४) जो मनुष्य अपनी सारी कमाई खर्च कर डालता है वह कमजोर, असक्त और हीन समझा जाता है। उसका सम्मान और उसकी स्वाधीनता नहीं रहती।

(५) बिना जरूरतकी चीज यदि सस्ती मिल सकती हो तो भी उसे महंगी समझना चाहिये।

(६) समाजमें सम्मान या बड़ाई पानेके लिये जो अपनी औकातसे अधिक खर्च कर डालते हैं, वे मूर्ख हैं।

(७) दरिद्रता प्रेमको नहीं ठहरने देती। इससे सदा सावधान रहना चाहिये।

(८) उपवास करना अच्छा है, परन्तु उधार लेकर खाना अच्छा नहीं।

(९) ऋण ग्रस्त मनुष्यको झूठ बोलनेके लिये बाध्य होना पड़ता है और झूठसे बढ़कर पाप जगत्में दूसरा नहीं।

(१०) जिस तरह मिथ्या मिथ्याका पोषक होता उसी तरह ऋण भी ऋणको बढ़ाता है।

सातवां उपदेश ।

रसोई बनाना और परोसना ।

"अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात् । अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । अन्नेन जातानि जीवन्ति । अन्नं प्रयन्त्यभिसं विशन्तीति ।"—तैत्तिरीयोपनिषद् ।

हिन्दूजातिके दुर्भाग्यके कारण इस देशकी स्त्रियोंकी दशा आजकल ऐसी हीन होगई है, कि रसोई बनाने और परोसनेके विषयमें भी प्रबन्ध लिखनेकी आवश्यकता हो रही है । सन्तान-पालन तथा परिवारवर्गको भोजन बनाकर देना स्त्रियोंका सर्वप्रधान कर्त्तव्य है । इस कर्त्तव्यका यथोचित पालन करने-वाली स्त्री ही माता कही जा सकती है । स्त्री चाहे, किसी राजाकी रानी हो अथवा बी० ए० पासकर परम पण्डिता बन गई हो, यदि सन्तान पालन और भोजन बनाकर परिवार वालोंको खिलानेमें असमर्था है, तो उसका स्त्री—जन्म वृथा है । विश्वविद्यालयसे बी० ए० अथवा एम० ए० की पदवी प्राप्त स्त्रीकी अपेक्षा गृहधर्म पालन करनेवाली निरक्षरा गंवा-रिन गृहिणी अधिक सम्मान और श्रद्धाकी पात्री है । राज-कुमारी तथा राजरानी होनेपर भी द्रौपदी अपने हाथसे रसोई बनाती और परोसती थी । कौन कह सकता है कि स्त्रियोंके लिये यह सामान्य गौरवकी बात है ? इस गौरवको छोड़के

खाने वाले 'सभ्य' चाहे न समझें परन्तु माताके हाथका बनाया हुआ पवित्र अन्न भोजन करनेवाले हिन्दू इस गौरवको अच्छी तरह समझते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

मनुजीने लिखा है:—"सन्तानोत्पादन, सन्तानप्रतिपालन और प्रतिदिन घरके सब कामोंको करना स्त्रियोंका कर्तव्य है।"* स्त्री जातिकी यह प्रतिपालन शक्ति ही सृष्टि और संसार मात्रके निर्व्वाहकी जड़ है। ऐसी दशामें स्त्रियों और पुरुषोंके कर्त्तव्योंके विषयमें तर्ककी कोई आवश्यकता न थी, परन्तु वर्त्तमान समयमें इस विषयपर बड़ा ही आन्दोलन मचा हुआ है। प्राचीन-ऋषियोंने सन्तान-पालन रूप महाव्रतका भार स्त्रियोंको देकर उनके कर्त्तव्योंका उचित विभाग कर दिया है, इसलिये इस विषयमें अधिक आन्दोलन करना समय नष्ट करनेके सिवा और कुछ भी नहीं है। रसोई बनाना और परोसना अर्थात् अन्न देकर सृष्टिकी रक्षा करना ही स्त्रियोंका प्रधान कर्त्तव्य है और उनका यह अधिकार सब अधिकारोंसे बढ़कर है। यत्नपूर्वक अपने इस अधिकारकी रक्षा करना प्रत्येक स्त्रीका परम कर्त्तव्य है। रसोई बनाना कोई साधारण काम नहीं है। यह ऋषियोंका निर्दिष्ट किया हुआ एक प्रकारका होम है। इसी कारणसे ऋषि लोग बिना नहाये होमाग्नि नहीं जलाया करते थे। यहांतक, कि उन्होंने देवता

* उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनं।
प्रत्यहं लोकयात्रा: प्रत्यक्षं स्त्री निबन्धनम्॥—मनु।

अर्थात् विश्वकर्मा, और अन्नपूर्णाको स्मरण और प्रणामकर रसोई आरम्भ करनेकी आज्ञा दी है।

सुप्रसिद्ध रासायनिक राय चुन्नीलाल वसु बहादुरने लिखा है:—"रसोई बनाना सभ्यताका एक लक्षण और एक कला है।" जो स्त्री अच्छी रसोई बनाना जानती है, वह यथेष्ट सम्मान प्राप्त करती है। देहातोंमें जब किसीके घर भोज होता है, तब गांवोंके रईसोंकी स्त्रियां भी वहां जाकर रसोई बनानेमें मदद देकर प्रसन्नता प्राप्त करती हैं। जो स्त्री रसोईके कार्य्यमें चतुरा होती है, उसका उस समय बड़ा ही सम्मान होता है। कुल स्त्रियां उसके आदेशानुसार कार्य्य करती हैं। रसोई बनानेको जो छोटा काम समझते हैं, वे मूर्ख हैं। अपने हाथसे रसोई बनाकर अपने पति तथा पुत्रोंको भोजन करानेमें कितना आनन्द मिलता है, इसका अनुभव हमारी कितनी ही पाठिकाओंने अवश्य ही किया होगा। यह कभी न भूलना चाहिये, कि रसोई बनाना एक प्रकारकी विद्या और बड़े ही सम्मान तथा गौरवका कार्य्य है।

जीनेके लिये भोजन करनेकी आवश्यकता होती है। सृष्टिका कोई जीव बिना खाये नहीं जी सकता, सबको कुछ न कुछ अवश्य ही खाना पड़ता है। अन्यान्य जानवरोंकी तरह मनुष्य कच्ची चीज बहुत नहीं खाता। सभ्यताका इतिहास देखनेसे जाना जाता है, कि सभ्यताके साथ ही साथ भक्ष्यवस्तुकी पाकप्रणालीकी भी उन्नति हुई है। खानेकी चीजोंमें कितनी ही

चीज़ें ऐसी हैं, जिन्हें कच्ची अवस्थामें मुंहके पास ले जाते हुए भी घृणा होती है, परन्तु पकानेपर वही बड़े चावसे खाई जाती है। जिस चीज़को कच्ची खानेसे मनुष्य बीमार पड़ जाता है, वही पक जानेपर शरीरको बल और पुष्टि प्रदान करती है। यही रन्धनकी महिमा है।

आहार ही पर हम लोगोंका जीना निर्भर है। सांसारिक सुखोंका आधा हिस्सा भोजन है। संसारके प्रायः चौदह आने लोग इसीके लिये दिनरात शिरतोड़ परिश्रम करते हैं। इस लिये जो गृहिणी इस अतीव महत्वपूर्ण कार्यको छोटा काम समझकर दास दासियोंके हवाले कर देती है, उसे गृहिणी नहीं कह सकते।"

रसोई बनाने और परोसनेका काम माता, स्त्री, बहन अथवा बेटी आदिके सिवा किसी दूसरेको कदापि न सौंपना चाहिये। पति, पुत्र तथा कन्याओंके खाने पीनेका भार दूसरेको सौंप देनेसे बढ़कर अगौरवकी बात गृहिणीके लिये दूसरी नहीं हो सकती। जिस घरमें भोजन बनाना तथा परोसना दासियोंके सुपुर्द है, उस 'होटल' सदृश घरमें सच्चे सुखकी आशा करना केवल विडम्बना है। जो स्त्री अपने हाथसे भोजन बनाकर आत्मीय-वर्गको खिलाकर आनन्द-उपभोग करनेका सुअवसर नहीं पाती उसे अभागिनी कहनेमें भी कोई दोष नहीं।

हमारी इस गिरी दशामें भी बहुत गृहलक्ष्मियां ऐसी हैं

जो, विवाह आदि उत्सवोंके समय, घोर परिश्रम पूर्वक भोजन बनाकर लोगोंको खिलाकर आनन्दित होती हैं, और जब उन्हें मालूम होता है, कि उनका बनाया हुआ व्यञ्जन स्वादिष्ट और तृप्ति दायक है, तो वे अपनेको कृतार्थ समझती हैं। परन्तु शोकसे कहना पड़ता है, कि यदि समाजकी यों ही अधोगति होती रही तो ऐसी पवित्र, अन्नपूर्णा सदृश देवियोंका दर्शन दुर्लभ हो जायगा। यदि यह अधःपतन इसी तरह बढ़ता गया तो एक दिन ऐसा आयेगा, कि भोज आदिके समय हिन्दू भी बाजारसे बना बनाया भोजन खरीद लाया करेंगे और विलायत वालोंकी तरह हिन्दू भी अपनी स्त्रीको साथ लेकर होटलमें रहा करेंगे।

हमारे शास्त्रोंमें चार प्रकारकी भोजन-सामग्रीका उल्लेख किया गया है। जैसे:—(१) चर्व्य, (२) चुष्य, (३) लेह्य और (४) पेय। जो चीजें दांतों द्वारा चबाकर खाई जाती हैं, उन्हें चर्व्य, जो चूसी जाती हैं, उन्हें चुष्य, जो चाटी जाती हैं, उन्हें लेह्य और जो पी जाती हैं, उन्हें पेय कहते हैं। इस-के सिवा स्वाद तथा रस-भेदके अनुसार छः प्रकारका भोजन माना गया है। जैसे:—खट्टा, मीठा, नमकीन, तीता, कड़ुवा, और कसैला। ये छः मूल रस हैं। पाक-शास्त्रमें छत्तीस प्रकारके रसोंका उल्लेख है। यहां उन छत्तीस प्रकारके व्यञ्जनों-के वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं। परन्तु अच्छी रसोई बनाने वाली गृहिणियां यह जानती हैं, कि कौन कौन रस

परस्पर मिल सकते हैं तथा किन किन रसोंके मेलसे भोजन सुन्दर, स्वादिष्ट और बलकारक बनता है। पुस्तक पढ़कर कोई स्त्री रसोई बनाना नहीं सीख सकती। इस विषयमें अच्छा ज्ञान प्राप्त करनेका उपाय रसोई बनानेका अभ्यास करना ही है। चतुरा स्त्रियां अपनी निपुणतासे वनकी पत्तीको भी स्वादिष्ट बना सकती हैं। बहुतसी चीजें ऐसी हैं, जो अधिक सिद्ध होनेसे ही अधिक मजेदार होती हैं और बहुतसी अधिक सिद्ध हो जानेपर खाई नहीं जातीं। इसलिये जबतक स्वयं रसोई बनाई न जाय अथवा रसोई बनाना आंखसे देखा न जाय तब तक इस विषयमें उत्तम ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता। इस लिये भोजन बनानेकी रीतिके विषयमें कुछ न लिखकर उसके सम्बन्धकी कुछ मुख्य बातें ही लिखी जाती हैं।

भोजनके उपादान।

वर्तन।—भोजन-सामग्रीकी भलाई बुराई बहुत कुछ वर्त्तनोंके गुण दोषपर निर्भर करती है। वर्त्तनोंकी खराबीके कारण खानेकी चीजें जहरीली हो सकती हैं; इसलिये किस चीजको बनानेके लिये कैसे वर्त्तनकी जरूरत है, इसका पहले ही विचार करलेना चाहिये। रसोई बनानेके लिये मिट्टीका वर्त्तन सबसे उत्तम होता है, और प्राचीनकालमें इस देशमें मिट्टीके वर्त्तनोंका व्यवहार यथेष्ट रूपसे हुआ भी करता था। परन्तु

मिट्टीके वर्त्तन शीघ्र टूट जाते हैं तथा पवित्र नहीं माने जाते, इस लिये वे हटाये नहीं जा सकते। इन्हीं कारणोंसे आज कल प्रायः पीतल तथा लोहेके बर्तन विशेष रूपसे रसोईके काममें लाये जाते हैं। ताँबेके वर्त्तनोंमें पके हुए भोजनके विषाक्त होनेकी सम्भावना रहती है, इसलिये रसोईके काममें उनका व्यवहार करना उचित नहीं।

भोजन करनेके वर्त्तन। हमारे देशमें पीने तथा खानेके काममें विशेषतः कांसे तथा पीतलके ही वर्त्तन व्यवहार किये जाते हैं। परन्तु पीतलके वर्त्तनोंमें खट्टी चीजें खराब होजाती हैं। बड़े आदमियोंके घर चांदीके वर्त्तन भी खानेके लिये व्यवहार किये जाते हैं, परन्तु सर्वसाधारण चांदीके वर्त्तन नहीं रख सकते। पत्थरके वर्त्तन भी अधिकांश स्थानोंमें व्यवहृत होते हैं और उनमें–किसी चीजके बिगड़नेकी भी कोई आशंका नहीं रहती। आजकल शहरोंमें ऐलूमीनियम-धातुके वर्त्तनोंका बहुत प्रचार देखनेमें आता है। ऐलूमीनियम के वर्त्तन हल्के भी होते हैं और शीघ्र टूटते भी नहीं परन्तु पुराने हो जानेपर वे शीघ्र साफ नहीं होते। कांच तथा चीनी मिट्टीके वर्त्तन हिन्दुओंके उपयुक्त नहीं; क्योंकि वे शुद्ध नहीं समझे जाते तथा शीघ्र ही टूट भी जाते हैं।

खाद्य—शरीरतत्ववित् पण्डितोंका सिद्धान्त है, कि शरीर-का क्षय रोकने तथा देहकी पुष्टि, बल और तापकी वृद्धिके लिये भोजन करनेकी आवश्यकता होती है। परन्तु केवल दूधके सिवा

और कोई वस्तु ऐसी नहीं जिसमें उपरोक्त सभी गुण पाये जाते हों। माताके दूधको ही आदर्श भोजन मानकर वैज्ञानिकोंने उसमें जिन उपादानोंका पता: लगाया है, वेही शरीरको सुरक्षित रखने एवं पुष्टि तथा आरोग्यता प्रदान करनेके लिये सर्वोत्तम खाद्य हैं। जिन चीजोंमें उन उपादानोंका अभाव होता है, वे शरीरके लिये लाभ दायिनी नहीं होतीं। वैज्ञानिकोंके मतानुसार दूधमें प्रधानतः चार प्रकारके उपादान पाये जाते हैं :—(१) खोआ, (२) मक्खन, (३) शर्करा तथा (४) पानी और नमक। इसलिये शरीरको रक्षाके लिये समय और अवस्थाके अनुसार उपरोक्त उपादानोंमें कुछ न कुछ अवश्य ही व्यवहार करना चाहिये।

गृहिणियोंको इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिये, कि प्रति दिनको भोजन-सामग्रीमें उपरोक्त उपादानोंके गुण कहां तक मौजूद है। यद्यपि यह विषय रसायनशास्त्रका है और हमारे देशकी अशिक्षिता अथवा कम पढ़ीलिखी स्त्रियां इसे नहीं समझ सकतीं, परन्तु वे मातायें हैं, इसलिये प्रति दिनके खानेकी चीजोंके विषयका ज्ञान उनमें अवश्य ही होना चाहिये। हम प्रति दिन जो चीजें खाते है, उनकी रासायनिक परीक्षा होचुकी है और उनके उपादानोंका भी पता लगचुका है। चेष्टा करनेपर स्त्रियां भी इस विषयका ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं।

यद्यपि भोजनके परिमाणकी अपेक्षा खाद्य-पदार्थोंके उपा-

दानोंपर ही शरीरकी रक्षा निर्भर है तथापि यह मान लेना बहुत जरूरी है, कि प्रत्येक मनुष्यको चौबीस घण्टेमें कमसे कम अपनी देहके वजनके १/२० से १/२६ अंशके बराबर अवश्य ही खाना चाहिये। अर्थात् जिस मनुष्यकी देहका वजन एक मन हो उसका दैनिक आहार दो सेर और जिसकी देह दो मन भारी हो उसका चार सेर होना चाहिये। भोजनका यह परिमाण जल छोड़कर बताया गया है। इससे कम भोजन करनेसे शरीर यथेष्ट पुष्ट और बलिष्ट नहीं रह सकता।

शरीरकी अवस्था तथा रसोंकी विभिन्नताके अनुसार एक मनुष्यके लिये जो खाद्य स्वास्थ्यकर होता है, वही दूसरेके लिये हानिकर होता है। अच्छे तन्दुरुस्त नवयुवकके लिये जो चीज उपयुक्त होती है वही बीमार अथवा बच्चोंके लिए नुकसान पहुंचाने वाली होती है। इसलिये परिवारके सब व्यक्तियोंको उनके शारीरिक अवस्थाके अनुसार भोजन कराना गृहिणीका कर्त्तव्य है। सद्यःजात शिशुको कड़ी चीज खिलाना तो दूर रहा यदि माताके दूधमें कमी हो तो उसे गाय आदिका दूध पिलानेके लिये कितनी तदबीरें करनी पड़ती हैं, और फिर जब वही बच्चा दो तीन वर्षका होजाता है, तब उसे कड़ी चीज खानेका अभ्यास कराना पड़ता है। अन्यथा उसके स्वास्थ्यकी रक्षा नहीं हो सकती। विशेषतः दांतोंके गठनमें तो बड़ी ही बाधा पड़ती है। उसी तरह दन्तहीन बूढ़ेको नरम अथच पुष्टिकारक भोजन देनेकी आवश्यकता होती है। अतएव इन

विषयोंपर अच्छी तरह विचारकर सबको उपयुक्त भोजन देना चाहिये।

रसनाकी तृप्ति भी भोजनका अन्यतम उद्देश्य है। शरीरको पुष्ट करनेवाली चीजोंको किसी न किसी तरह पेटमें डाल लेना ही भोजनका उद्देश्य होता, तो विधाताको जीभ बनानेकी जरूरत ही न पड़ती। जीभमें बड़ी ही अद्भुत शक्ति है और उसका दायित्व भी बड़ा ही गुरुतर है; क्योंकि वह खाद्य-पदार्थोंकी जांच किया करती है। जो चीज उसे नापसन्द होती है, उसके लाभदायक होनेपर भी वह उसे भीतर जाने देनेमें आनाकानी करती है। इसलिये भोजन बनानेके समय रसनाकी तृप्ति और उसकी प्रसन्नताका खयाल अवश्य ही रखना चाहिये। भिन्न भिन्न प्रणालियों द्वारा एक ही चीजमें कई तरहके स्वाद आजाते हैं। केवल दूधसे ही दही, घी, मक्खन, पनीर और रावड़ी आदि बहुतसी चीजें तय्यार होती हैं। फिर उन चीजोंमें किसी दूसरी चीजको मिला देनेसे उनके द्वारा भी अनेक प्रकारकी चीजें तय्यार होती हैं। ये सभी उपाय रसनाकी तृप्तिके लिये ही है। रसनाकी तृप्तिसे शरीरकी तन्दुरुस्तीका गहरा सम्बन्ध है; इसलिये गृहिणियोंको भोजन बनानेके समय इस बातका भी अवश्य ही खयाल रखना चाहिये।

भोजन तथा वस्त्र आदिके सम्बन्धमें सबकी रुचि एकसी नहीं होती। कोई स्त्री लाल रंगकी साड़ी पसन्द करती है

ओर कोई पीले रंगकी। इसी तरह भोजनके सम्बन्धमें भी लोगोंकी रुचि अलग अलग होती है। एक मनुष्य जिस वस्तुको सुखाद्य समझ बड़े चावसे खाता है, दूसरा उससे घृणा करता है। अतएव गृहिणियोंको इस बातका भी अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिये, कि कौनसी वस्तु किसे रुचती है। क्योंकि रुचिके विपरीत भोजन करनेसे मनुष्य तृप्त नहीं होता, और अतृप्त भोजन करनेसे स्वास्थ्यको हानि पहुंचती है।

यों तो सब बातोंमें ही स्वच्छता एकान्त प्रयोजनीय है, परन्तु भोजनके सम्बन्धमें उसकी ओर ध्यान देनेकी विशेष आवश्यकता है। हमारे देशके प्राचीन ऋषियोंने "आचारो परमोधर्मः" कहकर स्वच्छताकी बड़ी आवश्यकता दिखाई है। भोजनकी स्वच्छताकी ओर ध्यान देकर जो गृहिणी भोजन नहीं बनाती वह अपने कर्त्तव्य पालनमें असह्य त्रुटि करती है; क्योंकि शरीरकी रक्षासे आहारकी स्वच्छताका बड़ा ही दृढ़ सम्बन्ध है।

जिस भोजनके गुणसे हमलोग जीते हैं, उसीके दोषसे हजारों मनुष्य प्रतिदिन मर जाते हैं। भोजन बनाकर यदि सावधानीसे छिपाया न जाय, तो सामान्य कारणसे ही वह विषाक्त होजाता है। इसलिये भोजनको खूब सावधानीसे छिपाकर रखना चाहिये। भोजन बनानेके समय चूल्हा, चौका, वर्तन आदिकी स्वच्छताके सिवा अपने शरीर तथा वस्त्रोंकी स्वच्छताकी ओर भी अवश्य ही ध्यान देना चाहिये। भोजन बनानेके समय चित्तकी सावधानता और प्रसन्नताकी भी बड़ी

आवश्यकता होती है। मनमें किसी प्रकारकी चिन्ता तथा उद्वेग आदिके रहनेसे भोजन कदापि अच्छा नहीं बनता। रुग्नावस्थामें भूलकर भी भोजन बनानेका काम नहीं करना चाहिये। बहुतसी फूहड़ स्त्रियोंके वस्त्रादि बड़े मैले-कुचैले होते हैं, और उनसे बदबू निकला करती है। ऐसी गन्दी स्त्रियोंका छुआ खानेसे मनुष्य बीमार पड़ सकता है।

छुआछूतके विचारोंकी लोग आजकल बड़ी निन्दा करते हैं। परन्तु जिन्होंने भोजनकी स्वच्छताके गुणोंको समझा है वे अच्छी तरह जानते हैं, कि यह पुरानी प्रणाली बड़ी ही तत्वपूर्ण है। हां, इस प्रणालीके समुचित सुधार और उन्नतिकी आवश्यकता अवश्य है।

विष्णु पुराणमें एक जगह लिखा है:—"कुत्सित मनुष्यका लाया हुआ कदर्य तथा असंस्कृत अन्न नहीं खाना चाहिये। अयोग्य, अपवित्र तथा सङ्कीर्ण स्थानमें बैठकर भोजन नहीं करना चाहिये। विशुद्ध वस्त्र पहनकर, जप तथा होम करनेके बाद अतिथि, गुरु तथा आश्रितोंको भोजन कराना चाहिये। पवित्र गन्ध द्रव्य तथा माल्य धारणकर चित्तको चिन्तारहित और प्रसन्न रख, स्वच्छ जलसे हाथ पैर धोकर पूर्व्व वा उत्तर मुंह बैठकर भोजन करना चाहिये।"

परिश्रम करनेसे शरीरके उपादानोंका—धातुओंका—क्षय होता है, परन्तु विधाताके अपूर्व्व कौशलसे भोजन उस क्षतिकी शीघ्र ही पूर्त्ति कर डालता है। देश, काल, पात्र तथा ऋतुके

अनुसार अच्छी तरह विचारकर शरीरके उपादानोंके उपयुक्त भोजन न करनेसे स्वास्थ्यकी हानि होती है। सब देशोंमें सब समय एक ही प्रकारका भोजन करना युक्तिसंगत नहीं। केवल जल, वायु तथा ऋतुकी विभिन्नताके कारण विभिन्न देशोंकी भोजन सामग्रीमें भी विभिन्नता होती है। वैद्यक शास्त्रमें इस बातपर अच्छी तरह विचार किया गया है कि किस ऋतुमें कौन चीज खानी चाहिये और कौन नहीं। देश, काल तथा पात्रके अनुसार भोजन बनानेके लिये गृहिणियोंको इस बात-का भी ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये। विधाताकी सृष्टिमें यह देखनेमें आता है, कि सब ऋतुओंमें एक ही प्रकारके फल फूलादि नहीं पैदा होते।

रोगियोंके लिये पथ्य तैयार करना भी गृहिणियोंका अन्य-तम कर्त्तव्य कार्य्य है। इसलिये इसे भी यदि रसोईके ही अन्तर्गत मानलें तो कोई अनुचित बात न होगी। रोगियोंके लिये पथ्य बनानेसे बढ़कर दायित्व-पूर्ण कर्तव्य दूसरा नहीं। ऐसा गुरुतर दायित्वपूर्ण कार्य वेतनभोगी अशिक्षित नौकर-चाकरोंको कदापि नहीं सौंपना चाहिये। आयुर्वेद शास्त्रमें लिखा है।—"औषधके बिना, केवल सुपथ्य व्यवहारसे ही अनेक रोग आराम हो जाते हैं। परन्तु अपथ्य व्यवहारके साथ अच्छीसे अच्छी औषधसेवन करनेसे भी कोई फल नहीं होता।*

---

* रोगदपि भैषजैर्विना पथ्यादेव निवर्त्तते।
" नतु पथ्या विहीनस्य भैषजानां शतैरपि॥"—पथ्यादिनिर्णय।

फलत: बिना दवा इलाजके केवल प्रकृतिकी सहायतासे बहुतसे रोग छूट जाते हैं, किन्तु उपयुक्त पथ्यके न होनेसे कोई भी रोग आराम नहीं हो सकता। इसलिये पथ्य बनानेकी रीति प्रत्येक गृहिणीको सीख लेनी चाहिये। दुःखकी बात है, कि आजकल हिन्दी भाषामें ऐसी कोई पुस्तक नहीं जिसमें पथ्य बनानेकी विधि विस्तारपूर्व्वक लिखी हो। इस विषयकी जो दो एक पुस्तकें देखनेमें आती भी है, वे अधूरी हैं।

यह पहले ही कह चुके हैं, कि केवल पुस्तक पढ़नेसे रसोई बनाना नहीं आता। यह विद्या देखकर सीखी जाती है। बहुतसी स्त्रियां ऐसी हैं, जो भोजन बनानेमें अच्छी योग्यता रखती हैं, उनके पास रह उनसे ही यह काम सीखा जा सकता है। हिन्दी भाषामें पाक-प्रणाली विषयक दो एक पुस्तकें हैं, परन्तु यह विद्या अनुभव करनेसे ही प्राप्त होती है। इसलिये उन पुस्तकोंके पढ़नेसे विशेष लाभकी सम्भावना नहीं।

मनुष्योंकी सभ्यताकी उन्नतिके साथ साथ खानेके बहुतसे मसालोंका भी आविष्कार हुआ है। उपयुक्त परिमाणसे मसाला डालनेसे भोजन स्वादिष्ट तथा सुगन्धित होता है, परन्तु मात्रा अधिक होजानेसे स्वाद बिगड़ जाता है, और उदरामय आदि अनेक रोग भी पैदा हो जाते हैं। इसके सिवा सब मसाले सब ऋतुओंमें खानेके उपयुक्त भी नहीं होते। शीत ऋतुमें अथवा शीतप्रधान देशोंमें जो मसाले लाभ दायक होते हैं, वे ग्रीष्मकाल तथा ग्रीष्मप्रधान देशोंमें अनिष्ट कारक होते हैं। सुतरां

रसोई बनानेके समय गृहिणीको इन बातोंका भी ध्यान रखना चाहिये, कि कौनसा मसाला किस ऋतु और देशके उपयुक्त है। अस्तु, रसोई बनानेकी रीति किसी अच्छी सुपाचिकासे खूब मनोयोग पूर्व्वक सीखनी चाहिये। क्योंकि इस विषयमें कोई बंधा हुआ नियम नहीं। बहुतसी चीजें अपने अनुभव द्वारा बनाई जाती हैं।

आठवाँ उपदेश।

शृंखला और सौन्दर्य्य।

समय कर्म्मठ मनुष्योंकी पूंजी है। परन्तु सुशृंखला गृहिणियोंका सर्वस्व है—इसीपर उनकी सुख-शान्ति निर्भर। है। इसीसे गृहकी श्रीवृद्धि भी होती है।—स्माइल्स

सुशृङ्खलता कार्य्यकी प्रधान सहायक और सौन्दर्य्यकी जड़ है। एक विद्वानका कथन है:—"नियमसे काम करनेवाले तथा सुशृङ्खलाप्रिय व्यक्ति गगन-विहारी-नक्षत्र-श्रेणीकी तरह सदा एकही तरहके दिखाई देते हैं। वे लोग अपने कामोंको अच्छी तरह करते हैं तथा जनसमाजमें यथेष्ट सम्मान और आदर भी प्राप्त करते हैं। ऐसे लोगोंका विश्वास भी लोग खूब करते हैं।

अंगरेज आदि पाश्चात्य जातियोंमें शृङ्खला और नियमका बड़ा रिवाज है। वे अपने घरकी चीजें बड़ी सफाई और साव-धानीसे रखना जानते हैं। उनके घरोंमें तथा घरोंके बाहर, सभी जगह, सौन्दर्य्य दिखाई देता है। दरिद्रसे दरिद्र अंगरेज भी अपने घरके बरामदेमें फूलोंके दो एक गमले अवश्य ही

रखता है। शृङ्खलाके अभावसे ही हमारे घरोंको श्री नष्ट सी दिखाई देती है। जहां अच्छी चीजोंका कोई अभाव नहीं होता, वहां सुशृङ्खलता तथा सौन्दर्य्य-प्रियताकी कमीसे चीजें मारी मारी पड़ी रहती हैं और शीघ्र ही विनष्ट होजाती है।

पाठिके! सृष्टिकर्त्ता विधाता शृङ्खला और सौन्दर्य्यके बड़े प्रेमी हैं। इसी कारणसे सृष्टिकी सभी चीजें सुन्दर दिखाई देती हैं; विशृङ्खलताका कहीं नाम-निशान भी नहीं दिखाई पड़ता। जिस घरमें शृङ्खला नहीं उस घरसे वन अच्छा और शान्तिप्रद है।

महात्मा वर्कने लिखा है'—सब प्रकारके अच्छे कामोंकी मूलभित्ति *शृङ्खला ही है। फलतः शृङ्खला ही कार्य्यका प्राण* और सौन्दर्य्यकी जड़ है।

यदि घरकी किसी चीजके रखनेके लिये कोई स्थान निर्दिष्ट न हो तो, वह जहां तहां पड़ी रहकर खराब होजाती है। इसके सिवा यदि कोई चीज अपने निर्द्दिष्ट स्थानपर नहीं रखी जाती, तो आवश्यकताके समय उसे ढूंढनेके लिये घरकी तमाम चीजोंको तितर-बितर करनेके लिये बाध्य होना पड़ता है। और *इसमें कितना कष्ट होता है, यह सभी गृहिणियां* समझ सकती हैं। इसलिये गृहसामग्रीको यथा स्थान सजा-कर रखनेसे गृहका सौन्दर्य्य भी बढ़ता है अथच कार्य्यमें भी सुविधा होती है।

- सबके घरमें मूल्यवान चीजें नहीं होतीं और न सबको महलोंमें

ही रहनेका सौभाग्य प्राप्त होता है। परन्तु चतुरा गृहिणियां अपने मामूली घरको मामूली चीजोंसे ही सजाकर उसे सुन्दर और दर्शनीय बनाये रखती हैं। वे यह अच्छी तरह समझती हैं, कि द्रव्योंके मूल्यसे सौन्दर्यकी वृद्धि नहीं होती, वरन् सफाई, स्वच्छनता और शृङ्खलता ही सौन्दर्यको बढ़ाती है।

जिस तरह गलेका हार और हुमेल पैरमें तथा पैरकी पैंजनी और कड़ा गलेमें पहनना बुरा मालूम होता है, उसी तरह घरकी चीजोंका यथा स्थान न रहना भी खराब मालूम होता है। इसलिये घरकी प्रत्येक वस्तुको यथा स्थान रखना परमावश्यक है।

लक्ष्मीचरित्रमें लिखा है:—"जो गृहिणी आंवलेसे शिरके केशोंको मलती है, घरके उच्छिष्ट तथा अपवित्र स्थानको गोबरसे पोतकर साफ रखती है, सफेद वस्त्र पहनकर विकसित कमल धारण करती है, तथा अपने घरकी चीजोंको सफाईसे सजाकर रखती है, वह लक्ष्मीजीकी प्रियपात्री है। और एक पुस्तकमें लिखा है:—"किसी गृहिणीको अपवित्र और मैला वस्त्र नहीं पहनना चाहिये। अपने शरीर, वस्त्रों तथा गहनोंको सदा साफ रखना चाहिये। शिरके केशोंको साफ रखना चाहिये तथा यथा साध्य सुगन्धित द्रव्योंका भी व्यवहार करना चाहिये।"

जिस घरमें सफाई नहीं होती, वहांकी हवा खराब हो जाती है। मैले स्थानोंमें आलस्य तथा नाना प्रकारके रोगोंका आविर्भाव होता है। मलीनता दरिद्रताकी सहचरी है। परन्तु

जिस गृहमें स्वच्छता रहती है; घरकी सब चीजें साफ सुथरी रहती हैं और जहां प्रति दिन धूप गुग्गुल आदि सुगन्धित चीजें जलाई जाती है, वहाकी वायु स्वच्छ, नीरोग तथा स्वास्थ्यवर्द्धक होती है। ऐसे ही स्थानोंमें लक्ष्मीका निवास होता है। बहुतसे घरोंमें लक्ष्मीजीकी पूजा हुआ करती है, परन्तु लक्ष्मीजीको प्रसन्न रखनेवाली सफाई और पवित्रतापर बहुत कम ध्यान दिया जाता है।

एक विद्वानने लिखा है; —"गृहमें जितनी चीजें हैं, वे सभी उपयोगी हैं और वहीं सब प्रकारकी चीजोंके लिये उपयुक्त स्थान भी मिल जाता है। जो चीज जिस स्थानके उपयुक्त हो, उसे उसी स्थानपर रखना चाहिये। इसीको शृङ्खला तथा सजावट कहते हैं। इसी शृङ्खलाके अनुसार विधाताने सृष्टिकी भी रचना की है। यह कभी नहीं खयाल करना चाहिये, कि शृङ्खला और सजावट धनवानोंके ही घर हो सकती है। धनवानोंके घर बहुतसी चीजें होती हैं, इसलिये वहां चीजोंको शृङ्खलाबद्ध रखना सहज नहीं, परन्तु साधारण गृहस्थोंके घर थोड़ी चीजें होती हैं, इसलिये वे सहज ही सुशृङ्खलित रूपसे रखी जा सकती हैं। घर, आंगन, द्वार तथा बरामदे आदिको साफ रखना गृहिणियोंकी चेष्टापर निर्भर है। घरका मैलापन तथा घरकी चीजोंकी विशृङ्खलता गृहिणियोंके लिये बड़े कलङ्ककी बात है।

चीज जिस समय घरमें आये, उसी समय, उसके लिये

उपयुक्त स्थान निर्दिष्ट कर लेना चाहिये, और उसे सदैव वहीं रखना चाहिये। प्रत्येक वस्तुके लिये अलग अलग स्थान ठीक कर लेना चाहिये। यदि कपड़ोंकी पिटारी रसोई घरमें रखदी जाय तो धुवां लगनेसे शीघ्रही कपड़े नष्ट हो जायंगे। इसी तरह यदि खानेकी चीजें कपड़ोंके बक्समें रखदी जायँ तो कपड़े भी नष्ट होंगे और चीज भी पवित्र न रह सकेगी। किसी वस्तुके लिये उपयुक्त स्थान निर्दिष्ट करनेके समय इस बातका अच्छी तरह विचार करलेना चाहिये, कि उसे किस स्थानपर रखनेसे कार्य्यमें सुविधा हो सकती है और सौन्दर्य्यकी भी हानि नहीं होती। क्योंकि चीजोंके यथा स्थान न रहनेसे काममें बड़ी गड़बड़ी उपस्थित होती है। यदि किसी गृहिणीने दियासलाई रखनेके लिये कोई उपयुक्त स्थान नियत न करलिया हो तथा एकवार काम लेकर उसे जहांतहां डाल रखती हो तो फिर दियासलाईकी जरूरत होनेपर उसे ढूंढ़नेमें विशेष कष्ट होता है। जरूरतके समय चीज न मिलनेसे तकलीफ होती है, वृथा समय नष्ट होता है और कामोंमें बाधा उपस्थित होती है।

एकवार किसी गृहस्थका लड़का खेलता हुआ कुएमें गिर पड़ा। उसे निकालनेके लिये रस्सीकी जरूरत पड़ी। गृहस्थके घर रस्सी रखनेका कोई नियत स्थान न था, अतः रस्सीकी तलाशमें लोग इधर उधर दौड़ने लगे, परन्तु वह नहीं मिली। अन्तमें पड़ोसियोंने अपने घरसे रस्सी आदि लाकर बच्चेको

कुएंसे निकाला। किन्तु अधिक देरतक जलमें रहजानेके कारण बच्चेके प्राणकी रक्षा न हो सकी। यदि गृहस्थके घर रस्सी रखनेका स्थान नियत होता तो रस्सीकी तलाश करनेमें विशेष देर न होती और बच्चा शीघ्रही कुएंसे निकाला जा सकता और सम्भवतः उसकी जान भी न जाती।

एक बंगाली विद्वानने लिखा है:—"हरएक वस्तुको यथा-स्थान रखना चाहिये। क्योंकि यथा स्थान चीज रखनेसे आवश्यकताके समय बिना विलम्ब मिल जाती है, एक चीजको ढूंढ़नेके लिए घरकी सब चीजोंको व्यर्थ टटोलनेकी जरूरत नहीं पड़ती और न उस चीजके खोजानेपर दूसरी लानेके लिये बाजारतक दौड़नेकी आवश्यकता होती। यथा स्थान वस्तु रखनेसे गृहकी शोभा बढ़ती है और गृहिणी भी प्रसन्न रहती है। यदि मसालेके वर्तनमें अँचार रख दिया जाय, किरासिन तेलके टीनके निकट घीका वर्तन रख दिया जाय, चावल ढूंढ़नेके लिये आटाके वर्तनमें हाथ डाला जाय तथा चीनीके धोखेमें नमक उठाकर डाल दिया जाय, तो कितना अनर्थ होगा, यह गृहिणियां अच्छी तरह सोच सकती हैं।"

इससे पहले बताया जा चुका है, कि प्रयोजनके अतिरिक्त चीजें खरीदना अमितव्ययता है। विचार पूर्वक देखा जाय तो मालूम होगा, कि इस प्रकार चीजें खरीदना गृह-शृङ्खला-का बाधक और सौन्दर्यका नाशक है। बुद्धिमती गृहिणियां प्रयोजनके अतिरिक्त कोई चीज नहीं खरीदतीं, वरं घरमें जिन

चीजोंका प्रयोजन नहीं, उन्हें वे बेंच दिया करती हैं। इससे गृहकी सुशृंखलतामें बड़ी सहायता मिलती है।

हमारे घरोंमें बहुतसी चीजें बिना प्रयोजन पड़ी रहती हैं। यहांतक, कि कभी उन्हें रखनेके लिये स्थान ही नहीं मिलता। जिस घरमें केवल दो वा तीन पिटारी और सन्दूकसे काम चल सकता है, वहां कितनी ही पिटारियां और सन्दूकें पड़ी रहती हैं। उनमें बहुतसी बेकार और पुरानी होती है। ऐसी निकम्मी चीजोंको घरमें रखनेसे गृह शृङ्खलामें बड़ी बाधा उपस्थित होती है। फलतः गृहिणीको सर्वदा इस बातका ध्यान रखना चाहिये, कि कौन सी वस्तु घरमें बेकार पड़ी है और उसे तुरन्त ही स्थानान्तरित कर देना चाहिये। सोने बैठने वाले घरको गुदामकी तरह नाना प्रकारकी निकम्मी चीजोंसे भर देनेसे स्वास्थ्यको हानि पहुंचती है। वह चूहों और कीड़े-मकोड़ोंका आवासस्थल बन जाता है। घरमें बेकार चीजोंके पड़ी रहनेसे कामकी चीजें भी नष्टभ्रष्ट होजाती हैं।

यह पहले ही कह चुके हैं, कि शृंखला ही सौन्दर्यकी जड़ है। इसलिये घरकी चीजोंके मूल्यके प्रति दृष्टि न डाल छोटी बड़ी सब चीजोंको यत्नके साथ सजाकर रखना उचित है। मूल्यवान होनेसे ही किसी वस्तुकी सुन्दरता नहीं बढ़ जाती, वरन् उसे साफ और सिलसिलेवार रखनेसे ही सौन्दर्य-की वृद्धि होती है।

कितनी ही अल्पमति गृहिणियां किसी चीजसे काम

लेकर उसे बिना शुद्ध और स्वच्छ किये ही उठाकर रख देती हैं। काम लेकर चीजको उसी समय धो-पोंछकर यथा स्थान न रखनेसे वह शीघ्रही नष्ट हो जाती है और कर्त्तव्य कार्य्य भी अपूर्ण ही रह जाता है। आम काटनेके बाद यदि छुरी अच्छा तरह धोई न जाय, तो कुछ कालोपरान्त उसपर मुर्चा जम जाता है और वह खराब हो जाती है। यदि किसी तरह मुर्चा छुड़ाकर वह साफ भी कर डाली जाय तो भी पहले की भांति कामकी नहीं रहजाती। अथच उसके साफ करनेमें समय भी लग जाता है, जिससे अन्यान्य कामोंमें हानि पहुंच सकती है। तात्पर्य्य यह, कि तनिक आलस्यके कारण वृथा बहुतसी क्षति सहनेके लिये बाध्य होजाना पड़ता है।

अपनी मानसिक प्रतिभा द्वारा सौन्दर्य्यका ज्ञान प्राप्त कर लेनेको सुरुचि कहते हैं। कुछ लोगोंमें सुरुचि स्वाभाविक रूपसे आजाती है, किन्तु अभ्यास करनेसे सभी उससे काम ले सकते हैं। अभ्यास और शिक्षाद्वारा सौन्दर्य्यकी रुचि तथा शृंखलाका ज्ञान बढ़ता है। जो शृंखलाका ज्ञान नहीं रखता उसका कोई काम अच्छी तरह सुसम्पन्न नहीं होता। यहां तक, कि इस अत्यावश्यक सद्गुणका अभाव मानव-जीवनको अशान्तिमय बना देता है। यथार्थमें जिन्हें शृंखलाका ज्ञान प्राप्त है और जो सौन्दर्य्यके प्रेमी हैं, उनका रहन-सहन, आचार-विचार, आहार-विहार तथा चाल-चलन आदि सभी बातें सुन्दर और मनोहर प्रतीत होती हैं।

घरकी चीजोंकी सजावट तथा सफाईसे शरीरके स्वास्थ्यका घनिष्ट सम्बन्ध है। स्वास्थ्यकी रक्षाके लिये रहनेके घरकी सफाई तथा उसमें रोशनी और हवाके गुजरकी एकान्त आवश्यकता है। सुतरां घरकी चीजोंको इस तरह सजाकर रखना चाहिये जिसमें घरके भीतर प्रकाश तथा हवाके आनेमें किसी प्रकारकी बाधा न उपस्थित होने पाये। इसके सिवा यदि एक ही जगह बहुतसी चीजें रख दी जाती हैं तो उनके नीचेकी भूमि साफ करनेमें बड़ी दिक्कत उठानी पड़ती है। प्रति दिन घरके कोने कोनेको साफ न करनेसे घरकी वायु दूषित हो जाती है, जिससे नाना प्रकारके रोगोंका आविर्भाव होजाता है।

घरके भीतरकी चीजोंकी शृंखला तथा सफाईके साथ ही घरकी चारों ओर सफाई रखनेकी भी नितान्त आवश्यकता होती है। घरके बाहर द्वार या जँगलेके पास यदि कूड़ा आदि पड़ा रहता है, तो देखनेमें खराब लगनेके अतिरिक्त हवाको भी दूषित बना देता है। फिर घरमें हजार सफाई रखनेमें भी कोई लाभ नहीं होता। अतः घरकी चारों ओरकी भूमिको अच्छी तरह साफ रखना गृहिणियोंका प्रधान कर्त्तव्य है।

गृह सामग्रीको यथा स्थान शृंखलाबद्ध न रखनेसे जिस तरह गृहकी शोभा बिगड़ती है, उसी तरह गृहके प्रत्येक कोनेकी सफाईमें भी बाधा पहुंचती है। सुतरां घरके अनेक स्थानोंकी सफाई नहीं हो सकती। ऐसे स्थानोंमें सर्प, बिच्छू तथा गोजर आदि विषैले जानवर रहने लगते हैं। इस

लिये गृहिणीको इस बातका सदा खयाल रखना चाहिये, कि घरका कोई स्थान मैला न रहजाय।

आलस्य तथा मूर्खताके कारण बहुत सी गृहिणियां चारपाई तथा चौकोंके नीचे बहुतसी रद्दी चीजें फेंक दिया करती हैं। ऐसा करनेसे घरके बीचमें ही स्वास्थ्यको हानि पहुंचाने वाला नरककुण्ड बन जाता है। घरके भीतर ही थूकने और नाक साफकर हाथको दीवालमें पोंछ देनेकी आदत भी बड़ी ही बुरी होती है। ऐसे गन्दे स्वभावकी स्त्रियोंका छुआ भोजन खानेमें भी *लोगोंको घृणा होती है।*

शृंखलाकी रक्षाके लिये हवेलीके कमरोंको एक एक कामके लिये ठीक करलेना चाहिये। जैसे:—(१) रसोई घर, (२) भाण्डार, (३) सोनेका घर, और (४) दालान। इस प्रकार घरोंका विभाग करलेनेसे शृंखलतामें बड़ी सहायता मिलती है।

जो गृहिणी अपने घरमें विधिवत् शृंखला, सौन्दर्य और सजावटकी रक्षा नहीं कर सकती, उसे लोग 'फूहड़' कहकर उससे घृणा करते हैं, तथा जहां इन बातोंपर ध्यान नहीं *दिया जाता, वहां शान्ति और सुख नहीं ठहर सकते।* इस-*लिये प्रत्येक गृहिणीको सदा इन बातोंका ध्यान रखना* चाहिये। लक्ष्मीजी तथा अन्यान्य देवी देवताओंको प्रसन्न रखनेका सबसे उत्तम उपाय स्वच्छता और पवित्रता ही है। विधाताकी अपूर्व सृष्टिको सुन्दरता और शृंखला देखकर कौन विमोहित नहीं होता?

नवां उपदेश।

सन्तान-पालन और स्वास्थ्यविधान।

"शरीरमाद्यं खलुधर्म्म साधनम्।"—कालिदास।

विधाताके अटल विधानानुसार आयुवृद्धिके साथ ही मनुष्यों-के कर्त्तव्योंमें भी परिवर्त्तन हुआ करता है तथा उनका विस्तार भी विशेषरूपसे बढ़ जाता है। बाल्यावस्थामें बालिकायें गुड़िया लेकर इच्छानुसार इधर उधर खेलती फिरती हैं। उस समय कभी भी उनके मनमें यह विचार नहीं उत्पन्न होता, कि यह जगत् क्या है तथा उनका कर्त्तव्य क्या है? अच्छा कपड़ा और दो एक गहने पाकर ही वे सन्तुष्ट हो जाती हैं। जब-तक चित्त लगता है तब तक पुस्तक और पटिया लेकर कुछ लिखती पढ़तीं अथवा गृह-कार्य्यों में जननीको कभी कभी थोड़ोसी मदद दे देती हैं, फिर अपनी सहेलियोंके साथ आन-न्दसे हंसती खेलती हैं। उस समय उन्हें अपने मानव-जीवनके महान् कर्त्तव्योंका तनिक भी ध्यान नहीं रहता। वे समझती हैं, कि समस्त जीवन ऐसे ही पवित्र आनन्दमें कट जायगा। परन्तु किशोरावस्थामें पदार्पणके साथ ही उनके स्वभावमें विशेष

परिवर्त्तन दिखाई देने लगता है। बाल्यावस्थाकी वह सरलता और चपलता न जाने कहाँ चली जाती है।

फिर विवाह होनेके बाद तो उनके स्वभावमें मानो युगान्तर सा उपस्थित हो जाता है। अब वे छोटी छोटी बालिकायें गृहिणी बन जाती हैं और गुरुतर कर्त्तव्य भार उनपर पड़ जाता है। एक समय जो अपनेको स्वतन्त्र तथा निर्द्वन्द्व समझती थीं, वे कर्त्तव्योंकी पराधीन बेड़ीमें जकड़ जाती हैं।

इस परिवर्त्तनका यहीं अन्त नहीं हो जाता। युवावस्थाके पश्चात् प्रौढ़ावस्था आती है। अब वे मातायें बनती हैं। उस समय उनके कर्त्तव्योंमें भी विशेष परिवर्त्तन हो जाता है, तथा उनकी सीमा भी अधिक विस्तृत हो जाती है। सन्तानके भरण-पोषण तथा शिक्षादीक्षा जैसा महान् कर्त्तव्य उनके शिर आ पड़ता है। वास्तवमें सन्तानके प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करना तथा स्नेहसहित उसको परवरिश करना ऐसा विषय नहीं जो उपदेश द्वारा सिखलाया जा सकता हो। स्वयं विधाताने ही इसका समुचित विधान कर रखा है। सन्तानके पैदा होनेके पहले ही वे जननीके हृदयमें अद्भुत स्नेह-बीज वपन कर देते हैं। बच्चेके जन्म लेते ही मातृहृदय एक सुदृढ़ स्नेह बन्धनमें बँध जाता है, संसारमें कोई ऐसी शक्ति नहीं, जो उस अच्छेद्य बन्धनको तोड़नेका साहस कर सके। बच्चेका गुलावके फूलकी भांति खिला हुआ मुख देखकर माता अपनी समस्त यातनाओं और कष्टोंको भूल जाती है। बिना उपदेश—बिना

बतायें, अपने आप हो वह सन्तान पालनरूप गुरुतर कर्त्तव्य कार्य्यमें लग जाती है। न जाने कौनसी अलौकिक शक्ति अलक्षितभावसे माताओंके हृदयोंमें प्रवेशकर उन्हें अपनी सन्तानके सुखके लिये नानाप्रकारके कष्टोंको सहनेके लिये वाध्य कर देती है। केवल मनुष्य ही नहीं, अबोध पशुओंमें भी यही भाव दिखाई देता है।

यहांतक, कि गर्भाधान हो जानेके कुछ काल बाद ही भावी सन्तानके मंगलामंगलकी चिन्ता अज्ञात भावसे जननीके मनमें आविर्भूत होती है। इसके अनेक उदाहरण दिखाई देते हैं।

उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट प्रतीत होता है, कि सन्तानके प्रति माताकी ममता स्वाभाविक है। और सभी मातायें अपने बालकोंकी शिक्षा तथा भलाईकी इच्छा करती हैं, किन्तु ऐसी मातायें बहुत कम हैं जो यह अच्छी तरह जानती हों, कि किस प्रणालीसे सन्तानका पालन तथा उसकी शिक्षाका विधान होना चाहिये। इसलिये कभी कभी अपनी सन्तानकी भलाई करती हुई भी वे अपनी अनभिज्ञताके कारण बुराई कर डालती हैं। सभी मातायें अपनी सन्तानके दीर्घजीवी होनेकी कामना करती हैं, परन्तु दुःखकी बात है, कि कितनी ही शुभाकांक्षिणी माताओंके दोषसे ही उनकी सन्तान अकालमें ही कालकवलित हो जाती है। एक बंगविदुषीने लिखा है:—"सन्तान पालन स्त्रियोंका मुख्य कर्त्तव्य है। परन्तु माताओंकी अज्ञा-

नताके कारण कितने ही बच्चे अकालमें ही मर जाते हैं। जो ईश्वरकी कृपासे बच जाते हैं वे चिररोगी बने रहते हैं तथा पूर्णजीवन प्राप्त करनेके पहले ही संसारसे चल बसते हैं। कौन माता ऐसी होगी जो अपनी सन्तानको अकालमें ही काल-कवलित होते देख मर्माहत न होती होगी? परन्तु दुःख है, कि वह यह नहीं जानती, कि उसे यह मर्मान्तिक शोक उसीको अज्ञानताके कारण सहना पड़ता है।" *

एक और विद्वानने लिखा है:—"मातृत्व ही नारीजीवनका प्रधान उद्देश्य और चर्म लक्ष्य है। उनके लिये सबसे बढ़कर गौरवका बात यही है, कि वे माताये हैं। गर्भ धारण तथा सन्तान पालनसे बढ़कर महत्वपूर्ण कार्य्य नारीजीवनके लिये दूसरा नहीं; क्योंकि इन्हीं दो कारणोंसे सृष्टिकी रक्षा होती है। इस लिये इनका महत्व और गौरव भी अधिक है।" †

बच्चोंका पालन करना, उनके लिये उपयुक्त आहार प्रस्तुत करना तथा रोगियोंके लिये पथ्यापथ्यका विचारकर भोजन तय्यार करना गृहिणियोंका मुख्य कर्त्तव्य है। ये गुरुतर कार्य्य उन्हींके द्वारा सम्पादित होते हैं। पुरुष उन्हें सुचारु रूपसे कदापि नहीं कर सकते। अतः प्रत्येक रमणीको स्वास्थ्यरक्षा सम्बन्धीय नियमोंका सम्यक् ज्ञान होना परमावश्यक है। सुशिक्षिता, सच्चरित्रा, धर्मपरायणा रमणी ही

* श्रीमती स्वर्णमयी गुप्ता।
† श्रीयुत नीलकण्ठ मजुमदार एम॰ ए॰।

उपर्युक्त दायित्व पूर्ण कार्य्यों को अच्छी तरह सम्पन्न कर सकती है।

ऐसा सोचना कदापि न्यायसङ्गत नहीं समझा जा सकता, कि मातायें अपनी सन्तानके स्वास्थ्यके विषयमें जान बूझकर लापरवाही करती हैं। इस विषयमें उनसे जो त्रुटियां हो जाती हैं, उनका प्रधान कारण उनकी अनभिज्ञता और अज्ञानता ही है। यदि सन्तान पालन सम्बन्धीय नियमोंका उन्हें कुछ भी ज्ञान होता, तो देशमें बालकोंकी मृत्युसंख्या इतनी न बढ़ने पाती। यदि वे जानतीं, कि खुली हवा, उपयुक्त तथा प्रचुर आहार, ऋतुके अनुसार स्वच्छ जलमें स्नान तथा उपयुक्त वस्त्रादिके अभावसे बच्चेकी तन्दुरुस्ती कायम नहीं रह सकती तो निश्चय ही इनके लिये यथासाध्य प्रयत्न करनेमें त्रुटि न करतीं। अपनी घोर अज्ञानताके कारण ही वे ज्वर होनेपर बच्चेको वैद्यके पास न लेजाकर भूत छुड़ानेवाले ओझाके पास दौड़ी जाती हैं। कहीं ऐसा न हो, कि बाहर लेजानेपर बच्चेको किसी टोनहारीकी नजर लग जाय, इसलिये उसे घरसे बाहर नहीं लेजाने देतीं। अपनी अज्ञानतावश कितनी ही मातायें अपने बच्चोंकी मङ्गल-कामनाकी इच्छासे 'शाहमदार' की दरगाहमें मन्नत मानती फिरती हैं, परन्तु उपयुक्त चिकित्सातथा आहारादिके लिये कोई विशेष यत्न नहीं करतीं। एक मात्र माताओंकी मूर्खता तथा अज्ञानताके कारण ही हमारे देशमें बच्चोंकी मृत्यु संख्या बढ़ रही है।

इसलिये प्रत्येक बुद्धिमती गृहिणीको खूब सावधानीसे स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धीय नियमोंका पालन करना चाहिये।

सन्तानके प्रति जननीका कर्त्तव्य दो भागोंमें विभक्त है:—प्रथम सन्तान पालन और द्वितीय उसको शिक्षा तथा चरित्र गठन। सन्तानके गर्भस्थ होते ही उसके स्वास्थ्यकी ओर ध्यान देना चाहिये। क्योंकि गर्भरक्षा सम्बन्धीय नियमोंके पालनमें त्रुटि होनेसे सन्तानके स्वास्थ्यको हानि पहुंचती है। गर्भस्थ बच्चेका स्वास्थ्य बहुत कुछ प्रसूतीके स्वास्थ्यपर ही निर्भर करता है। गर्भावस्थामें यदि जननीकी देह सबल और स्वस्थ रहती है तो उसको सन्तान भी सबल और स्वस्थ होती है। पक्षान्तरमें यदि जननी रोगिणी और दुर्बल होती है तो भावी सन्तान भी दुर्बल और रोगी पैदा होती है। ऐसे चिररोगी बच्चे प्रथम तो अधिक कालतक जीवित नहीं रह सकते यदि सौभाग्यवश जीवित भी रहते हैं, तो आजन्म शारीरिक कष्ट भोगनेके लिये वाध्य होते हैं। अतएव गर्भावस्थाके समयसे ही बच्चेकी तन्दुरुस्तीका खयाल रखना अत्यावश्यक है।

आजकल बहुत सी स्त्रियां गर्भवती होते ही कामधाम छोड़कर दिनरात आलसीकी भांति बैठी रहती हैं। इस तरह बेकार बैठे रहनेसे मनमें नाना प्रकारकी चिन्तायें उठा करती हैं, दिनको निद्रा आजाती है और शरीरके अंग-प्रत्यंगमें दुर्बलता आजाती है। परिश्रमके अभावके कारण भूख नहीं लगती, पाचनशक्ति कम होजाती है और कोष्ठ अच्छी तरह साफ नहीं

होता। इससे शिर:पीड़ा ज्वर आदि नाना प्रकारके रोगोंका आविर्भाव होता है। फलत: इससे गर्भस्थ सन्तानके स्वास्थ्य-को भी हानि पहुंचती है। इसके सिवा बहुतसी स्त्रियां गर्भावस्थामें अतिरिक्त परिश्रम किया करती हैं, इससे भी बच्चेकी तनदुरुस्ती बिगड़ जाती है। गर्भावस्थामें अधिक परिश्रम, रात्रिजागरण तथा अतिरिक्त चिन्ता करनेके कारण गर्भस्राव भी हो जाता है।

गर्भावस्थामें किस तरह रहना चाहिये, किन नियमोंका पालन करना चाहिये तथा आहार-विहारकी कैसी व्यवस्था होनी चाहिये, इत्यादि बातें यदि विस्तारपूर्व्वक लिखी जायं, तो एक खासी पुस्तक तैयार हो सकती है। इसलिये यहा संक्षेपमें ही कुछ अत्यावश्यक बातोंका उल्लेख कर दिया जाता है। यदि पाठिकायें चाहें तो उक्त विषयकी अन्यान्य पुस्तकों द्वारा उन बातोंको अच्छी तरह जान सकती हैं।

गर्भावस्थामें अधिक परिश्रम करना अथवा आलसीकी भांति दिनरात बैठे रहना उचित नहीं। गर्भवती स्त्रियोंको नाना प्रकारकी चटपटी चीजें खानेकी इच्छा हुआ करती है, यहातक कि कुछ स्त्रिया मिट्टीतक खा जाती हैं। ऐसी वाहियात चीजोंके खानेका परिणाम क्या होता है, यह बतानेकी आव-श्यकता नहीं। फलत: गर्भावस्थामें ऐसी चीजें खानी चाहियें, जो पुष्टिकर तथा शीघ्र ही पच जानेवाली हों। साफ कपड़े पहनना, खुली हवामें टहलना, चिन्ता न करना, क्रोध न

करना, सदा प्रसन्न रहना, दिनको न सोना और रातको न जागना, इत्यादि क्रियायें गर्भावस्थामें प्रसूतो तथा गर्भस्थ सन्तानकी पुष्टि और स्वास्थ्यरक्षामें बड़ी सहायता करती हैं, अतः यथासाध्य इनका अवश्य हो पालन करना चाहिये।

सन्तान पालन तथा स्वास्थ्यविधान सम्बन्धी अन्यान्य बातोंकी आलोचना करनेसे पहले यह जान लेना बहुत जरूरी है, कि मानवदेह क्या चीज है और किन उपदानोंसे बनी है। हमारी पाठिकायें यह अवश्य हो जानती होंगी, कि आत्मा और शरीर एक हो नहीं हैं। शरीर आत्मा वा जीवके रहनेके गृहके तुल्य है। यह गृह अर्थात् शरीर नष्ट होजाता है, परन्तु आत्माका नाश नहीं होता। उसे कोई हथियार काट नहीं सकता, आग जला नहीं सकती पानी गला नहीं सकता और हवा सुखा नहीं सकती। * शरीर उस अविनाशर आत्माका आवासस्थलमात्र है।

हमारे ऋषियोंने शरीरको पञ्चभूतात्मक माना है। पृथिवी जल, वायु, आकाश और अग्नि यही उसके मुख्य उपादान हैं। इन्हीं उपादानोंके संयोगसे शरार अस्थि, मज्जा, मांस, रक्त और चर्म बने हैं। शरार विज्ञानवेत्ताओंका सिद्धान्त है, कि छोटी बड़ी प्रायः दो सौ हड्डियां मानवदेहकी भित्ति स्वरूप हैं। रक्तमांस हीन अस्थिमय शरीरको कङ्काल वा ठठरी कहते

---

* नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न च शोषयति मारुतः॥ —गीता।

है। विधाताने उसी ठठरीपर सुकौशलसे मांस जमाकर उसे मानों मुलायम चमड़ेसे मढ़ दिया है। उक्त अस्थि मांस और चर्म वर्द्धनशील हैं। शोणित द्वारा इनकी वृद्धि हुआ करती है।

हाथ पैरको छोड़ शरीरके अवशिष्ट अंशोंको मूलदेह कहते हैं। मानो यही आत्माके रहनेका घर है। उदर, वक्षस्थल और मस्तक इस अपूर्व्व गृहकी विचित्र अटारियां हैं। इस इमारतको विधाताने पैर रूप दो खम्भोंपर स्थापित किया है, जिनके द्वारा हम इस देह-गृहको अपनी इच्छानुसार चलाते हैं, सुतरां मानव-विनिर्म्मित गृहको भांति यह अचल नहीं है।

शरीर-गृहकी सर्व्वोच्च अटारी मस्तक है, जिसमें मस्तिष्क वा दिमाग नामका एक अपूर्व्व पदार्थ रखा है। यों तो विधाताके सभी काम ही अपूर्व और विचित्र हैं, परन्तु मस्तिष्क सबसे बढ़चढ़कर है। मस्तिष्क ही मनुष्यके ज्ञान और बुद्धिका मूलाधार स्वरूप है। मस्तिष्कको सहायतासे ही देखने, सुनने सूंघने और चखनेकी शक्ति प्राप्त होती है। मस्तिष्कसे लगी हुई आंखें, कान, नाक तथा जिह्वा आदि उस शक्तिके द्वार स्वरूप हैं। इन्हीं छिद्रों वा इन्द्रियां द्वारा हम वाह्य-जगत् सम्बन्धीय ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसके सिवा बहुत सी छोटी छोटी नलियों द्वारा शरीरके प्रत्येक अंगसे मस्तिष्कका सम्बन्ध है। इसीलिये हम किसी बातको मनन करते ही उसे कार्य्यमें परिणत कर सकते हैं। इन्हीं सूक्ष्म शिराओं द्वारा

मस्तिष्कको सदा समस्त शरीरके विभिन्न स्थानोंकी खबर मिला करती है। मस्तिष्क नामक पदार्थको विश्वविधाताने बड़ी बुद्धिमानीसे रचा है। उसको चारों ओर हड्डीकी सुदृढ़ खोल चढ़ी हुई है। क्योंकि वही मानव देहका सर्वप्रधान संचालक और शासनकर्त्ता है। मस्तिष्कमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न होते ही मनुष्यत्व नष्ट होजाता है। अज्ञान, कुटेव, तथा असत्सङ्ग द्वारा मस्तिष्क शीघ्र ही कलुषित हो जाता है। उस समय समस्त शरीर-साम्राज्यमें भयङ्कर अराजकता और उपद्रव उपस्थित होने लगते हैं। अतएव सन्तानके मस्तिष्कको निरापद और सुरक्षित रखनेको तदवोर सदा सतर्कता पूर्व्वक करते रहना गृहिणीका अन्यतम कर्त्तव्य है, क्योंकि मस्तिष्क-की पवित्रता, दृढ़ता और शक्ति पर ही सन्तानकी भावी उन्नति निर्भर है।

वक्षस्थलको देहगृहको दूसरी अटारी समझना चाहिये। इस दूसरी अटारीमें हृत्पिण्ड और फेफड़ा नामक दो यन्त्र बने हैं। हृदय पिण्ड ही रक्तका प्रधान आधार स्वरूप है और फेफड़ा एक प्रकारका वायुयन्त्र है। खाद्य पदार्थों के सारांशको रक्तके रूपमें परिणत करना और शरीरके दूषित रक्तको शुद्ध कर समस्त शरीरमें परिव्याप्तकर शरीरकी पुष्टि तथा उसकी सजीवताकी रक्षा करना ही हृदय और फेफड़ेका काम है। अतः ये दोनों यन्त्र भी बड़े ही उपयोगी हैं।

हृदयकी आकृति प्रायः कमलकी कली सी होती है। यह

वक्षस्थलमें बाईं ओर झुका होता है। इसकी दाहिनी ओर विशुद्ध तथा बाईं ओर अशुद्ध शोणित रहता है। इसलिये हृतपिण्ड प्रायः दो भागोंमें विभक्त है। भुक्त पदार्थों का सारांश और अविशुद्ध रक्त शिराओं द्वारा हृदयकी दाहिनी ओर एकत्र होते हैं तथा विशुद्ध रक्तरूपमें परिणत हो सूक्ष्म धमनियों द्वारा समस्त शरीरमें परिव्याप्त होते हैं।

धर्मंघड़ीके 'पेण्डुलम' * की भांति हृदय-यन्त्र सदैव हिलता रहता है। मनुष्यको आयु तथा शरीरको अवस्थाके अनुसार प्रत्येक मिनिटमें ६५ से २०० बारतक हृदययन्त्र हिलता है। 'पेण्डुलम'के हिलनेसे जैसे एक प्रकारका शब्द होता है, वैसे ही हृदयके हिलनेसे भी होता है। युवा तथा प्रौढ़ावस्थाको अपेक्षा बाल्यावस्थामें हृदयकी गति अधिक होती है अर्थात् बालकोंका हृदय बड़ोंकी अपेक्षा अधिक हिलता है। घड़ीके बाण्डुलमका हिलना बन्द हो जानेपर वह बन्द हो जाती है, उसी तरह हृदयका हिलना बन्द होजानेपर शरीरकी भी सब क्रियायें रुक जाती हैं।

यहां यह बता देना आवश्यक है, कि शरीरको प्रत्येक धमनियों द्वारा रक्त प्रवाहित होता है तथा उसी प्रवाहकी सहायतासे ही वैद्य लोग नाड़ी देखकर शरीरके रोगोंकी परीक्षा करते हैं। यद्यपि यह परीक्षा कठिन है, तथापि कुछ दिन अभ्यास कर लेनेपर स्त्रियां इस विषयमें कृतकार्य्य हो

* घड़ीके निम्नभागमें लटकनेवाला लड्डू।

सकती हैं। गृहिणियोंको इस विषयका कुछ न कुछ ज्ञान प्राप्त कर लेना अत्यावश्यक है।

ऊपर बताया जा चुका है, कि हृत्पिण्डके निकट ही फेफड़ा नामक एक वायुयन्त्र भी रहता है। विधाताने छोटे छोटे असंख्य वायुकोषों द्वारा इस यन्त्रका निर्म्माण किया है। हृदयकी भांति यह भी दो भागोंमें विभक्त होकर वक्षस्थलके दोनों भागोंमें स्थित है। नाकको सहायतासे विशुद्ध वायुको ग्रहणकर शरीरस्थ अशुद्ध वायुको बाहर निकाल देनाही फेफड़ेका काम है तथा विशुद्ध वायु ही फेफड़ेकी सजीवता तथा सुपुष्टिका प्रधान आधार है। फेफड़ेमें हृत्पिण्डका घनिष्ठ सम्बन्ध है। क्योंकि फेफड़े द्वारा सञ्चालित होकर ही विशुद्ध वायु हृदयको मिलता है, जिससे वह रक्तकी वृद्धि तथा शुद्धिमें रक्त-कार्य्य होता है। अतः सदा इस बातकी चेष्टा करनी चाहिये, जिसमें फेफड़ेको विशुद्ध वायुकी कमी न हो।

शरीर गृहकी 'उदर' नामक अटारीमें भी कितने ही यन्त्र स्थापित हैं, उनमें पाकस्थली, यकृत, पित्तकोष, प्लीहा, मूत्रकोष तथा मूत्रयन्त्र ही प्रधान माने गये हैं।

खाई हुई वस्तुको पचाकर उसके सारभागको ग्रहण करना तथा असार भागको परित्याग करदेना पाकस्थलीका काम है। कितनी ही अतड़ियों तथा नलियोंकी सहायतासे यह अन्नादि पदार्थोंको ग्रहणकर शरीरोपयोगी अंशको ले अवशिष्टको मलद्वारसे बाहर निकाल देता है। इस विचित्र

यन्त्रकी लम्बाई पच्चीस से तीस फीट तक होती है। उपर्युक्त कतिपय यन्त्रोंकी भांति यह भी दो भागोंमें विभक्त होता है। शरीरकी रक्षाके लिये इस यन्त्रकी रक्षाकी ओर ध्यान देना भी बहुत ही जरूरी है। क्योंकि पाचनशक्तिके अभावके कारण बहुतसे रोगोंका आविर्भाव होता है।

खाई हुई वस्तु दांतो द्वारा पीसी जाकर लाल अथवा लारकी सहायतासे अन्ननली द्वारा उदरकी पाकस्थलीमें पहुचती है। वहां पाकरसमें मिलकर अच्छी तरह गलती है और गलकर शरीरोपयोगी पदार्थके रूपमें परिणत होती है।

पाकस्थलीकी सहायता देनेवाली और भी बहुत सी अँतडिया है। शरीरोपयोगी सारभागको शरीरके विशेष अंगोंमें पहुंचाना तथा उनमें समुचित परिवर्त्तन करना अँतडियोंका काम है।

यकृत तथा प्लीहा खाद्यवस्तुके असार भागको बाहर निकालते हैं। शरीरकी रक्षाके लिये प्लीहा और यकृत भी बडे उपयोगी और आवश्यक यन्त्र हैं। अनुचित आहार विहारके कारण कभी कभी प्लीहा बढ जाता है, जिससे शरीर रोगी होजाता है। वास्तवमें विधाताने संसारमें किसी भी ऐसी वस्तुकी सृष्टि नहीं की है, जो अनावश्यक हो। उसी तरह शरीरमें भी कोई ऐसा यन्त्र नहीं जो अनिष्टकारक वा अनावश्यक हो। परन्तु हम प्राकृतिक नियमोंके पालनमें अवहेला करते हैं, इसीलिये कभी कभी प्लीहा पेटमें फैलकर अनेकोंकी मृत्युका कारण

बन जाता है। अतः सदा इस बातका खयाल रखना चाहिये, जिसमें अनुचित आहार विहारके कारण प्लीहा बढ़ने न पावे।

शिराओंके रास्तेसे कभी कभी खाद्य पदार्थों के सार भागका कुछ अंश यकृतमें जाकर जमा हो जाता है। इसके उपरान्त दूसरी शिराओंके संयोगसे वह द्रुतपिण्डके पास पहुंचता है तथा विशुद्ध रक्तमें परिणत हो शरीरके समस्त भागोंमें सञ्चारित होता है। उपर्युक्त कार्यों के लिये यकृतको देह रक्तका भाण्डार कहना चाहिये। इसके सिवा यकृतसे निकलकर पित्तरस नामक पदार्थ पाकस्थलोमें प्रवेशकर पाचन कार्यमें साहाय्य पहुंचाता है। यकृतके निकट हो 'पित्तकोष' नामको एक थैलो बनी हुई है, उसीमें पित्त रहता है और वहींसे आवश्यकतानुसार पाकस्थलीमें जाता है।

पाकस्थलीकी बाईं ओर प्लीहा होती है। शरीरको रक्त वृद्धिमें इस यन्त्र द्वारा बड़ो मदद मिलतो है। यकृत तथा फेफड़ेमें रक्त अधिक बढ़ जानेपर प्लीहामें आकर एकत्रित होता है। इससे उपर्युक्त दोनों यन्त्र अपनो क्रिया सम्पादनमें यथेष्ट सुविधा प्राप्त करते हैं।

पेटके निम्नभागमें मूत्रयन्त्र बना हुआ है। शरीरका अप्रयोजनीय जल इसी यन्त्र द्वारा मूत्ररूपमें परिणत हो मूत्राधार नामक थैलोमें एकत्रित होता और फिर मूत्रद्वारसे बाहर निकल जाता है। शरीरके कितने ही अप्रयोजनोय तथा

दूषित पदार्थ मूत्रके साथ शरीरसे निकल जाते हैं, इससे शरीरके स्वस्थ रहनेमें बड़ी मदद मिलती है।

देहगठनकी इस संक्षिप्त आलोचनासे हमारी पाठिकायें समझ गई होंगी, कि शरीरस्थ यन्त्र-समूह घड़ीके कल-पुरजोंकी भांति परस्पर मिले हुए हैं। इन विविध यन्त्रोंमें केवल एकके बिगड़ने, शिथिल होने अथवा अकर्मण्य होनेसे क्रमशः सभी यन्त्र अपने अपने क्रियाकलापसे पराङ्मुख होनेके लिये बाध्य हो जाते हैं। जब तक शरीरस्थ यन्त्र-समूह सबल और कार्यक्षम रहते हैं, तबतक किसी रोगव्याधिके आक्रमण करनेकी कोई सम्भावना नहीं रहती। क्योंकि रोगव्याधादि प्रकृतिके स्वाभाविक नियम नहीं प्रत्युत प्रकृतिके नियमोंमें व्यतिक्रम होनेसे ही शरीरमें रोगोंका आविर्भाव होता है। शरीरके किसी अङ्ग वा यन्त्रके विकृत हो जानेपर उसे सुधारनेके लिये विधाताने स्वाभाविक कौशल बना रखा है, उससे स्पष्ट प्रतीत होता है, कि स्वास्थ्यरक्षाके लिये प्राकृतिक नियमोंके पालनसे बढ़कर दूसरा उपाय नहीं। हमारे शरीरकी स्वाभाविक क्रियाशक्ति ही शरीरके समस्त रोगोंको दमन करनेकी अद्भुत शक्ति रखती है। परन्तु किसी अनियमके कारण यदि शरीरमें किसी प्रकारके रोगका आविर्भाव हो तो उसे दमन करनेके लिये औषधिकी भी आवश्यकता होती है। बहुत जगह केवल संयम तथा नियम पालनसे ही रोग छूट जाते हैं; दवाकी कोई आवश्यकता ही नहीं होती। इसलिये जहांतक होसके प्राकृतिक

नियमोंका पालन करते हुए सन्तानको स्वस्थ तथा आरोग्य रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये ।

गर्भाधानके समयसे ही प्राकृतिक नियमोंपर अच्छी तरह ध्यान देते रहनेसे बालककी स्वास्थ्यरक्षामें यथेष्ट सहायता मिली है । गर्भावस्थामें माताके स्वास्थ्य और आरोग्यता पर ही शिशुकी आरोग्यता और स्वास्थ्य सम्पूर्ण रूपसे निर्भर रहती है । यही नहीं, वरं जबतक शिशु माताका स्तन पान करता है, तबतक जननीके स्वास्थ्यसे उसकी स्वस्थताका घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है । क्योंकि जबतक बच्चेको दांत नहीं निकल आते तबतक एकमात्र मातृ-दुग्ध ही उसका आहार होता है, सुतरां यदि माताके दूधका अभाव न हो तो शिशुकी रक्षाके लिये दूसरी किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं होती । यदि माताका दूध बच्चेको यथेष्ट परिमाणसे प्राप्त न हो तो किसी नीरोग धावी अथवा गायके दूधमें जल मिलाकर शिशुको दिया जाता है ।

दांत निकलनेपर बच्चे किञ्चित कड़ी चीजें भी खा सकते हैं, परन्तु उसी समय उन्हें कड़ी चीजोंके खानेका अभ्यास कराना उचित नहीं । एक वर्षके भीतर ही कितने ही बच्चों-को दांत निकल आते हैं । परन्तु उसी समयसे उन्हें अन्न खिलाना उचित नहीं । कमसे कम तीन वर्ष तक यथेष्ट परि-माणसे दूध खिलाना ही उचित है । दूधके साथ बार्ली वा आरारोट भी खिलाया जा सकता है । परन्तु यह कभी नहीं

भूलना चाहिये कि बच्चोंके लिये दूधसे बढ़कर उपयुक्त खाद्य-पदार्थ दूसरा नहीं।

जब बच्चे अन्न खाने लग जायँ तब उन्हें दिनमें चार बार भोजन कराना चाहिये। प्रातःकाल तथा दोपहरके बादका भोजन भरपेट न होना ही अच्छा है। अपनी हैसियतके मुताबिक बच्चेको यथासाध्य अच्छा और निर्दोष भोजन देना ही उचित है। विवेचना-शक्ति हीन बालक खाने पीनेके नियमोंका पालन नहीं कर सकता, अतएव उसकी जननीको सदा इस बातका ध्यान रखना चाहिये, कि कहीं वह कोई अनिष्ट पहुंचानेवाली चीज न खाले। कोई स्वादिष्ट चीज मिल जाने पर बच्चे अधिक खा लेते हैं। यह तो सभी जानते हैं, कि आवश्यकतासे अधिक खालेना शरीरको नुकसान पहुंचा सकता है, इसलिये जननीको इस बातपर अच्छी तरह ध्यान देना चाहिये और सदा सतर्कभावसे बच्चेको भोजन कराना चाहिये।

यों तो स्वास्थ्यकी रक्षाके लिये जीवमात्रको विशुद्ध वायुकी अत्यन्त आवश्यकता होती है; वायु बिना कोई प्राणी एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। परन्तु बड़ी उमरवालोंकी अपेक्षा छोटे बच्चोंकी स्वास्थ्यरक्षाके लिये विशुद्ध वायुकी अत्यन्त आवश्यकता होती है। अधिकांश स्थलोंमें विशुद्ध वायुके बिना कितने ही बच्चे मर जाते हैं। शरीर-विज्ञानके ज्ञाताओंका मत है, कि प्रति मिनिटमें एक पूर्णवयस्क मनुष्य जितनी वार

सांस लेता है, उतने समयमें उससे अधिक बार बच्चोंको सांस लेनेकी आवश्यकता होती है। इसलिये बच्चोंको सदा खुली और शुद्ध हवामें रखना अत्यन्त प्रयोजनीय है। कुसंस्कारोंके कारण देशमें प्रसूती तथा शिशुको कमसे कम बारह दिनतक ऐसे घरमें रखनेका रिवाज है जहां हवाका बिल्कुल गुजर न हो। इससे बड़ी हानि होती है। इस तरह निर्दयता पूर्व्वक काल-कोठरी सदृश सूतिका-गृहमें बन्द रहनेके कारण कितने ही बच्चों तथा उनकी माताओंका दम घुट जाता है। इसके अतिरिक्त विशुद्ध वायुके अभावके कारण बच्चा तथा उसकी जननी बहुत दिनोंतक बीमार रहती है। दुःखसे कहना पड़ता है कि अशिक्षिता स्त्रियां सूतिकागारमें कोई साधारण झरोखा भी नहीं रहने देतीं और द्वारपर चौबीस घण्टे आगको अंगीठी रहनेकी व्यवस्था कर देती हैं। इससे प्रसूती तथा शिशुको कितनी यातना सहन करनी पड़ती है, इसका यथेष्ट अनुभव भुक्तभोगीके सिवा और कोई नहीं कर सकता। बुद्धिमती पाठिकाओंको चाहिये. कि वे अपने घरोंसे इस यमयातना सदृश भयङ्कर रिवाजको दूर करनेकी अवश्य चेष्टा करें। सूतिकागार ऐसा होना चाहिये जहां साफ हवाका खूब गुजर हो।

सूतिकागारके सिवा हर समय रहनेका घर भी ऐसा ही होना चाहिये जहां विशुद्ध वायुका तनिक भी अभाव न हो। इसके अतिरिक्त सवेरे और शामको बच्चोंको खुली हवामें

टहनानेकी भी व्यवस्था होनी चाहिये। इस बातको अच्छी तरह याद रखना चाहिये, कि दानापानीके बिना मनुष्य कुछ काल तक जीवित रह सकता है, परन्तु वायु बिना क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता।

शरीरको रक्षाके लिये विशुद्ध वायुकी भांति स्वच्छ जलकी भी बड़ी आवश्यकता है। क्योंकि विधाताने जिन उपादानोंसे शरीरकी रचना की है, उनमें जल अन्यतम है। शरीरके वजनके सौ भागमें सत्तर भाग जल है। इसीलिये जलका एक नाम है, 'जीवन'। स्वच्छ जलसे परिपाक-शक्ति बढ़ती है और शरीरके जलीय पदार्थोंमें कमी नहीं होने पाती। इसके अतिरिक्त जल शरीरके तापको बढ़नेसे रोककर उसे समान रखता है।

देहको नीरोग और तन्दुरुस्त रखनेके लिये साफ पानीसे रोज नहाना अत्यावश्यक है। इस लिये बच्चोंको प्रतिदिन स्नान कराना चाहिये। यदि बच्चा खूब पुष्ट और सबल हो तो ताजे पानीसे और सबल न हो तो किञ्चित गरम जलसे स्नान कराना चाहिये। नहानेसे शरीर फुर्त्तीला बना रहता है, शरीरके लोमकूपोंमें मैल नहीं जमने पाती तथा शरीरके दूषित पदार्थ पसीनेके साथ बाहर निकल जाते हैं। हमारे देशमें बच्चोंको प्रतिदिन नहलानेका रिवाज बिल्कुल नहीं है। इससे कितने ही बच्चे न नहानेके कारण भी बीमार पड़ा करते हैं।

हमारे देशकी भोलीभाली स्त्रियां बच्चोंके गहनेका जितना

खयाल रखती है, उतना उनके वस्त्रोंका खयाल नहीं रखती। वेह यह नहीं जानती, कि शरीरकी रक्षाके लिये कपड़ेकी नितान्त आवश्यकता है परन्तु गहना स्वास्थ्यकी हानि पहुंचाता है। गर्मी तथा सर्दीसे बच्चोंकी रक्षा करनेके लिये वस्त्रोंकी बड़ी आवश्यकता होती है। बच्चोंका वस्त्र सदा खूब साफ रहना चाहिये। मैला, मलमूत्रसे भीगा हुआ वस्त्र बच्चेके शरीरमें क्षणभर भी नहीं रहने देना चाहिये। पसीना लगा हुआ वस्त्र भी शरीरको नुकसान पहुंचाता है, इसलिये बच्चोंके कपड़ोंको प्रतिदिन धोना तथा अच्छी तरह सुखाना बहुत जरूरी है। मैला तथा पसीना लगा हुआ वस्त्र पह नानेसे बच्चेके शरीरके लोमकूप समूह बन्द हो जाते हैं। कपड़ोंके मूल्य और स्वास्थ्यसे कोई सम्बन्ध नहीं। इसलिये कपड़े चाहे मस्ते हो हों परन्तु उनकी संख्या अधिक होनी चाहिये, जिसमें बारबार बदलनेमें सुविधा हो। हमारे देशकी स्त्रियां साबुन तथा सज्जीमट्टी द्वारा कपड़े धोना नहीं जानती। उनके कपड़ोंकी सफाईका समस्त दारमदार धोबी पर ही होता है, इसलिये बाध्य होकर उन्हें मैले कपड़ोंसे काम लेना पड़ता है। गृहिणियोंको चाहिये, कि कमसे कम बच्चोंका वस्त्र वे स्वयं धो लिया करें।

बच्चोंकी झंगुलिया खूब ढीलीढाली, हलकी, नरम और गर्म होनी चाहिये। चुस्त कपड़ोंसे बच्चोंके स्वास्थ्यको बड़ी हानि पहुंचती है। दैवात् आग लगजानेपर चुस्त कपड़ोंके

कारण अधिक विपदकी सम्भावना होती है। इसके अति-रिक्त रातको तंग कपड़ा पहनकर सोनेमें बच्चोंको बड़ी तक-लीफ होती है। प्रथम तो बच्चोंको झुलिया आदि पहनाकर सुलाना ही उचित नहीं क्योंकि इससे उन्हें करवट बदलनेमें विशेष कष्ट होता है।

यह बतानेकी विशेष आवश्यकता नहीं, कि ऋतु परि-वर्त्तनके साथ ही वस्त्र परिवर्त्तन भी आवश्यक है। भारत-वर्ष गर्म देश है। विलायत आदिकी भांति यहां सदैव गर्म वस्त्रकी आवश्यकता नहीं होती तथापि जाड़ेके दिनोंमें इस देशके अनेक प्रान्तोंमें बहुत सर्दी पड़ती है, अतः उस समय गर्म वस्त्रकी बड़ी आवश्यकता होती है। जाड़ेके दिनोंमें तथा अन्यान्य ऋतुओंमें भी बच्चेकी तन्दुरुस्तीकी ओर ध्यान रख उपयुक्त वस्त्रकी व्यवस्था करना जननीका मुख्य कर्त्तव्य है,। क्योंकि बच्चोंकी देह विशेष कोमल रहती है, थोड़ी सी-सर्दी-गर्मी लगते ही वे बीमार पड़ जाते हैं।

बच्चोंका बिछौना और ओढ़ना सदा साफ तथा गर्म रखना चाहिये। बच्चोंके मलमूत्र त्यागनेपर बिछौना तथा ओढ़ना अवश्य बदल देना चाहिये। बहुत सी अबोध मातायें मलमूत्रसे भींग जानेपर बिछौना आदि नहीं बदलतीं, वरन् उसीको उलट पलटकर काम लिया करती हैं। इससे बच्चोंके स्वास्थ्यकी बड़ी हानि होती है। प्रत्येक जननीको यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिये, कि मलमूत्रादि शरीरके

देकर सतर्कता पूर्व्वक उनकी गतिविधिपर लक्ष रखना चाहिये, जिसमें अपनी चपलताके कारण वे चोट न खा जायें ।

जब बालक चार पांच वर्षका होजाय, तब उसे नियम-पूर्व्वक व्यायाम सिखाना चाहिये । बड़े दुःखसे कहना पड़ता है, कि व्यायामकी उपयोगिता को न समझकर आजकल मातायें अपने बालकोंको अधिक देरतक खेलने-कूदने भी नहीं देतीं । कहीं ऐसा न हो, कि धूप लग जानेसे बालककी कोमल कान्ति मलिन हो जाय, इस खयालसे मातायें उन्हें दिनरात घरमें बन्द रखना ही उचित समझती हैं । अपनी इच्छासे यदि कोई बालक व्यायाम आदि करता भी है, तो मातायें उसमें बाधा देती हैं तथा हाथ पैर टूट जानेका भय दिखाकर उन्हें उससे विरत किया करती हैं । ऐसे 'दुल-रुवे' लड़के ही बड़े होनेपर संसारके अकर्म्मण्य जीवोंकी संख्या बढ़ाया करते हैं । हमारे देशकी अशिक्षिता मातायें यह नहीं जानती कि समस्त सांसारिक तथा आध्यात्मिक उन्नतियोंकी जड़ शरीरका स्वास्थ्य ही है । जिसके शरीरमें यथेष्ट बल नहीं होता, वह कुछ भी नहीं कर सकता है । इसीलिये सबसे पहले शरीरके स्वास्थ्यकी उन्नति करना मनुष्यके लिये अत्यावश्यक कार्य्य है । महाकवि कालिदासने कहा है :—"शरीरमाद्यं खलुधर्म्मसाधनम्" अर्थात् शारीरिक धर्म्म साधन ही सर्व्वप्रधान कर्म्म है ।

इस बातका भी अच्छी तरह खयाल रखना चाहिये, कि

विष हैं। विधिके विधानके अनुसार शरीरसे उनका अलग हो जाना ही उचित है, परन्तु अबोध मातायें आलस्यवश उसी विषाक्त बिछौनेपर बच्चोंको सुलाकर उन्हें चिररोगी बना देती हैं।

देहकी रक्षा तथा पुष्टिके लिये व्यायाम—कसरतकी बड़ी आवश्यकता है। वैद्यक शास्त्रमें व्यायामकी बड़ी प्रशंसा की गई है। लिखा है, कि प्रत्येक मनुष्यको प्रत्येक ऋतुमें अपनी शारीरिक अवस्थाके अनुसार कुछ न कुछ व्यायाम अवश्य ही करना चाहिये। व्यायामसे शरीरकी पुष्टि होती है, क्लेश सहन करनेकी शक्ति आती है, पाचनशक्ति बढती है तथा शरीर नाना प्रकारके दोषों और रोगोंसे रक्षित रहता है। व्यायामशील मनुष्यको शत्रु शीघ्र हरा नहीं सकता। जिस तरह गरुड़के निकट सर्प नहीं आता, उसी तरह व्यायामशील मनुष्यके निकट कोई रोग नहीं फटकने पाता। इसलिये बाल्यावस्थासे ही बच्चोंको व्यायामकी शिक्षा देनी चाहिये। शैशवावस्थामें बच्चोंके व्यायामके लिये विशेष चेष्टा नहीं करनी पड़ती, क्योंकि उस समय वे स्वयं हाथपैर फेंककर व्यायाम कर लिया करते हैं। उस समय उन्हें अधिक देरतक गोदमें लिये रहना अथवा बारबार सुलानेकी चेष्टा करना उचित नहीं। इसके उपरान्त जब बच्चे खड़े होकर चलने लगते हैं, तब भी उनके व्यायामके लिये जननीको कुछ करना नहीं पड़ता। उस समय उनकी स्वाधीनतामें विशेष बाधा न

देकर सतर्कता पूर्व्वक उनकी गतिविधिपर लक्ष रखना चाहिये, जिसमें अपनी चपलताके कारण वे चोट न खा जायें ।

जब बालक चार पांच वर्षका होजाय, तब उसे नियम-पूर्व्वक व्यायाम सिखाना चाहिये। बड़े दुःखसे कहना पड़ता है, कि व्यायामकी उपयोगिता को न समझकर आजकल मातायें अपने बालकोंको अधिक देरतक खेलने-कूदने भी नहीं देती । कहीं ऐसा न हो, कि धूप लग जानेसे बालककी कोमल कान्ति मलिन हो जाय, इस खयालसे मातायें उन्हें दिनरात घरमें बन्द रखना ही उचित समझती है। अपनी इच्छासे यदि कोई बालक व्यायाम आदि करता भी है, तो मातायें उसमें बाधा देती हैं तथा हाथ पैर टूट जानेका भय दिखाकर उन्हें उससे विरत किया करती हैं। ऐसे 'दुल-रुवे' लड़के ही बड़े होनेपर संसारके अकर्मण्य जीवोंकी संख्या बढाया करते है। हमारे देशकी अशिक्षिता मातायें यह नही जानतीं कि समस्त सांसारिक तथा आध्यात्मिक उन्नतियोंकी जड़ शरीरका स्वास्थ्य ही है। जिसके शरीरमें यथेष्ट बल नहीं होता, वह कुछ भी नहीं कर सकता है। इसीलिये सबसे पहले शरीरके स्वास्थ्यकी उन्नति करना मनुष्यके लिये अत्यावश्यक कार्य्य है। महाकवि कालिदासने कहा है :—"शरीरमाद्यं खलुधर्म्मसाधनम्" अर्थात् शारीरिक धर्म्म साधन ही सर्व्वप्रधान कर्म्म है ।

इस बातका भी अच्छी तरह खयाल रखना चाहिये, कि

शरीरकी शक्तिके अतिरिक्त व्यायाम करनेसे लाभकी अपेक्षा हानिकी ही अधिक सम्भावना होती है। इसीलिये शक्तिके अतिरिक्त परिश्रम करना उचित नहीं। परिश्रमके पश्चात् समुचित कालतक विश्राम करना भी शरीरकी रक्षाके लिये अत्यावश्यक है। इसीलिये शिशुओंको चौबीस घण्टेमें दश घण्टे और बालकोंको सात घण्टेतक विश्राम करने देना चाहिये। सुनिद्रा स्वास्थ्यप्रद और अत्युत्तम विश्राम है। इसलिये बालकोंकी सुनिद्राकी ओर भी ध्यान देना माताओंके लिये अत्यावश्यक है।

बालकोंकी मानसिक उन्नतिकी अपेक्षा उनकी शारीरिक उन्नतिकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। सुशिक्षित ज्ञानवान—परन्तु चिररोगी सन्तानकी अपेक्षा अल्पशिक्षित परन्तु कार्य्यक्षम सन्तान अवश्य उत्तम कही जा सकती है। परन्तु आजकलकी मातायें अपने बच्चोंकी तन्दुरुस्तीकी ओर विशेष ध्यान न देकर उन्हें पढा लिखाकर पण्डित बनानेमें ही अपनी समस्त शक्ति खर्च कर डालती हैं।

बच्चोंके बीमार होजानेपर माताओंको बडा दुःख होता है। उन्हें शीघ्र नीरोग करनेके लिये वे असाध्यसे असाध्य कार्य्य कर डालनेमें भी पश्चात्पद नहीं होतीं। परन्तु अधिकांश स्थलोंमें उन्हींकी असावधानी और मूर्खतासे बच्चे बीमार पड जाया करते हैं। यदि वे पहलेसे ही सतर्क रहा करें तो बच्चोंको अनेक रोगोंसे बचा सकती हैं।

वैद्योंका कथन है, कि बच्चोंको जबरदस्ती स्तन पान करानेसे अजीर्ण आदि रोग होजाया करते है। तथा क्षुधा लगनेपर उन्हें स्तनपान न करानेसे भी अनेक रोग होजानेकी सम्भावना रहती है। परन्तु आजकल कितनी मातायें ऐसी हैं, जो बच्चोंकी इच्छाका ज्ञान प्राप्त कर उन्हें उपयुक्त समय-पर स्तनपान कराती हैं। ऐसी बहुतसी मातायें मिलेंगी जो बच्चोंको स्तनपान कराना कोई अत्यावश्यक कार्य्य ही नहीं समझती। जब वे किसी कार्य्यमें व्यस्त रहती हैं तब यदि बच्चा भूखके कारण रोने लगता है तो वे बहुत ही विरक्त और क्रुद्ध हो जाती हैं।

शिशुको दिनमें अन्ततः दश बार स्तन पिलाना चाहिये। बहुतसी मातायें जबतक बच्चेको रुलाई नहीं सुनतीं तबतक उन्हें स्तन नहीं पिलातीं। इस कारण जो बच्चे अधिक रोते हैं, वे बारबार स्तनपान करनेके कारण रोगी हो जाते हैं और जो कम रोते हैं वे भूखे रहकर कमजोर हो जाते हैं। एक कहावत है, कि "जबतक बालक रोता नहीं तबतक दूध नहीं पाता।"

बच्चोंके रोनेका असली कारण जाने बिना ही झटपट उनके मुंहमें दूधका घूंट डाल देनेकी तो माताओंको मानों बीमारीसी हो गई है। बच्चोंका रोना बन्द करनेका मानों यही एक महामन्त्र है। सम्भव है, कि अधिक दूध पी जानेके कारण बच्चेके पेटमें पीड़ा होती हो अथवा और किसी कष्टके

कारण यह रोता हो। ऐसी दशामें यदि उसे स्तनपान कराया जाय तो यह अवश्य ही रोगी हो जायगा। यह कभी न भूलना चाहिये, कि भूखके सिवा और भी कई कारण बच्चोंके रोनेके हो सकते हैं। बच्चोंमें बोलने अथवा अन्य किसी प्रकारसे अपनी मनोव्यथा व्यक्त करनेकी शक्ति नहीं होती, सुतरां एकमात्र रोना ही उनके मनो-भावोंको व्यक्त करनेका साधन है। बुद्धिमती जननी उसीसे बच्चेके मनकी बात समझकर समुचित विधान करती है।

बच्चोंके साधारण बुखार या खांसीको मातायें तुच्छ समझ लेती हैं। परन्तु बच्चोंके कोमल शरीरके लिये साधारण रोग ही मारात्मक हो जाता है, यह बात प्रत्येक जननीको अच्छी तरह याद रखना चाहिये तथा रोग उत्पन्न होते ही खूब सावधानीसे उसके प्रतिकारका उपाय करना चाहिये।

बच्चेको अधिक खिलानेकी इच्छा प्रत्येक माताकी होती है। स्नेह वश अधिक भोजन कराकर भी वे अपनी प्यारी सन्तानको सदाके लिये रोगग्रस्त कर देती हैं। उनके मनमें ऐसी धारणा होती है, कि बच्चा जितना ही अधिक खायगा उतना ही बलवान होगा। वे भोजनके समय ही अपने वात्सल्य प्रेमकी पराकाष्ठा दिखा देती हैं। यह बड़ी ही अनुचित आदत है। इसमें सन्देह नहीं, कि कुछ नटखट बालक कभी कभी नाना प्रकारके बहानेकर खानेसे इनकार करते हैं, ऐसी हालतमें उन्हें फुसलाकर भोजन करानेकी आवश्यकता

पड़ा करती है। परन्तु माताको इस बातका अवश्य ही खयाल रखना चाहिये, जिसमें बालक आवश्यकतासे अधिक भोजन न कर जाय।

ऐसे बहुतसे उदाहरण मिलते हैं, कि बालक अच्छी तरह भोजन कर चुका है, तथापि माता उसे थोड़ासा और खा लेनेके लिये बाध्य करती है। इसके सिवा बीमारीकी हालतमें वैद्यके मना करनेपर भी कितनी ही मातायें बालकोंको खिला देती हैं। विशेषत: बीमार बालक जब कोई चीज खानेके लिये जिद करता है, तो अनुचित स्नेहके वशीभूत हो वे उसे वह चीज दे देती हैं। ऐसे ही कतिपय कारणोंसे बालकोंके पेटमें प्लीहा पड़ जाती है, जिससे उनका स्वास्थ्य सदाके लिये बिगड़ जाता है। आशा है, कि हमारी पाठिकायें इन अत्यावश्यक बातोंको अच्छी तरह स्मरण रखकर अतिरिक्त भोजन तथा कुपथ्य देकर अपने बालकोंको रोगी न बनायेंगी।

गृहकार्य्य सम्बन्धीय अन्यान्य बातोंकी तरह चिकित्साके सम्बन्धमें भी कुछ जानकारी प्राप्त कर लेना गृहिणियोंके लिये अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु यह विषय बड़ा ही गुरुतर और दायित्वपूर्ण है। शरीर-तत्व, रोगका निदान तथा औषधोंका गुण आदि जाने बिना इस काममें हाथ डालना उचित नहीं।

हिन्दीमें चिकित्सा सम्बन्धीय कितनीही अच्छी पुस्तकें

मौजूद है। गृहिणियोंको चाहिये, कि उन पुस्तकोंको खूब मनोयोग पूर्व्वक पढ़कर मनन कर लें। इससे और कुछ नहीं तो कितने ही आकस्मिक रोगोंसे वे अपने परिजनोंकी रक्षा कर सकेंगी। साधारण रोगोंके लिये वैद्य या डाक्टर बुलानेकी क्षमता साधारण गृहस्थोंमें नहीं होती। इसलिये ऐसे साधारण रोग अधिकांश स्थलोंमें बिना चिकित्साके ही छोड़ दिये जाते हैं और अन्तमें वही रोग बड़े जटिल तथा असाध्य रोगके रूपमें परिणत होजाते हैं। यदि हमारी गृहिणियोंको किञ्चित चिकित्सा ज्ञान हो जाय और रोग उत्पन्न होते ही वे उसके प्रतिकारका उपाय कर सकें तो वृथा अर्थ हानि भी न हो और रोग भी न बढ़ने पाये।

सबसे पहले प्रत्येक गृहिणीको शरीरतत्त्वकी आलोचना करनी चाहिये। शरीर क्या चीज है, किन उपादानोंसे इसकी सृष्टि हुई है, किन उपायोंका अवलम्बन करनेसे यह सदा स्वस्थ रह सकता है और किस प्रकारके खाद्यादि उसके उपयुक्त हैं? इत्यादि बातें जाननेकी बड़ी आवश्यकता है। इसके बाद साधारण खांसी, शिरदर्द, ज्वर, पेटका दर्द, आँखोंका उठना, चोट आदि लगना, शरीरका जल जाना आदि साधारण रोगोंकी चिकित्साका भी ज्ञान प्राप्त करलेना चाहिये। हमारे देशकी प्राचीना गृहिणियां इस सम्बन्धमें बहुत कुछ अभिज्ञता रखती थीं। बच्चोंको साधारण खाँसी तथा ज्वर, आदि हो जानेपर उन्हें वैद्य बुलानेकी आवश्यकता नहीं पड़ा करती थी।

वे ऐसी प्रयोजनीय दवायें संग्रहकर रखती थीं जिनसे अपने परिवारवर्गके अतिरिक्त पड़ोसियोंका भी उपकार कर सकती थीं। परन्तु दुःखकी बात है, कि अब दिनपर दिन ऐसी गृहिणियोंका अभाव हो रहा है। आजकलकी नई रोशनीकी गृहिणियां इस सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानतीं। इसलिये साधारण रोग होजानेपर भी उन्हें विपुल अर्थ व्यय करनेके लिये बाध्य होना पड़ता है।

रोगीको समयपर दवा देना, उसके लिये पथ्यादि बनाना तथा रोगीकी सेवा-शुश्रूषा आदि गृहिणियोंका ही कर्त्तव्य कर्म्म है। यह कर्त्तव्य बड़ा ही गुरुतर और दायित्वपूर्ण है, इसलिये इसका भार किसी अनाड़ीको कदापि नहीं सौंपना चाहिये। उन्हें यह कभी नहीं भूलना चाहिये, कि चिकित्साकी अपेक्षा शुश्रूषासे अधिक लाभ होता है।

संसारमें आकस्मिक घटनायें बहुत संघटित हुआ करती हैं। ऐसे समय बड़ी धीरता पूर्वक उनके प्रतिकारका उपाय करना चाहिये। छुरी आदिसे कट जानेके कारण खूनका गिरना, जलमें डूबना, आगसे जल जाना, पैर आदिमें मोच आ जाना तथा अन्यान्य आकस्मिक दुर्घटनाओंके प्रतिकारके लिये आवश्यक चीजें घरमें हर घड़ी मौजूद रखनी चाहिये तथा उनके प्रयोगकी प्रणाली भी अच्छी तरह जान लेनी चाहिये।

परिजनोंके स्वास्थ्य रक्षाका भार भी बहुत कुछ गृहि-

णियोंपर ही निर्भर रहता है। इसलिये स्वास्थ्यकी रचाके विषयमें उन्हें विशेष यत्नवती रहना चाहिये। खेद है कि आजकलकी गृहिणियाँ इस अत्यावश्यक बातपर तनिक भी ध्यान देना उचित नहीं समझतीं। उनकी सामान्य ताच्छि-ल्यता तथा असावधानीके कारण कितने ही लड़के आजन्म बीमार हो रहा करते हैं। इसलिये प्रत्येक गृहिणीको यह ज्ञान लेना चाहिये, कि प्रधानतः किन कारणोंके उपस्थित होनेसे शरीरके स्वास्थ्यको हानि पहुंचती है तथा उसके प्रतिकारका सहज साधन क्या है?

स्वास्थ्यरचाके लिये सफाईसे रहना एक अत्यावश्यक बात है। बालक, बालिका, युवक, युवती सबको खूब सफाईसे रहना चाहिये। परन्तु सफाईका अर्थ केवल शरीर तथा वस्त्रोंकी ही सफाई नहीं समझ लेना चाहिये वरन भोजन, जल, घर, बिछौना इत्यादि समस्त चीजोंकी सफाई ही वास्तविक सफाई कहलाती है। प्रतिदिन साफ जलसे नहाना, साफ पानी पीना और हवादार घरमें सोना स्वास्थ्यके लिये अत्यावश्यक है। हमारे देशकी अधिकांश स्त्रिया केवल महीनेमें एक दिन स्नान किया करती हैं। छोटे बच्चोंको नहलाना तो मानो उन्होंने सीखा ही नहीं। तेल और उबटन तो बच्चोंकी देहमें प्रतिदिन दो बार लपेटा जाता है परन्तु वे नहलाये कभी नहीं जाते। इससे उनके स्वास्थ्यकी बड़ी हानि होती है। बहुतसे बच्चोंके सिरमें मैल जमनेके कारण बालोंको जटायें बँध जाती हैं।

इससे उन्हें बड़ी तकलीफ होती है, परन्तु मातायें इस बातपर ध्यान नहीं देतीं। बहुत सी स्त्रियां नहानेके बाद अपने तथा बच्चोंके सिरमें तेल पोत दिया करती हैं। इससे नहाना और न नहाना बराबर होजाता है।

बच्चोंके साधारण तथा कठिन रोगोंमें कितनी ही मूर्ख मातायें चिकित्सा न करा किसी ओझाको दिखाकर दुआ-तावीज़ लेना ही उचित समझती हैं। उनको याद रखना चाहिये, कि रोग दवासे ही आराम होता है; झाड़ने फूंकनेसे कुछ नहीं होता। प्रत्युत् झाड़ फूंकके फेरमें पड़ जानेसे समुचित चिकित्सा नहीं होती, इसलिये साधारण रोग भी बढ़कर रोगीका प्राण ले लेते हैं। मूर्ख माताओंके दोषसे आजकल प्रतिदिन सैकड़ों बालक प्राण गँवा रहे हैं।

रोग आरम्भ होते ही उसको चिकित्सा होनी चाहिये। बहुतसी स्त्रियां लज्जा तथा अनुचित सङ्कोच वश अपने रोगोंको छिपानेकी चेष्टा किया करती हैं और अन्तमें वही रोग प्रबल हो जाता है तो अनायस ही सबको मालूम हो जाता है, परन्तु उस समय उसका प्रतिकार बड़ा ही कठिन हो जाता है। रोग होनेपर चिकित्सककी आज्ञानुसार पथ्यादि व्यवहार करना चाहिये। दवा स्वादिष्ट नहीं होती, इसलिये बहुतसी स्त्रियां उसे खानेसे इनकार करती हैं। कुछ स्त्रियां डाक्टरोंकी दवायें खानेमें भी आपत्ति करती हैं। वे समझती हैं, कि डाक्टरकी दी हुई दवा खानेसे धर्म्म चला जायगा। इस

तथा भ्रान्तिके कारण वे अपने बच्चोंको भी डाक्टरोंकी दवा नहीं खाने देतीं। यह बड़ीही अनुचित बात है। हमारे शास्त्रोंमें लिखा है, कि आपदके समय पहले शरीरकी रक्षा करनी चाहिये, इसके बाद धर्म्मकी। विपद उपस्थित होनेपर आचार विचारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। ऐसी दशामें सबसे पहले अपनी रक्षा और फिर धर्म्माचरण करना चाहिये। *

---

* देशभङ्गे प्रवासे वा व्याधिषु व्यसनेष्वपि।
रक्षेदग्रे स्वदेहादि पश्चाद्धर्म्मं समाचरेत्॥
आपत्कालेतु सम्प्राप्ते शौचाचार न चिन्तयेत।
स्वय स्वमुद्धरेत् पश्चात स्वस्थो धर्म्म समाचरेत्॥
—पराशर-संहिता।
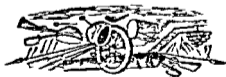
दशवां उपदेश।

सन्तान-शिक्षा और चरित्र गठन।

"माताशत्रु पिताबैरी येनबालो नपाठितः।"

—चाणक्य।

नास्ति विद्यासमं चक्षु नास्ति मातृ समोगुरुः।"

"एक अच्छी माता सैकडों शिक्षकोंके बराबर है। वह परिजनोंके मनको खींचनेके लिये चुम्बक तथा उनकी आंखोंके लिये ध्रुवतारा सदृश है।"—जार्ज हरबर्ट।

जिस तरह बालकोंकी शारीरिक उन्नति उनकी माताओंपर निर्भर है उसी तरह उनकी मानसिक उन्नति और शिक्षा-दिक्षा भी माताओंपर ही निर्भर है। क्योंकि गृहही ही सर्व्व प्रधान विद्यालय माना गया है। इसी विद्यालय द्वारा कोमल मति बालककी समस्त गुण-दोषकी शिक्षा प्राप्त होती है तथा उसका कुफल वा सुफल उसे आजन्म भोगना पडता है। इस गृहरूप विद्यालयकी प्रधान शिक्षयत्री माता ही है। वह अपने बच्चेंको शूरवीर, विद्वान, धर्मवीर तथा अकर्मण्य आदि जो चाहे बना सकती है। इसीलिये पण्डितोंने एक सुशिक्षिता जननीको सौ शिक्षकोंके बराबर माना है। विद्यालयके सैकडों शिक्षक जो

बातें नहीं सिखा सकते, उन्हें मातायें अनायास ही सिखा सकती हैं। महावीर नैपोलियन बोनापार्ट, महात्मा वाशिङ्गटन तथा ऋषिकल्प दादाभाई नौरोजी आदि महापुरुषोंने अपनी माताओंकी दी हुई शिक्षा द्वारा ही महान् गौरव और सुयश प्राप्त किया है। नैपोलियनने स्वयं स्वीकार किया है, कि मेरी उन्नतिका कारण केवल मेरी माता ही है। माताके चरित्र द्वारा ही बालकका चरित्रगठन होता है। क्योंकि बालक सब विषयोंमें माताका ही स्वभाव और प्रकृति प्राप्त करते हैं। बुद्धिमती, सती, साध्वी और सत्यवादिनी माताकी सन्तान भी उन्हीं सद्गुणोंसे विभूषिता होती है। शैशवावस्थामें जिन गुणों या अवगुणोंका प्रभाव शिशुके कोमल मनपर पड़ जाता है, वह हजार चेष्टा करनेपर भी दूर नहीं होता।

एक वङ्गीय विद्वानने लिखा है :—"संसारमें माताकी तरह दूसरा पदार्थ सृष्ट नहीं हुआ। जिस जातिमें उपयुक्त रूपसे मातृधर्मका पालन होता है, वही जाति, धीर, वीर, ज्ञानी और चरित्रवान मानी जाती है। माताके दोषसे ही सन्तान नष्ट होती है। जिस तरह माताके गर्भमें सन्तान रचित रहती, और माताके दूधसे पलती है, उसी तरह माताके चरित्र द्वारा उसका चरित्र भी गठित होता है।" *

विद्वानोंने बाल्यावस्थाको ही शिक्षाका उपयुक्त समय बताया है। किसी चिन्ताशील पुरुषने लिखा है, कि डेढ़

* स्वर्गीय प्रतापचन्द्र मजुमदार।

वर्षसे लेकर अढ़ाई वर्षके भीतरके बच्चे जो कुछ सीखते हैं, उसका असर आजन्म रहता है। महात्मा मिल्टनने लिखा है, कि जिस तरह प्रातःकालकी अवस्था देखकर समस्त दिनकी अवस्थाका अनुमान किया जा सकता है, उसी तरह मनुष्यकी बाल्यावस्थासे उसके भविष्य-जीवनकी उन्नति-अवनतिका पता लगाया जा सकता है। अतएव शैशवावस्थासे ही शिशुको शिक्षा देना माताका कर्त्तव्य है। उसी समयसे उसके मनमें उत्तम वृत्तियोंका सञ्चार कराना चाहिये। कुछ लोगोंका खयाल है, कि कमसे कम पांच वर्षतक बालकको किसी प्रकारकी शिक्षा देनेकी आवश्यकता नहीं। परन्तु उनका यह विचार समीचीन नहीं। क्योंकि उस समय बालकोंके मनकी अवस्था उतनी कोमल नहीं रहती जितनी पांचवर्षसे पहले रहती है। एकबार किसी अङ्गरेज-स्त्रीने अपने पुरोहितसे पूछा था,—"महाराज! लड़केकी उमर चार वर्षकी हो गई। मैं कबसे उसकी शिक्षा आरम्भ कराऊं?" पुरोहितने उत्तर दिया:—"भद्रे! यदि आजतक आपने बच्चेकी शिक्षा आरम्भ नहीं की तो मानो उसके जीवनका अति मूल्यवान चार वर्ष वृथा नष्ट हो जाने दिया, इसके लिये आपको पश्चात्ताप करना चाहिये। क्योंकि जब बच्चा पलँगपर सोया हुआ अपनी माताके मुंहकी ओर देखकर हँसने लगता है, तभी उसकी शिक्षाका समय आ जाता है। उसी समयसे शिक्षाका आरम्भ होना चाहिये।"

शिक्षा देनेकी प्रधानतः दो प्रणालियां हैं। प्रथम दृष्टान्त द्वारा और द्वितीय उपदेश द्वारा। इनमें पहली प्रणाली ही अधिक महत्व पूर्ण मानी गई है। क्योंकि बच्चोंमें अनुकरणकी प्रवृत्ति स्वाभाविक होती है। पैदा होनेके कुछ दिन बादसे ही उन्हें पहली प्रणाली द्वारा अलक्षित भावसे शिक्षा मिलने लगती है। कोमल मति शिशु उस समय जो कुछ देखते हैं उसे ही सीख जाते हैं। जननी तथा परिजनोंके मुंहसे जो कुछ सुनते हैं, उसे अपनी तोतली बोलीमें कहनेकी चेष्टा करने लगते हैं। उस समय किसी प्रकारके उपदेशका असर उनके मनपर नहीं पड़ता क्योंकि उस समय उनमें उपदेशोंके समझनेकी शक्ति नहीं होती। इसलिये उपदेशोंकी अवहेलाकर वे कामोंके अनुकरण वा अनुसरणमें ही प्रवृत्ति होते हैं। ऐसी दशामें माताओंको तथा परिजनोंको चाहिये, कि वे बच्चेके सामने कोई अनुचित आचरण और कुवाक्यका प्रयोग न करें। बहुतसे लोग यह समझते हैं, अबोध बालक इन कुव्यवहारोंको नहीं समझता, इसलिये वे निःसङ्कोच भावसे बालकके सामने कुव्यवहारोंमें प्रवृत्त हो जाते हैं। उन्हें यह अच्छी तरह याद रखना चाहिये, कि शिशुके दर्पणतुल्य स्वच्छ और पवित्र मानसपट पर उनके व्यवहारोंका जो अमिट चित्र अङ्कित होजाता है, वह आजन्म बना रहता है।

यद्यपि बच्चेके मनपर सभी परिजनोंके बुरे भले आचरणोंका प्रभाव पड़ता है, किन्तु माताके चरित्रका प्रभाव अधिक

पड़ता है क्योंकि उनका अधिकांश समय माताके पास ही व्यतीत होता है। एक अंगरेजने लिखा है।—"शिशुका चरित्र-गठन और उन्नति साधन केवल जननीके दोष-गुणपर ही निर्भर रहता है। इस विषयमें पिताकी अपेक्षा माताका ही प्राधान्य है।" फलतः माताको बड़ो सावधानीसे उत्तमोत्तम आचरणों द्वारा बालकको चरित्रवान बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये। बालकके सामने झूठ बोलना, किसीको ठगना, चोरी करना अनुचित हासपरिहास करना तथा अन्यान्य ऐसे ही अनुचित कार्य्यों को कदापि नहीं करना चाहिये।

बालकोंका मन स्वभावतः ही अनुकरणप्रिय होता है। वे पिता-माताके दोषोंको सहज ही समझ लेते हैं अथवा बिना समझे बूझे भी उनका अनुकरण करने लगते हैं। यदि, इच्छा है, कि बालक क्रोधी, घमण्डी दाम्भिक और आलसी न होने पाये तो उसके सामने कदापि कोई ऐसा आचरण नहीं करना चाहिये, जिससे क्रोध, दम्भ, आलस्य आदि दुर्गुणोंका सम्बन्ध हो।

जब बालक स्फुटस्वरसे कुछ बोलने लग जाय तभीसे उसे चीजोंका नाम और यथासाध्य गुण आदि बताना आरम्भ कर देना चाहिये। इसके बाद जब वह और कुछ बड़ा और समझदार हो जाय तो उसे भले बुरे कामोंके परिणामके सम्बन्धमें उपदेश देना चाहिये। स्नेह, प्रेम, वीरत्व, परोप-कार और धर्मपारायणता आदिको उपकारिता तथा द्वेष,

हिंसा और परस्त्रीकातरता आदि दुर्गुणोंको अपकारिताका ज्ञान प्राप्त करा देनेकी चेष्टा करनी चाहिये। यदि बालक अपनी अज्ञानतावश कोई अनुचित कार्य्य कर दे तो उसी समय उसका उचित तिरस्कार करना चाहिये और यदि कोई अच्छा काम करे तो उसको यथेष्ट प्रशंसा कर सम्भव हो तो कुछ पुरस्कार देकर उसे उत्साहित करना चाहिये। अवश्य जो मातायें अपनी सन्तानके बुरे कामोंमें बाधा नहीं डालतीं; उसका शासन नहीं करतीं वे अपनी सन्तानके साथ घोर शत्रुता करती हैं। शासन-विहीन बालक अनुचित आदर तथा स्वाधीनता पाकर अहङ्कारी, अविनय, तथा आवारे हो जाते हैं। इसलिये अच्छे *कामोंके लिये* जैसे पुरस्कार आवश्यक है, वैसे ही बुरे कामोंके लिये तिरस्कार भी अत्यावश्यक है। क्योंकि तिरस्कार तथा पुरस्कारके उपयुक्त व्यवहारसे बच्चोंको भले बुरे कामोंका ज्ञान प्राप्त हो जाता है। पुरस्कार तथा जननीके प्रेमके लोभसे उनके मनमें अच्छे कर्म्मोंकी प्रवृत्ति बढ़ती है तथा तिरस्कारके भयसे वे अनुचित कर्म्मोंसे विरत होते हैं।

परन्तु बहुत सी मूर्ख मातायें अति तुच्छ कारणसे भी बच्चेको बहुत पीटा करती हैं अथवा किसी दूसरेसे झगड़ा कर अकारण बच्चेको मारने लगती हैं। वास्तवमें इससे बढ़कर मूर्खता दूसरी नहीं हो सकती। ऐसे अनुचित और मूर्खता-पूर्ण आचरणोंसे बालकको भारी उन्नतिमें बड़ी बाधा पड़ती है। बाल्यावस्थामें माताके ऐसे कुव्यवहारोंके कारण अनेक बालक

निस्तेज, निर्दय, डरपोक तथा कापुरुष बन जाते हैं। कभी घोर अन्याय कार्य करनेपर भी, वे मारके भयसे, उसे अस्वीकार कर मिथ्या बोलना सीख लेते हैं। अतः बालकको अकारण अथवा अति सामान्य दोषके लिये मारना उचित नहीं।

बच्चोंको नाना प्रकारके विषयोंका तत्व जाननेकी स्वाभाविक अभिलाषा होती है। वे जो देखते वा सुनते हैं, उसके सम्बन्धमें नाना प्रकारके प्रश्न किया करते हैं। माताका कर्त्तव्य है, कि वह उनके प्रश्नोंसे नाराज न होकर प्रेमपूर्वक शान्त भावसे उचित उत्तर देकर उनके मनका कौतूहल शान्त करदे। यथोचित उत्तर पाकर वे बहुत सन्तुष्ट होते हैं तथा और भी बहुत बातें जाननेकी इच्छा उनके मनमें पैदा होती है, परन्तु यदि अपने प्रश्नके उत्तरमें वे जननीका तिरस्कार प्राप्त करते हैं तो फिर कोई बात नहीं पूछते। इससे जाननेकी इच्छा उनके मनसे तिरोहित हो जाती है। सुतरां शिक्षाका प्रकृति द्वार बन्द हो जाता है। इसलिये बालकोंके प्रश्नोंका उत्तर बड़े शान्त भावसे अच्छी तरह समझाकर देना चाहिये। बहुत सी गूढ़ बातें उनके समझमें नहीं आती, इसलिये एकही प्रश्न वे बार बार किया करते हैं। ऐसी दशामें यथासम्भव अच्छी तरह उनके प्रश्नका उत्तर देना ही उचित है, घबराना वा विरक्त होना ठीक नहीं। सदा इस बातकी चेष्टा करते रहनी चाहिये जिससे बालकके मनमें नाना प्रकारकी बातें जाननेकी अभिलाषा उत्तरोत्तर बढ़ती जाय।

एक अङ्गरेज विद्वानने लिखा है, कि—क्या (what), क्यों (why), कब (when), कैसे (how), कहां (where) और कौन (who) इन्हीं छः सज्जिनों द्वारा हम सब कुछ सीखते हैं।* फलतः जाननेकी इच्छा ही ज्ञान लाभकी कुंजी है। इसी इच्छा द्वारा मनमें प्रश्न करनेकी प्रवृत्ति होती है। इसलिये बालकके मनमें प्रश्न करनेकी प्रवृत्त बढाना अत्यन्त आवश्यक है और यह काम उसकी जननी का ही है।

यद्यपि बच्चोंकी शिक्षाका समय उनके अति शैशवावस्थासे ही प्रारम्भ हो जाता है, परन्तु पांच वर्षकी उमरसे पहले उन्हें विद्यालयमें भेजना उचित नहीं है। वरन् पांच वर्षकी अवस्थासे पहले वर्ण परिचय आदि माताओं ही कराना चाहिये विलायतमें छोटे छोटे बच्चोंके लिये भी विद्यालय हैं। वहां स्त्रियां उन्हें खेल तमाशेके बहाने नाना प्रकारकी शिक्षायें दिया करती हैं। किन्तु भारतके भाग्यमें ये बातें कहां। इसलिये पांच वर्षसे पहलेकी शिक्षाके लिये गृह ही उपयुक्त विद्यालय तथा माता ही अच्छी गुरुमाता है। आजकलकी अनुचित

---

* I keep six honest serving man,
They taught me all I knew.
Their names are what and why and when
And how and where and who

—Kipling.

शिक्षा-प्रणाली और कठोर शासन-नीति बालकोंके मनमें पढनेकी इच्छा प्रबल करनेके बदले कुछ ऐसे विकट भावोंको भर देती है जिससे वे पढनेसे सदा दूर रहनेको चेष्टा किया करते हैं। इस काठोर नीतिके कारण गुरुजीके नाम तथा सूरतसे उनकी 'रूह' कांप उठती है। इसीलिये ऐसी शिक्षासे बालकोंका विशेष उपकार भी नहीं होता। अत: विद्यालयकी शिक्षाकी अपेक्षा घरमें जननीकी दी हुई शिक्षा ही हमारे देशके बालकोंके लिये उपयुक्त है। कहानियोंके बहाने मातायें अपने बच्चोंको जो बातें सिखा सकती हैं उसे सैकडों अध्यापक नहीं सिखा सकते। इसीलिये विचारशीलोंका मत है, कि अन्तत: पांच वर्षतक शिशुकी शिक्षाका समस्त भार जननी पर ही रहना चाहिये। क्योंकि मनुष्यकी भावी जीवनकी नींवका यही समय है।

बहुत सी मातायें केवल उपदेश द्वारा ही अपनी सन्तानको पण्डित बना देना चाहती हैं। परन्तु कोरे उपदेशों द्वारा विशेष कार्य्य नहीं होता। बालकोंको किसी सद्गुणकी शिक्षा देनेके लिये जननीको स्वयं आदर्श बनना चाहिये। यदि बालकको यह उपदेश दिया जाय, कि झूठ बोलना पाप है और स्वयं झूठ बोला जाय तो ऐसे उपदेशका असर उसके मनपर कदापि नहीं पड सकता। इसलिये सन्तानको चरित्रवान बनानेकी इच्छा रखने वाली जननीको स्वयं सच्चरित्रवती बनना चाहिये।

सन्तानके हृदयमें जननीके प्रति श्रद्धा-भक्ति अवश्य होनी चाहिये। क्योंकि जब तक उसके मनमें अपनी माताके प्रति श्रद्धा-भक्ति न होगी तबतक वह उसके उपदेशोंको कदापि ग्राह्य नहीं करेगा। फलतः जननीको अपने महत् गुणों द्वारा सन्तानके मनमें भक्ति और श्रद्धाका संचार करना चाहिये। अपने सीखे हुए सद्गुणोंको बालकके कोमल मस्तिष्कमें धीरे धीरे प्रवेश करानेकी चेष्टा करनी चाहिये। सन्तानके गुण-दोषपर अच्छी तरह दृष्टि रखकर गुणोंकी वृद्धि और अवगुणोंके संशोधनका यत्न करना चाहिये। यदि बालक किसी वस्तुके लिये हठ करे, तो उसे समझा बूझाकर अथवा अन्य किसी समुचित उपायसे उसका मन बहलाना चाहिये। सदा अपने उपदेश और आदेशके अनुसार आचरण करनेके लिये बाध्य करना चाहिये। इसी उपाय द्वारा बालकके मनमें माताके प्रति श्रद्धा और भक्तिका संचार हो सकता है तथा वह क्रमशः कर्त्तव्य पारायण बननेकी शिक्षा पा सकता है। माताओंको यह बात अच्छी तरह याद रखनी चाहिये, कि केवल स्नेह अथवा कठोरताका अवलम्बन करनेसे सन्तान नहीं सुधरती, अवस्था और समयके अनुसार दोनोंका प्रयोग करना ही सन्तानको सुधारनेका एक मात्र उपाय है।

और एक अत्यावश्यक विषय पर माताओंको ध्यान देना चाहिये। हमारे देशमें पांच छः वर्ष तक बच्चे प्रायः नङ्गे रहते हैं। यह रिवाज बड़ा ही अनुचित है। स्त्री पुरुषके

पार्थक्यका ज्ञान बच्चोंको जितना शीघ्र हो जाय उतना ही अच्छा है। बहुत सी मातायें स्नेहवश बच्चोंसे उनके विवाहको चर्चा किया करती हैं, यह बड़ी ही अनुचित बात है। क्योंकि इससे अति शैशव कालमें ही उनके मनमें विवाहका अर्थ समझनेकी प्रबल इच्छा उत्पन्न होती है तथा इसका प्रभाव उनके मनपर कदापि अच्छा नहीं पड़ता।

यदि सौभाग्यवश सन्तान अधिक हो तो सबको समदृष्टिसे देखना उचित है। जो मातायें अपने पुत्र-पुत्रियोंमें किसीको अधिक और किसीको कम प्यार करती हैं, वे बड़ाही अनर्थ करती हैं। इससे बालकोंके मनमें हिंसा द्वेषादि दोषोंका आविर्भाव होता है और भाई बहनके परस्पर प्रेममें बड़ी बाधा पड़ती है। इसलिये सुन्दर, कुरूप, ज्ञानी तथा मूर्ख सन्तानके प्रति सम स्नेह प्रकाशित करना ही मातृ-धर्म है। ऐसा करनेसे भाई बहनमें प्रेमका अभाव नहीं होता। हमारे देशमें मातायें कन्याओंकी अपेक्षा पुत्रोंका अधिक आदर करती हैं। यह बड़ो ही गर्हित और निन्दनीय प्रथा है, इससे बालक बालिका दोनोंका महा अनिष्ट होता है। यही कुप्रथा बालकोंके मनमें स्त्री जातिके प्रति यथोचित श्रद्धाका भाव नहीं उत्पन्न होने देती। इसलिये शीघ्र ही इसका मूलोच्छेद करना उचित है।

अपनी सन्तानको निर्भीक तथा साहसी बनाना माताका

प्रधान कर्तव्य है।— क्योंकि निर्भीकता और साहस द्वारा ही समस्त सांसारिक उन्नतियां प्राप्त होती हैं। भयभीत और साहसहीन व्यक्तिसे कुछ नहीं हो सकता। इसलिये बालकों भूत-प्रेत, बाघ, भालू, हौवा आदिका भय कदापि नहीं दिखाना चाहिये। क्योंकि इससे, अति शैशव कालमें ही बालकोंका मन संकुचित, भीत और हतोत्साह हो जाता है तथा उनकी मनोवृत्तियोंके विकाशमें बड़ी बाधा पड़ जाती है। सहसा किसी निर्जन अथवा अन्धकारमय स्थानमें जानेपर भयसे उनका कलेजा कांपने लगता है और यह कुसंस्कार आजन्म उनके मनसे तिरोहित नहीं होता। इसके अतिरिक्त उन्हें रातको अच्छी निद्रा भी नहीं आती, तथा नाना प्रकारके भयानक स्वप्न देखकर वे चौंका करते हैं। यदि विवेचना पूर्वक देखा जाये तो हमारे देशके नवयुवकोंकी कायरता और भीरुताका एक कारण यह कुप्रथा भी है।

रोते हुए बालकको सहसा भूत प्रेतका भय दिखानेसे बड़ा ही अनिष्ट होता है। यद्यपि भयभीत होकर बालकका रोना बन्द करता है, किन्तु रुलाईका वेग सहसा रोक लेनेके कारण उसके कोमल कलेजेको जबरदस्त धक्का लगता है। उस समय वह माताके आंचलमें मुंह छिपाकर बड़ी देर तक लम्बी सांसें भरा करता है।

वृथा प्रलोभन द्वारा बच्चेको आश्वासित करना भी बड़ा ही अनुचित है। "बेटा! चुप रहो; तुम्हें आकाशका चाँद ला

दूंगी।" बाबूजी तुम्हारे लिये बड़ासा हाथी ला रहे हैं।" इत्यादि झूठे तथा असम्भव प्रलोभनों द्वारा बच्चोंको कदापि प्रतारित नहीं करना चाहिये। इससे बालकके मनपर बड़ा ही बुरा प्रभाव पड़ता है। पहले तो माताकी इस चांद लानेकी असीम शक्तिपर उनके मनमें दृढ़ विश्वास होता है, परन्तु जब चांद नहीं पाते तब उसी तरह झूठ बोलकर दूसरेको ठगने तथा निराश करनेकी शिक्षा प्राप्त करते हैं। यदि बालकोंके खेलनेके स्थानपर जाकर देखा जाय तो मालूम होगा, कि वे यहां जननीके मिथ्या प्रलोभनों तथा प्रवञ्चनाओंका कैसा सुन्दर अभिनय कर रहे हैं।

जो चीज बच्चोंको देने लायक न हो अथवा न दी जा सकती हो, उसे उनके हजार रोनेपर भी नहीं देना चाहिये। क्योंकि इससे वे हठी हो जाते हैं।

छोटे बालकोंमें कहानियां सुननेका बड़ा शौक होता है। वे प्रायः अपनी माता, नानी, दादीके पास बैठ कहानियां सुननेकी इच्छा प्रकट करते हैं। इन कहानियों द्वारा उन्हें धर्म, नीति आदि विविध विषयोंकी शिक्षा दी जा सकती है। इसलिये बच्चोंको ऐसी कहानियां सुनानी चाहिये, जिनका सम्बन्ध स्वधर्म, नीति तथा साहस आदि सद्गुणोंसे हो। ऐसी कहानी कदापि न सुनानी चाहिये, जिससे उनके चरित्रको किसी प्रकारका धक्का लगे।

बालकोंके भविष्य-जीवनकी उन्नति शील बनानेके लिये

शैशवावस्थामें ही धार्म्मिक-शिक्षा देनेकी बड़ी आवश्यकता है और इससे मातायें ही अच्छी तरह पूरी कर सकती हैं। धर्म्म क्या चीज है, उससे क्या होता है तथा धर्म्माभावके कारण कैसा अनिष्ट हो सकता है, इत्यादि बातें कहानियों द्वारा उन्हें बहुत अच्छी तरह सिखाई जा सकती हैं।

बच्चोंको सबसे पहले मातृ-भाषा ही सिखानी चाहिये क्योंकि शिशुके लिये मातृ-भाषाकी शिक्षा सहज होती है। इसके अतिरिक्त मातृ भाषाका किञ्चित ज्ञान प्राप्त कर लेनेपर दूसरी भाषाओंके सीखनेमें बड़ी सहायता मिलती है।

सब मनुष्योंकी प्रकृति एक ही तरहकी नहीं होती, किसी-को अङ्गशास्त्रसे प्रेम होता है, और कोई चित्र विद्याका प्रेमी होता है। ऐसी दशामें सबको एक ही विषयकी शिक्षा देनेसे विशेष लाभ नहीं होता। पिता माताका कर्त्तव्य है, कि वे बाल्यकालसे ही बालककी प्रकृति की ओर लक्ष्य रखकर शि-क्षाकी व्यवस्था करें यद्यपि प्रयत्न द्वारा एक प्रकारकी प्रकृति दबाई जाकर दूसरी उत्तेजितकी सकती है, परन्तु अधिकांश स्थलोंमें प्रकृति दमनका फल बड़ा ही अनिष्टकारक होता है। अतः इस बातका अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिये, कि बालककी मनोवृत्ति अधिकतर किस विषयकी ओर है।

भाषा सिखानेसे पहले बालकोंको ऐसी वस्तुओंके विषयमें ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, जिन्हें वे प्रत्यक्ष देखते और सुनते हैं।

मान लीजिये, कि बालकके हाथमें एक कांचका टुकड़ा है, परन्तु वह उसका नाम नहीं जानता। ऐसी दशामें शिक्षकको चाहिये, कि वह कांचके सम्बन्धकी समस्त बातें उसे अच्छी तरह समझा दे। कांच क्या वस्तु है, किस पदार्थसे बनता है, उससे क्या काम लिया जाता है। इत्यादि बातें बहुत अच्छी तरह समझा देना चाहिये। यदि इस विषयमें बालक विशेष आग्रह प्रकाश करे तो उसी समय उसे पोतल, लोहा, कांसा तथा ताम्बा आदिके विषयकी भी कुछ बातें बता देनी चाहिये।

शिक्षा-प्रणाली कई प्रकारकी है, उनमें प्रश्नोत्तर द्वारा शिक्षा देनेकी प्रणाली अच्छी और सुगम है। इस प्रणाली द्वारा शिक्षा देनेसे शिक्षार्थी और शिक्षक दोनोंको सुविधा होती है। मान लीजिये, कि गुरुजीने एक सेमलका फूल दिखाकर अपने छात्रसे पूछा—"यह क्या है?"

उत्तर—फूल।

प्रश्न—कौन फूल है?

उत्तर—सेमलका।

प्रश्न—इसका रंग कैसा है?

उत्तर—लाल।

प्रश्न। और किन किन फूलोंका रङ्ग लाल होता है?

उत्तर। पलास, अनार और कनेर आदिका।

प्रश्न। गुलाबका फूल कैसा होता है?

उत्तर। वह भी लाल होता है।

प्रश्न। क्या वह भी कनेर आदिकी तरह ही लाल होता है?

उत्तर। नहीं उनसे कम लाल होता है।

इसी तरह फूलोंकी परस्पर तुलना कर, फिर नाना प्रकारके फूलोंके नाम और गुण आदिका वर्णन कर बालकको समझाना चाहिये। साथ ही यह भी बता देना चाहिये, कि फूल वही अच्छे कहे जाते हैं, जिनमें गन्ध होता है। इसके उपरान्त यह भी बताना चाहिये कि संसारमें गुणोंका ही आदर होता है, रूपका नहीं। इसीलिये लोग खुशबूदार फूलोंको ही अधिक पसन्द करते हैं। उदाहरणके लिये केवल फूलोंका उल्लेख किया गया। इसी प्रणाली द्वारा फल, वृक्ष तथा पशुपक्षी आदिके विषयमें भी बालकोंको उपदेश देना चाहिये। इस प्रणालीसे काम लेनेसे शीघ्र ही विशेष लाभ होता है।

सबसे पहले बालकोंको वर्णपरिचय कराना चाहिये। बहुत लोग उसी समय लिखना भी सिखाते हैं, परन्तु यह प्रणाली सुविधा जनक नहीं। अक्षरका पूर्ण रूपसे परिचय होनेसे पहले ही उसे लिखनेकी चेष्टा व्यर्थ होती है। बिना समझे-बूझे दूसरेके लिखे हुए अक्षरोंपर लिखना भी बालकोंको अच्छा नहीं लगता और न इससे उन्हें विशेष लाभ ही होता है। इसके सिवा इसमें समय भी अधिक लग जाता है। फलतः बालक जबतक अक्षरोंको अच्छी तरह पहचान न ले तबतक उसे लिखानेकी चेष्टा नहीं करनी चाहियें।

क, ख, ग आदि वर्णमाला सिखानेसे पहले बालकोंको सीधी, त्रिकोण तथा चतुष्कोण रेखायें बनानेकी शिक्षा देनी चाहिये। इस तरह रेखायें सीख लेनेपर अक्षर लिख लेना उनके लिये बहुत सुगम होजाता है।

लोग प्रायः बालकोंको सबसे पहले गिनना सिखाया करते हैं। उन्हें एकसे लेकर सौ तक गिनती सिखा दी जाती है। बच्चे तोतेकी भांति उसे रट लेते हैं, परन्तु उसका उद्देश्य उनकी समझमें नहीं आता। इसलिये कौड़ी अथवा कंकड़ी द्वारा गिनने तथा जोड़नेकी शिक्षा विशेष लाभकारी हो सकती है। कौड़ी आदिके द्वारा खेलके बहाने उन्हें गिनती, मामूली जोड़ और बाकी आदिकी शिक्षा दी जा सकती है।

बच्चोंको सुबह-शाम खुली हवामें टहलानेकी बात पहले ही कह चुके हैं। भ्रमण करना जिस तरह स्वास्थ्यके लिये उपयोगी है, उसी तरह इससे नाना प्रकारकी शिक्षा भी मिल सकती है। टहलनेके समय बच्चे जो कुछ देखते हैं, उसके विषयमें पूछ-ताछ किया करते हैं। उस समय उनके प्रश्नोंका अच्छी तरह उत्तर देकर, जिस विषयमें उनका प्रश्न हो उसे अच्छी तरह समझा देना चाहिये। विलायतके प्रसिद्ध पण्डित जान स्टूआर्ट मिलको उनके पिताने इसी प्रणाली द्वारा बाल्यावस्थामें ही बहुत सी बातोंका ज्ञान प्राप्त करा दिया था।

आजकल 'किण्डर गार्डेन' नामकी एक नई शिक्षा प्रणाली निकली है। यह प्रणाली बड़ी ही सुन्दर और सुगम है।

इसके द्वारा बालकोंको उनकी मनो-वृत्तिके अनुसार ही शिक्षा प्राप्त होती है। किसी पदार्थका अवलम्बन कर अथवा कहानीके बहाने व्यवहारिक शिक्षा देना ही इस प्रणालीका मुख्य-उद्देश्य है। प्रत्येक जननीको यह प्रणाली सीख लेनी चाहिये।

बालकोंके पढ़ने लिखनेके लिये एक स्वतन्त्र स्थान निर्दिष्ट कर देना चाहिये। वहां सिर्फ उनके बैठनेके लिये चौकी, चटाई वा तिपाई तथा पुस्तकें रखनेका स्थान होना चाहिये। उस कमरेमें सोनेका कोई सामान रखना उचित नहीं। क्योंकि बिछौनेपर बैठ अथवा सोकर पढ़ना दोषावह है। बालकोंके पाठागारमें समय देखनेके लिये एक घड़ी भी अवश्य होनी चाहिये। इसके सिवा अपनी अवस्थाके अनुसार देश तथा विदेशके आदर्श पुरुषोंके दो चार चित्र, देशका मानचित्र (नकशा) तथा महापुरुषोंकी सुन्दर वाक्यावलियां, लिखकर उस कमरेकी दीवारोंपर टांग देना चाहिये। इससे बालकोंकी शिक्षा-प्राप्ति और चरित्र गठनमें बड़ी सहायता मिलती है। क्योंकि चित्रोंको देखकर स्वभावतः ही उनके मनमें प्रश्न होगा, कि ये कौन हैं। पढ़नेके कमरेमें खेल-तमाशेकी कोई चीज नहीं रहने देना चाहिये। घर साफ तथा हवादार होना चाहिये। बालकोंको पुस्तक, कलम, दावात आदिके प्रति श्रद्धा प्रकाश करनेकी शिक्षा देनी चाहिये। भूलसे यदि इन चीजोंसे पैर लग जाये, तो उनके सामने शीश

नवाकर उनका सम्मान करना सिखाना चाहिये। इससे बालकोंके मनमें ग्रन्थोंके प्रति श्रद्धा तथा आदरका भाव उत्पन्न होगा। आज भी देहातोंमें यह प्रथा प्रचलित है। देहाती बालक पुस्तक आदिसे पैर लगजानेपर तुरन्त ही उसे उठाकर शिरसे लगा लेते हैं। इस प्रथाको निरर्थक जड़-पूजा समझ इसके प्रति अवज्ञा प्रकाश करना उचित नहीं। ग्रन्थादिके प्रति श्रद्धा और भक्ति भावके सञ्चारार्थ इस पुराने कुसंस्कारको जीवित रखना ही कल्याणकर है।

प्रत्येक गृहिणीको अपने घरके निकट एक छोटा सा बागीचा अवश्य ही लगा रखना चाहिये। इससे स्वास्थ्यको लाभ पहुंचता है, मनको प्रफुल्लता प्राप्त होती है तथा कृषि और उद्भिद विद्या सम्बन्धीय ज्ञान प्राप्त होते हैं। बालकोंका कुछ समय नाना प्रकारके उपयोगी पेड़ोंके रोपने तथा उनको सींचने आदिमें लगाना विशेष लाभकारी हो सकता है। इससे खेलके मिस वे बहुत तरहकी बातें सीख जाते हैं।

अवसरके समय बालकोंके साथ स्वयं बागीचेमें जाकर उन्हें नाना प्रकारके फूल-फल तथा पेड़-पल्लवका वर्णन कर विधाताकी अद्भुत कौशलका वर्णन सुनाना चाहिये। इससे उनके मनमें आस्तिकता तथा भगवानके प्रति भक्तिका सञ्चार होगा।

वृक्ष-लताओंके विषयमें बालकोंको उत्साहित करते रहनेसे उनमें उत्साह, उद्यम-शीलता और कार्य्यपरताका सञ्चार होता

है। इसके अतिरिक्त विशुद्ध वायुमें परिश्रम करनेमें शरीर और मनकी विशेष उन्नति होती है। बागीचेमें नासपातीका गिरना देखकर ही महात्मा निउटनने पृथिवीकी मध्याकर्षण शक्तिका आविष्कार किया था।

आवश्यक शिक्षाके साथही बालकके चरित्रका भी सुधार करते रहना चाहिये। इसके लिये प्रेमके शासन द्वारा उनपर अपना प्रभुत्व अच्छी तरह जमा लेना चाहिये। जो बालक पिता माताका अदब नहीं करते उनका चरित्र गठित नहीं होता। इसलिये अदब और आज्ञाकारिताकी शिक्षा देनी चाहिये। परन्तु उन्हें डराकर अथवा उनकी स्वाधीनतामें बाधा डालकर अदबके लिये विवश करना उचित नहीं। आज्ञाकारिता तथा स्वाधीनताके सामञ्जस्यकी रक्षा करते हुए बालकको चरित्रवान बनानेके लिये विशेष अभिज्ञता और शिक्षाका प्रयोजन है। एक अंगरेज विद्वानने लिखा है। कि बाल्यकालसे ही वश्यता सिखानेसे स्वाधीनताके साथ वश्यताके सामञ्जस्यकी रक्षा हो सकती है। महात्मा स्माइलसने लिखा है:—"सन्तानके इच्छानुसार कार्य्योंमें बाधा देनेकी अपेक्षा उस इच्छाको यथोचित भावसे परिचालित करनेकी शिक्षा देनी चाहिये, परन्तु बल-प्रयोग द्वारा नहीं।" * बस यही वश्यता और स्वाधीनताकी रक्षाका उपाय है। चञ्चल स्वभाव बालकों·

* What is necessary is not to break the child s will, but educate in proper direction and this is not to be done by force or fear'—Smiles

को अकारण चुपचाप बैठाना, अथवा उनकी प्रकृति तथा शक्ति-के विरुद्ध कार्य्य करानेकी चेष्टा करना माना अपने प्रभुत्वका अनुचित व्यवहार करना है। इससे वश्यताकी अपेक्षा स्वतन्त्रता ही अधिक बढ़ती है। मारीसन नामक एक विद्वानने लिखा है,—"बहुतसे लोग सोचते हैं, कि नितान्त शिशुका शासनाधीन रखनेकी आवश्यकता नहीं। परन्तु ऐसा सोचना भ्रम है। क्योंकि शैशवकालमें उन्हें नियमोंकी अवहेला करने देनेसे बड़े होनेपर उनका शासन करना कठिन हो जाता है। अत: अवाध्यता आदि बुरे आचरणोंके अविर्भावके समय ही उनकी जड़ उखाड़ डालनी चाहिये, नहीं तो वे इतने मजबूत हो जाते हैं, कि फिर उनका हिलाना भी पिता-माताके लिये मुशकिल हो जाता है। जो बच्चे माताकी गोदमें अवाध्य रहते हैं, वे बड़े होनेपर बड़े दुराचारी और परपीड़क बन जाते हैं।" अत: किञ्चित ज्ञान प्राप्त करते ही सन्तानको पारिवारिक शिक्षा देनी चाहिये और उन्हें सुशासन-में रखनेकी व्यवस्था करनी चाहिये।

बालक-बालिकाओंके खेलपर अच्छी तरह ध्यान देना जननीका कर्तव्य है। उन्हें ऐसा खेल सिखाना चाहिये, जिससे उनकी शारीरिक उन्नतिके साथसाथ मानसिक तथा आध्यात्मिक उन्नति भी हो। बहुतसे बालक नाना प्रकारके घृणित तथा कुत्सित खेल खेला करते हैं। जननीको इन बातोंपर तीव्र दृष्टि रखनी चाहिये। क्योंकि बाल्यावस्थाके कुत्सित खेलोंका

प्रभाव उनके भविष्य जीवनके लिये बड़ा ही अनिष्टकारक होता है।

चञ्चलता बालकोंका स्वाभाविक धर्म्म है। बाल्यावस्थाकी चञ्चलता ही भावी सजीवता और उद्यम शीलताका लक्षण है। भीरुता निरीहता आदि निर्जीवताके लक्षण हैं। लॉक नामक एक अंगरेज विद्वानने लिखा है, कि अत्यन्त चञ्चल बालक कभी कभी अच्छी चालचलन सीखकर बड़े आदमी हो जाते हैं, परन्तु उद्यमहीन, निरीह तथा भीरु बालकोंकी उन्नति कभी नहीं देखी जाती। * इसलिये चञ्चलताके लिये बालकको दण्डित करना अथवा उसकी चञ्चलता छुड़ाकर उसे शान्तशिष्ट बनानेका प्रयत्न करना अनुचित है। यदि वे अपनी चञ्चलताके कारण कोई अनुचित कार्य्य कर डालें अथवा कोई नुकसान करें तो अवश्य ही उन्हें अच्छी तरह समझा देना चाहिये। बहुतसे बालक चीजें तोड़ने फोड़नेमें बड़े 'झातिम' होते हैं। उनकी यह आदत अच्छी न होनेपर भी परिणाममें अच्छी प्रमाणित हो सकती है, क्योंकि इसके बहाने वे बेकार न बैठ कर कुछ किया करते हैं।

चरित्रको बनाने और बिगाड़नेकी शक्ति जितनी संसर्गमें होती है, उतनी और किसी पदार्थमें नहीं होती। कुसंगमें

* "Extravagant young fellows that have liveliness and sp rit come somet mes to be set right and make able and great men but dejected minds, timoous and tame and low spirits are hardly ever to be raised."

—Lok-

पड़कर कितने ही अच्छे बालक बिगड़ जाते हैं और सुसंगके कारण दुश्चरित्र भी सुधर जाते हैं। मनुष्य स्वभावतः एकान्त प्रिय नहीं होता। प्रत्येक मनुष्यको साथीकी आवश्यकता होती है। बालकोंको भी साथीको आवश्यक होती है। अतः उन्हें एक ही स्थानमें बिठाये रखना तथा किसीसे मिलने-जुलने न देना भी उचित नहीं। परन्तु इस बातका अवश्य ही खयाल रखना चाहिये, जिसमें कुसंङ्गमें पड़ वे अपने जीवनको कलुषित न कर डालें। फलतः ऐसी तदबीर करनी चाहिये, जिसमें वे सत्संग लाभ कर सकें।

यह पहले ही लिख चुके हैं, कि अनुकरण-प्रियता बालकोंका स्वाभाविक धर्म्म है। सबसे पहले वे माता-पिता तथा अन्यान्य परिजनोंका अनुकरण किया करते हैं। इसके उपरान्त वे अपने साथियों तथा सहपाठियोंका अनुकरण करते हैं। इसलिये उन्हें यथासाध्य ऐसे साथियोंके साथ खेलनेकी अनुमति देनी चाहिये जो सच्चरित्र हों। संक्रामक रोगकी भांति कुसंग-दोष भी बड़ी शीघ्रतासे आक्रमण करता है। कुसंगके कारणबालकोंमें कितनी ही ऐसी अनुचित कुटेवें पड़ जाती हैं, जिनका संशोधन असम्भव सा हो जाता है।

बहुतसी मातायें अपनी सन्तानको अपने पाससे दूर रखनेमें ही सुखी रहती हैं। ऐसी दशामें बच्चे नौकरों अथवा दाइयोंके पास रहते हैं। इससे भी उनका अनिष्ट होता है। क्योंकि साधारण नौकरों तथा दाइयोंका आचरण प्रायः उच्च नहीं

होता। अधिक देर तक उनके साथ रहनेके कारण उनके कुत्सित चरित्रका प्रभाव बच्चोंपर पड़ जाता है। इसलिये बिना प्रयोजन बालकको दाई अथवा नौकरके साथ रहने देना उचित नहीं। एक अंगरेजने लिखा है, कि यदि तुम अपनी सन्तानको शिक्षाका भार किसी दासको सौंप दो तो शीघ्र ही तुम्हें एकको जगह दो दास मिलेंगे। ऐसी दशामें प्रत्येक कर्त्तव्य पारायणा माताको उचित है, कि वह अपनी सन्तानको अधिक काल तक अपने ही निकट रखे तथा अपने सदाचरणोंका प्रभाव उनपर पड़ने दें।

कुसंगके कारण सच्चरित्र बालक भी बिगड़कर असच्चरित्र हो जाते हैं। क्रमश उनके मनमें रागद्वेष आदि अनुचित भावोंका समावेश होने लगता है। बड़ोंके प्रति अश्रद्धा, साधुजनोंकी निन्दा, धर्मसे घृणा आदि नाना प्रकारके कुत्सित भाव आकर उनके पवित्र जीवनको नरक तुल्य अपवित्र और कलुषित बना देते हैं। इसके विपरीत सत्सङ्गके कारण कितने ही असच्चरित्र मनुष्य भी सुधर कर धर्ममय पवित्र जीवन प्राप्त करते हैं। सतसङ्गकी महिमाका वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजीने लिखा हैं:—

"सत सगति मुद मङ्गल मूला, सोइ फल सिधि सब साधन फूला।
सठ सुधरहिं सत् सगति पाई, पारस परसि कुधातु सुहाई॥"

निस्सन्देह सत्सङ्गके कारण नितान्त कलुषित चरित्र मनुष्य भी देवताकी सी प्रकृति प्राप्त करते हैं।

जार्ज हर्बटने लिखा है:—"साधुओंके साथ रहकर तुम भी साधु हो जावोगे।"* इसलिये बच्चोंको ऐसे मनुष्योंके साथ रखना चाहिये, जो ईश्वरविश्वासी, गुणज्ञ, धार्मिक और पुण्यात्मा हों। यही सन्तानकी सर्वोत्कृष्ट शिक्षाका सुगम उपाय है।

लडकोंकी भांति लडकियोंको भी गृहस्थी सम्बन्धी आवश्यक बातोंकी शिक्षा दे उन्हें सुगृहिणी, साध्वी, सती तथा लज्जाशीला बनाना जननीका ही कर्त्तव्य है।

* Keep good Company and you shall be to the member
—*George Herbert.*

ग्यारवां उपदेश।

विविध।

लज्जा——लज्जा स्त्रियोंका सर्वोत्तम आभूषण है। लज्जावती स्त्रियां जैसी सुन्दरी दिखाती हैं, वैसी विविध आभूषण भूषिता स्त्रियां नहीं दिखातीं। निर्लज्जा स्त्रीको देखकर सबके मनमें अश्रद्धा और घृणा होती है, परन्तु लज्जावतीको देखनेसे स्वभावतः ही मनमें भक्ति और श्रद्धाका सञ्चार होता है। भगवानने पुरुषोंको साहस, उद्यमशीलता, दृढता तथा निर्भीकता आदि गुणोंका अधिकारी बनाया है तथा स्त्रियोंके लिये लज्जाशीलता, कोमलता, भीरुता, स्नेह-परायणता तथा दयाशीलता आदि स्वर्गीय सद्‌गुणोंकी रचना की है। जो स्त्री अपने इन स्वाभाविक गुणोंसे वञ्चिता होती है, वह जगत्‌में यशस्विनी नहीं बन सकती। लज्जा ही स्त्रियोंका प्रधान अलङ्कार है। जो स्त्री इस ईश्वर प्रदत्त सद्‌गुणको परित्यागकर देती है, उसके लोक और परलोक दोनोंही नष्ट हो जाते हैं। लज्जा ही स्त्री-धर्म्मका प्रधान रक्षक है। निर्लज्जा स्त्री कदापि अपने धर्म्मकी रक्षा नहीं कर सकती।

लज्जामें कितने ही गुण होते हैं। लज्जा द्वारा धीरता,

गम्भीरता स्थिरता तथा सतीत्व आदिकी वृद्धि होती है। लज्जा-शीला स्त्रियोंके मुंहसे कोई अपशब्द नहीं निकलता। परनिन्दा तथा कलहकी प्रकृति आदि अवगुण लज्जाशीलाके निकट नहीं आते। लज्जा स्त्रियोंको कुपथगामिनी होनेसे बचाती है; मनमें किसी प्रकारकी कुवासनाका सञ्चार होनेपर भी लज्जा उसे कार्य्य में परिणत करने नहीं देती।

जिन स्त्रियोंमें लज्जाशीलता नहीं होती, वेही प्रायः चञ्चला, अस्थिरा और झगड़ालू होती हैं। परायेकी निन्दा करना, मुंहसे फूहड़ बातें निकालना और सबके साथ हंसी-मजाक करना उनका स्वाभाविक धर्म्म हो जाता है। लज्जाहीनताके कारण ही स्त्रियां विषय गामिनी होकर अपना सर्वस्व नष्टकर डालती हैं।

अफसोसकी बात है, कि आजकल बहुतसी स्त्रियां लज्जा-हीनताको एक बड़ा गुण समझती हैं। वे जानती हैं, कि अधिक हंसी-मजाक करनेसे लोग उन्हें बुद्धिमती समझेंगे। परन्तु यह अच्छी तरह स्मरण रखना चाहिये, कि कोई भी विचारशील मनुष्य लज्जाहीना स्त्रीकी प्रतिष्ठा नहीं कर सकता।

सुप्रसिद्ध नीतिकार पण्डित चाणक्यने निर्लज्जा स्त्रियोंकी बड़ी निन्दा की है। इसलिये हमारी पाठिकाओंको चाहिये कि वे अपनी लज्जाशीलताकी बराबर रक्षा करती रहें और जो स्त्रियां लज्जाहीना हों, उनसे कोई सम्बन्ध न रखें।

कलह—भारतीय रमणियोंका सबसे बड़ा दुर्गुण कलह है। यदि सच पूछा जाय, तो आजकल किसी देशकी

स्त्रियां ऐसी कलही नहीं, जितनी इस देशकी है। भारतकी स्त्रियोंकी दुर्दशाका वर्णन करते हुए सुकवि मैथिली शरणने लिखा है :—

"बहुकुशलता पूर्णक कलाएं जानती थीं जो कभी,
हैं अब कलह कुशला हमारी गृहिणियां प्रायः सभी।
हा! बन रहे हैं गृह हमारे विग्रह-स्थलसे यहां,
दो नारियां भी हैं जहां वाग्युद्ध करसेंगे वहां।"

साधारण धैर्यके अभावके कारण ही स्त्रियां झगड़ा किया करती हैं। जो स्त्री अपने परिजनों तथा बड़ोंकी बातें सह नहीं सकती वही झगड़ालू होती है। जिनमें धैर्य नहीं, सहिष्णुता नहीं, क्षमा शीलता नहीं, जो दूसरेका भला देखकर जला करती हैं, वे स्त्री नहीं, वरन् चुड़ैल हैं। ऐसी ही स्त्रियां बनीबनाई गृहस्थीको तहस नहस कर डालती हैं। बहुतसे परिवारोंमें दिनरात—बात बातमें झगड़े हुआ करते हैं। ऐसी अशान्तिपूर्ण गृहस्थीमें रहना बड़ा ही मुशकिल होता है। इससे घबरा कर कितने ही पुरुष घरबार छोड़ अन्यत्र चले भागे हैं, तथापि कलही स्त्रियोंको लज्जा नहीं आती। कलहके कारण गृहमें विषम अशान्ति उपस्थित हो जाती हैं, समस्त सुख नष्ट हो जाता है, भाई भाई अलग होकर एक दूसरेका शत्रु बन जाते हैं और बर्छी टानेके लिये तरसने लगते हैं। परन्तु कलहीका कलह स्रोत बराबर जारी ही रहता है, जिनमें यह बुरी कुटेव पड़ जाती है, वे अकारण

ही लोगोंसे लड़ा करती हैं, जब अपने परिवारमें उन्हें कोई प्रतिद्वन्दी नहीं मिलता तो पड़ोसियोंसे लड़ा करती हैं।

भगड़ालू स्त्रियां भगड़ा करती हुई इतनी उन्मत्ता हो जाती हैं, कि उन्हें अपने कपड़े-लत्तेकी भी सुधि नहीं रहती सास-ससुर आदि गुरुजनोंके सामने भी महा अश्लील शब्द प्रयोग करनेमें उन्हें सङ्कोच नहीं होता। उस समय उनकी वह चण्डिकामूर्त्ति बड़ी ही भयावनी होती है। उस समय उनके मनपर किसी प्रकारके उपदेश आदिका कोई असर नहीं पड़ता प्रत्युत् जो उपदेश देने जाते हैं, उन्हें भी गुरु-दक्षिणा स्वरूप दो चार गालियां मिल जाती हैं। उन्हें बिना भगड़ा किये चैन ही नहीं पड़ता।

ऐसी कलही स्त्रियोंसे सदा बचना चाहिये। बुद्धिमती सुशीला स्त्रियोंको चाहिये, कि ऐसी स्त्रियोंको कभी मुंह न लगावें वरन् उनकी दो चार बातें सह लें। यदि उनकी बातोंका उत्तर न दिया जाये, तो कुछ काल बड़बड़ा कर वे अवश्य ही चुप हो जाती हैं। उनसे बचनेका केवल यही एक मात्र उपाय है।

चपलता—चपलता भी स्त्रियोंमें एक बड़ा दुर्गुण होता है, चपला स्त्रियोंके पेटमें कोई बात नहीं पचती। इधरकी बात उधर और उधरकी इधर कहे बिना उनकी तबीयत नहीं मानती। जबतक वे एककी चुगली नहीं कर लेतीं तबतक उनके चित्तको किसी प्रकार शान्ति नहीं मिलती। ऐसी स्त्रियोंका कोई विश्वास नहीं करता यहांतक, कि उनके

हिन्दी साहित्यका गौरव ।

रंगमहल रहस्य ।

म इस उपन्यासकी विशेष प्रशंसा न कर केवल यही कहेंगे कि इसके
ढ़नेसे मनोरंजनके साथ ही साथ मुगल बादशाहोंके समयके इति-
ासके भी जानकारी होगी। यदि आप यौवन मदोन्मत्ता मुगल
गमों और शाहजादियोंके अद्भुत रहस्यपूर्ण चरित्रका भीतरी हाल
ानना चाहते हों; यदि रुये जमीनके फिरदौस अर्थात् पृथ्वीके
गें मुगल बेगमोंके महलोंकी चकाचौंध उत्पन्न करनेवाली सजावटको
उना चाहते हों, यदि उस समयके अमीर उमरावोंकी शराबे-अरग-
ानीके नशेमें मस्त हरोंको हैरानेवाली कामिनियोंके नाजो-अन्दाजसे
रिचित होना चाहते हों और यदि प्रबलप्रतापी मुगल सम्राट जला
द्दीन मुहम्मद अकबरकी राज्यव्यवस्थाका ऐतिहासिक वर्णन पढ़ना
ाहते हों तो रङ्गमहल रहस्यको शीघ्र मंगवाइये। दर्जनों हाफटोन
लों सहित ७०० पृष्ठकी पुस्तक का मूल्य २।) पक्की सुनहली-जिल्द-
ारका २।।) मात्र।

उद्भ्रान्तप्रेम ।

गद्यकाव्यकी अनूठी पुस्तक ।

अभी हाल हीमें वङ्गभाषासे अनुवादित होकर हिन्दीमें प्रकाशित
ई है। बङ्गालमें यह पुस्तक दर्जनों बार छपी और हाथों हाथ बिक
को है। पुस्तक अपनी मानों आप ही है। इसमें कविने प्रियतमा-
ायोग-व्यथित विरहीकी विरह-व्यथाका वर्णन बड़ी ही पूकरुणायों